

ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL

वर्ष : 05, अंक : 20, अक्टूबर-दिसंबर 2018

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्ताचल

मूल्य : 50 रुपये



विद्यार्थी मंच

उस पार से...



विष्णु खरे

(09 फरवरी 1940 - 19 अगस्त 2018)

कहो तो डरो कि हाय यह क्यों कह दिया
न कहो तो डरो कि पूछेंगे चुप क्यों हो

सुनो तो डरो कि अपना कान क्यों दिया
न सुनो तो डरो कि सुनना लाजिमी तो नहीं था

देखो तो डरो कि एक दिन तुम पर भी यह न हो
न देखो तो डरो कि गवाही में बयान क्या दोगे

सोचो तो डरो कि वह चेहरे पर न झलक आया हो
न सोचो तो डरो कि सोचने को कुछ दे न दें

पढ़ो तो डरो कि पीछे से झांकने वाला कौन है
न पढ़ो तो डरो कि तलाशेंगे क्या पढ़ते हो

लिखो तो डरो कि उसके कई मतलब लग सकते हैं
न लिखो तो डरो कि नई इबारत सिखाई जाएगी

डरो तो डरो कि कहेंगे डर किस बात का है
न डरो तो डरो कि हुकुम होगा कि डर

-खुद अपनी आँख से (1978)

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

त्रैमासिक

वर्ष-5, अंक-20, अक्टूबर-दिसंबर 2018

संपादक	:	डॉ. मीरा सिन्हा
सह-संपादक	:	डॉ. अर्चना पाण्डेय
प्रकाशक	:	आनंद कुमार सिन्हा
प्रबंध संपादक	:	आनंद प्रसाद नोनिया
कला सम्पादक	:	सुभागता श्रीवास्तव

संपादकीय कार्यालय :

आधुनिक अपार्टमेंट, 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन
सलकिया, हावड़ा-711 106, पश्चिम बंगाल

संपर्क : 0332675 1686, 098314 97320

ई-मेल : muktanchalquarterly2014@gmail.com

sinhameera48@gmail.com

समस्त पद अवैतनिक

व्यवस्थापन :

हेमंत सिंह, परमजीत कुमार पंडित, विनीता लाल, संदीप प्रसाद,
जीवन सिंह, पूजा प्रसाद, विद्या रजक।

विशेष सहयोग :

प्रो. मनीषा झा : उत्तर बंग विश्वविद्यालय, दार्जिलिंग

प्रो. मुक्तेश्वर नाथ तिवारी : विश्व भारती, शान्तिनिकेतन

डॉ. हरeram पाठक : डिगबोई महिला कॉलेज, आसाम

डॉ. पंकज साहा : खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल

डॉ. शुभ्रा उपाध्याय : खुदीराम बोस कॉलेज, कोलकाता

निशांत : काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल

सुलेखा कुमारी : विद्यासागर कॉलेज, कोलकाता

डॉ. पुनीत कुमार राय : शा. महाविद्यालय, शंकरगढ़, छत्तीसगढ़

राजीव रंजन : अरुणाचल विश्वविद्यालय, अरुणाचल

पत्रिका में व्यक्त विचारों में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं
'मुक्तांचल' से संबंधित सारे विवादों के लिए न्याय-क्षेत्र कलकत्ता
उच्च न्यायालय होगा।

मुक्तांचल : A/C-50200014076551

HDFC BANK, BURRABAZAR,

KOLKATA-700007

IFSC CODE :-HDFC0000219

मुद्रक : शिक्षण, 50, सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता-700009

पत्रिका का मूल्य

एक अंक-50 रुपये

सदस्यता शुल्क

वार्षिक-200 रुपये, आजीवन-2000 रुपये

संस्थाओं के लिए

वार्षिक-250 रुपये, आजीवन-2500 रुपये

डाकखर्च(प्रत्येक अंक के लिए) अतिरिक्त 30 रुपये देय होगा।

‘केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त’

अवस्थिति

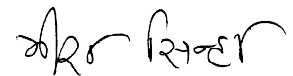
शोध	संस्तुति	
	आलेख	
	07 शशिभूषण द्विवेदी : व्यष्टि से समष्टि की डायरी यात्रा 17 रामयतन यादव : लघुकथा : संरचना-विधान 22 विनोद साव : व्यंग्य से मुठभेड़ की रचनात्मकता	
समीक्षा	अनुशीलन	
	26 डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय : बांग्ला साहित्य में राष्ट्रीय तत्व	
	विमर्श	
वर्णन	35 डॉ. ऋषिकेश राय : भाषा नियोजन और राजभाषा	
	समय की शिला पर	
	41 बद्रीनारायण : कठिन समय में है कविता	
सृजन	कविता	
	45 श्री हर्ष : छोटी-छोटी बातें, अर्थ का आधार, मौन घबरा कर 46 उमेश पंकज : जेठ की बारिश, मेहतर, मौत का स्थानान्तरण, अस्मिता का संकट	
	48 डॉ. राजवंती मान : आकाशगंगा में सपने, उसने कहा, अपने कदमों से, यात्रावृत्तांत, सूरजमुखी के फूल 51 अनुपमा 'अनुश्री' : अस्तित्व, नववर्ष का नवगान	
संवासर	सरगम के सुर साधे	
	53 विजेन्द्र : कविता : मेरी आत्मा का स्थापत्य	
	कहानी	
संवासर	60 सरोज खान 'बातिश' : सेकेंड सेक्स 69 डॉ. कृष्णा श्रीवास्तव : "कोई नाम दे दो" 75 डॉ. शुभ्रा उपाध्याय : 'नेपथ्य'	

शोध	लघुकथा	
	82 डॉ. पूरन सिंह	: शूद्र की गाय, जानवर, सिलसिला, नमाज, बेदखल
	विचारकथा	
	85 राणा प्रताप	: तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक, लोहे की बेड़ी, रेणु और उनकी नागरिकता, काले दिनों की उजली याद, ईश्वर और किताबें, कविता और किसान
समीक्षा	व्यंग्य कथा	
	89 कैलाश मण्डलेकर	: ओ दुनिया के रखवाले, सुन दर्द भरे मेरे “नाले”
	92 गिरीश पंकज	: हँसने वाले दिमागी लोग
व्याख्यान	95 राजशेखर चौबे	: डागी का फिटनेश ट्रेकर
	97 डॉ. पंकज साहा	: कबीरा गरब न कीजिए
	भाषान्तर	
	99 श्री नारायण पाण्डेय	: रबीन्द्रनाथ व प्रतीची(पश्चिम) मूल : बुद्धदेव बोस
सृजन	साक्षात्कार	
	105 सुनीता गुप्ता	: समकालीन कविता में पसीना नहीं है डॉ. खगेन्द्र ठाकुर से सुनीता गुप्ता की एक भेंटवार्ता
	पुस्तकायन	
	111 विमल वर्मा	: समय के इन्टर ऐक्शन का बोध
	113 अनिरुद्ध सिन्हा	: व्यंग्य वैयक्तिक भावनाओं का अभिव्यक्तिरण होता है
	115 डॉ. पिकी कुमारी बागमार	: भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य : रंजीत कुमार सिन्हा
संचार	गतिविधियाँ	
	117 इतु सिंह	: मुक्तांचल सृजन शृंखला-1 शुभ्रा उपाध्याय की कहानी ‘नेपथ्य’ का पाठ
	118 कनुप्रिया	: बंगाल के तीन साहित्यकारों को जन संस्कृति सम्मान
	119 सुधीर सुमन	: बादल की कविता जीवन की कविता है : रविभूषण
	अभिमत	
	120-121	: डॉ. हरeram पाठक, अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी

संस्तुति

इस 20 वें अंक के साथ मुक्तांचल ने अपनी यात्रा के पाँच वर्ष पूरे कर लिये हैं। अपने मुख्य उद्घोषणा शोध, समीक्षण, सृजन और संचार को गति देने की ईमानदार कोशिश में कितनी सफलता, मिली कितनी विफलता यह मैं नहीं जानती क्योंकि सफलता का दर्प एवं विफलता के नैराश्य से मैं कोसों दूर रहती हूँ। एक पत्रिका के कलेवर में कार्य सम्पादित करना जितना सर्जनात्मक है उतना ही विश्लेषणात्मक भी, हर कदम पर सवाल उठता है कि क्या यह अकादमिक पत्रिका उस अकादमिक जगत का कोई छोर भी छू पा रही है जिसके लिए वह है, या कि सर्जन के स्रोत में कितना नमक कितना पानी है कि वह फैले और पसीज दे जिससे लेखन और पठन दोनों एकसार हो सके जो नहीं हो पा रहा है। दरअसल लेखक आज पर्यवेक्षक नहीं बन पा रहा है क्योंकि वह अपने अन्दर के सूनेपन से डरता है और उसे भरने के लिए वह भीड़ भरे बाजार में निकलता है और खो जाता है। सजे-सजाये साहित्य बाजार में ललक और लालसा की चकाचौंध उसे अन्धा बना देती है छोटी और अव्यवसायिक पत्रिका का नियमित प्रकाशन एक अलग तरन्नुम है। कहा जाय तो पत्रिका अकादमिक है और इसमें लिखने-पढ़ने वाले साहित्यिक रुचि और गति से सम्पन्न लोग हैं फिर भी इसका वैसा स्वागत नहीं है क्योंकि सैकड़ों प्रतियाँ पाठकों तक प्रेषित की जाती हैं परन्तु प्रतिक्रिया विरले ही भेज पाते हैं। छपने की ललक रखने वाले अगाध सामग्री भेजते हैं परन्तु यह प्रकाशित होने लायक नहीं होती, विचार और संवेदना दोनों ही थोपे से लगते हैं क्योंकि वे चलने वाले विमर्शों की 'कटिंग' मात्र होते हैं-स्वतः स्फूर्तता का नितान्त अभाव होता है। आत्म प्रचार की प्रवृत्ति लेखकों में इतनी-बढ़ती जा रही है कि वे जैसे-तैसे जिल्द में बंधकर लोकार्पित हो जाना चाहते हैं-पन्ने पलट कर देखिए तो घास-पतवार के सिवा कुछ नहीं मिलेगा, जबकि इसके विपरीत पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा हुआ साहित्य चलता पानी है। जो जिल्द में बँधी किताब से अलग है जिसमें विचारों को कैद कर दिया जाता है। हवा और पानी की तरह चलायमान पत्र-पत्रिकाओं का संसार अब सिमटने लगा है क्योंकि उन्हें कोई प्रेरित नहीं करता।

बहरहाल, ढाँचा बनता है और लचीलेपन की वजह से धीरे-धीरे टूट भी जाता है। 'मुक्तांचल' ने भी अपने कलेवर में सृजनशीलता को समेटा है, प्रत्येक विधा अपने रूप को विस्तार देती रहती है, कथा-विधा के अन्तर्गत कहानी, उपन्यास ही नहीं लघु कथा, व्यंग्य कथा और विचारकथा का भी अपना स्थान बनता जा रहा है, आवश्यक है कि कहानी के विविध रूप की तलाश की जाये, कविता को उसके समय की सापेक्षता के साथ आकलित किया जाये, इसके लिए 'मुक्तांचल' प्रयासरत है। इस प्रयास में आपकी सहभागिता परम आवश्यक है।



संपादक

व्यष्टि से समष्टि की डायरी यात्रा

शशिभूषण द्विवेदी

साहित्य अपने आप में एक ऐसी शाश्वत, सशक्त और व्यक्तिगत विश्व के संदर्भ में ईश्वरीय संज्ञा है जिसमें कुछ भी आए, या जो भी स्वीकार्यता के स्तर पर घटित हो जाये, वह सब उसका हिस्सा यानी साहित्य ही हो जाता है। हिंदी में छायावाद के बाद जब कविता ने अपने को तगण, मगण आदि से मुक्त किया-हालों कि इन सब व्याकरणिक मानकों या शास्त्रीयता को नकारा नहीं गया और लोग इन मानकों पर कविताएँ लिखते रहे और आज भी लिख रहे हैं-या यूरोप में सॉनेट आदि व्याकरणिक और शास्त्रीय मानकों तक सीमित न होकर गद्य में बरती जाने लगी या घटित होने लगी तो साहित्य में नई-नई विधाओं का वर्गीकरण भी होने लगा। कभी-कभी यह भी लगा कि वर्गीकरण भी छोटा पड़ने लगा है-तब लेखकों ने अपनी अभिव्यक्ति को स्वतंत्र छोड़कर सिर्फ लेखन या लिखने मात्र को महत्वपूर्ण माना बाकी कुछ दूसरों पर छोड़कर-खासतौर से आलोचकों पर छोड़कर कि वे रचित साहित्य की विधा तय करें। यह आलोचक नाम के जीव के लिए एक चुनौती थी और कभी-कभी तो विधा निर्धारण के लिए उसे नाकों चने चबाने पड़े और ऐसा समय आया कि आलोचक छोटा पड़ने लगा और उसने एकदम से पलायन का रास्ता ही अपना लिया, या जो एकदम नाकारा था वह एकदम या तो चुप रह गया या ऐसे तर्क देता रहा जो साहित्य के लिए घातक था। समय चाहे उन्नीसवीं सदी की औद्योगिक क्रांति के पहले का यूरोप में हो या आजादी के लड़ाई से जूझता हुआ बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का एशिया का—याद कीजिए 1947 में भारत की आजादी के तुरंत बाद 1949 में श्रीलंका, 1951 में वर्मा आदि का स्वतंत्र आदमी या व्यक्तिमात्र की अभिव्यक्ति इतनी महत्वपूर्ण हो गई कि विधाओं का सारा व्याकरण शीर्षासन की मुद्रा में आ गया और कभी-कभी तो उसकी भूमिका मात्र दर्शक की ही रह गई। हिंदी में भी विधा निर्धारण या कोटि-निर्धारण का काम

अधिकतर आलोचकों के हवाले हो गया; या जाने-अनजाने उसके हवाले कर दिया गया। वजह यह भी रही कि उस समय या आज भी शुद्ध लेखक इस फेरे में नहीं पड़ता है। वादी या विवादियों की बात अलग है। लेकिन हर क्षेत्र में बाजारूपन में माहिर और अपने स्वार्थ के लिए सचेत यूरोपियनों और अंग्रेजों ने अपने गैलिलियों जैसे वैज्ञानिक को जला डाला, सुकरात को विष दे डाला और ईसा को कील ठोंककर मार दिया। अंग्रेजी साहित्य में जिस इतिहास को बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी में चौसर से शुरू माना जाता था उसे खींचकर अपने वर्चस्व के लिए सचेत अंग्रेज पांचवीं छठी शताब्दी तक ले गए और अंग्रेजी साहित्य के इतिहास के पक्ष में यह तर्क दिया कि उसकी शुरुआत उन कागज-पत्रों या डॉक्यूमेंट से भी मानी जाये जो तत्कालीन अल्लों, जमींदारों या राजाओं के दरबार में लिखे गए क्योंकि उनके अनुसार वे भी साहित्य थे, या हैं और उन्हें ऐसा ही माना जाना चाहिए। हमारे यहाँ भारतीय अंग्रेजी साहित्य का इतिहास लिखते समय बी. के. गोकाक आदि विद्वानों ने इस परंपरा को अपनाया है। इसलिए, जाहिराना तौर पर तुलसीदास के समकालीन ही कहे जाने वाले मिल्टन (1608-1674) और बाद के रोमांटिक रूप के कवि विलियम बड्सवर्थ के पेंपलेट भी साहित्य मान लिए गए। मिल्टन के पेंपलेट राजाओं के खिलाफ थे और बड्सवर्थ अपने श्रीकांत वर्मा की तरह कुछ राजनीतिज्ञों के चहेते थे। समानता का दूसरा महत्वपूर्ण बिंदु देखिए कि मिल्टन राजाओं, जमींदारों को गालियाँ दे रहे थे और तुलसीदास (1554-1680) अपने पूर्ववर्ती कुंभन दास का दोहा उद्धृत करते हुए अपने मित्र रहीम खानखाना के अनुरोध के बावजूद 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम' कहकर जाने से इंकार कर रहे थे (तुलसीदास की जन्मतिथि पर मतभेद हैं लेकिन मैंने उनका समय आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास से लिया है।) जाहिर सी बात है कि उधर मिल्टन और दूसरों के पेंपलेट साहित्य मान लिए गए

और इसी भावना की एक स्वीकार्य प्रतिध्वनि हमें उन्नीसवीं शताब्दी में हिंदी में भारतेन्दु की 'भारत-दुर्दशा' में और उधर विक्टोरियन राज के कवियों में सुनाई देने लगी।

तात्पर्यतः विधाओं की बंदिश को बदलती दुनिया के बदलते हुए मन ने एक प्रजातांत्रिक झटका दिया और दिल तथा दिमाग के मेल से जो रचित या लिखित हमारे सामने आया उसमें विधा का मामला महत्वपूर्ण नहीं रह गया। हम सब जानते हैं कि हिंदी में सब कुछ धीरे-धीरे, सहमे-सहमे, शंकित दृष्टि से घटित होता है और हिंदी-समालेचना में ये नकारात्मक गुण अपने बौद्धिक बौनेपन को छिपाने के लिए खासतौर से आलोचकों में कुख्यात रहे हैं। यहाँ कई और नकारात्मकताओं के कारण प्रतिभाशाली लोगों की स्वीकार्यता का संस्कार भी बहुत संकरा रहा है। यही कारण है कि भयंकर प्रतिभा-संपन्न और घोषित मार्क्सवादी मुक्तिबोध तथाकथित मार्क्सवादियों से ही महानुपेक्षित हो लकवे के शिकार हो असमय काल-कवलित हुए और निराला असीम-प्रतिभा संपन्नता के बावजूद विक्षिप्त हुए यह अनायास नहीं था कि महादेवीजी ने ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलने पर पत्रकारों से तड़पते मन से कहा था "इतना। पैसा मुझे महाप्राण के जीवित रहते मिला होता तो मैं उन्हें ऐसे नहीं मरने देती।" इन बातों का आधार बनाकर अगर कहा जाये तो कहा जा सकता है कि इनके बलिदान से साहित्य के बंधे-बंधायें व्याकरण का तिलिस्म या उसकी शास्त्रीयता अगर टूटी भी तो मुक्तिबोध के एक साहित्यिक की डायरी और निराला के बिल्लेसुर बकरीहा का रास्ता एकदम साफ हो गया और माना गया, या मान लिया गया कि 'डायरी' भी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है और भारी भरकम विधा इसलिए भी है क्योंकि उसमें मन की गति मन से भी तेज होती है और साहित्य जैसा ही शाश्वत समय अपने कई टुकड़ों, अंशों, कोणों और प्रक्षेपणों के साथ उपस्थित होता है : मजा यह कि यह 'समय' डायरी के

खुद अतिरिक्त खुलापन और उदार जनतांत्रिकता के साथ-साथ एक समाजशास्त्रीय उत्तरदायित्व भी देता है; और चूंकि डायरी में लेखक एक अतिरिक्त सजगता के साथ अपनी स्वीकार्यता के प्रति भी चिंतित और सजग दोनों होता है, इसलिए उसमें एक अतिरिक्त अनुशासन भी आ जाता है। जो रचनाधर्मिता का सामान्य गुण भी है।

इसलिए डायरी कई अर्थों-संदर्भों-अन्वयों में विधाओं की विधा भी हो जाती है और थोड़ी और छूट लेकर कहा जा सकता है कि उसमें उपन्यास का फैलाव और महाकाव्यत्व, कथा की उत्सुकता, कविता का माधुर्य, दर्शन की शाश्वतता, व्यक्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक आर्थिक जीवन के उहापोह, उल्लास उमंग आदि सभी मानवीय भावनाएं एकसाथ देखी जाती है। साथ ही अलग-अलग मौकों पर इन सब को अलग-अलग छंटकर भी समझा जा सकता है। इस तरह डायरी को साहित्य का एक ऐसा बड़ा मैदान माना जा सकता है जिसमें पूरा साहित्यिक-ओलंपिक खेले जाने की संभावना होती है।

याद आता है कि उपन्यासों का उपन्यास या 'नॉवेल ऑफ नॉवेल्स' कहा जाने वाला महान अंग्रेजी उपन्यासकार जेम्स ज्वाएँस (1822-1941) का उपन्यास 'यूलिसेस', फ्रेंच लेखक ज्यार्पोल सार्त्र (1905-1980) की कई कहानियाँ, कई सारी फिल्में आदि जब एक दो रातों में ही घटकर इतिहास में दर्ज होकर आने लगीं; तो लगा कि कहन, या कथन, या नैरेशन अपने आप में अगर बहुत सशक्त हो तो उसकी विधा समय नाम का आलोचक तय कर देगा और उसके लिए सिर्फ लिखित शब्द काफी होंगे जिन्हें समाज और पाठक या पाठकीय-समाज अपनी सामर्थ्य और आवश्यकता के अनुसार अपनाएगा। इक्कीसवीं शताब्दी में हृदय (याद करें विवेकानंद को जिन्होंने कहा कि हृदय के निर्णय को दिमाग के निर्णय की जगह तरजीह देना चाहिए।) या मन साहित्य को एक अलग ईकाई की तरह मनोविज्ञान

और दर्शन और समय के दबावों के कारण उभरा है और उसकी गोत्रधारी डायरी ने ऐसी कई विधाओं का रास्ता साफ कर दिया है जो अभी अनजान है और अपनी संज्ञा या पहचान की दस्तक देने वाली हैं। मलयज की डायरी, अज्ञेयजी की 'भवन्ति', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'दिन-रैन', या लीलाधर मंडलोई की 'दाना-पानी' जैसी डायरी की शैली में लिखी किताबें साहित्य की धरोहर हो चुकी हैं। यह धरोहर तत्त्वदर्शी मुक्तिबोध के 'एक साहित्यिक की डायरी से शुरू हुई भारतीय अंग्रेजी के लेखक आर के नारायण (1906-2001) में उनकी' माई डेटलेस डायरी के रूप में लगभग उसी समय घटित हुई, मलयज के साथ स्वीकार्य हुई और अब इस शताब्दी में अपनी कई परतों-घटकों-ईकाइयों के साथ नए रूप में घटित हो रही है।

इस भूमिका की आवश्यकता इसलिए भी पड़ी कि जो मैं अभी लिखूंगा उसका संबंध इसी वर्ष के अगस्त महीने से है और लोगों के मानस में अद्भुत संयोग की तरह घटित होने वाली घटनाओं ने मुझे इतना बांध रखा है, इन्होंने मेरे भीतर इतनी बेचैनी पैदा की है, कि मैं इस अगस्त को एक अलग अंदाज में देख रहा हूँ। दिन-तारिख को अगर नजर-अंदाज भी कर दिया जाये तो 'समय' का यह अगस्त वाला अंश मेरे लिए सिर्फ व्यक्तियों उन व्यक्तियों की याद का अगस्त नहीं है, यह इन व्यक्तियों की मृत्यु से निकला एक ऐसे शाश्वत-विमर्श का सिलसिला है जो साहित्य, राजनीति, सभ्यता-विमर्श, हमारे समय के दबाव, उहापोह और बेचैनी, तथा बाकी और कई कारकों का समन्वय है जो भविष्य को प्रभावित करने वाले हैं। एक और शाश्वत सच्चाई यह भी कि ये सब के सब 'मृत्यु' नाम के एक अद्भुत परिघटना से जुड़े हैं और गहराई से समझने-समझाने की कोशिश करने पर अपने समय के दर्शन, मनोविज्ञान, साहित्य, संस्कृति राजनीति आदि के ऐसे कॉकटेल बनाते हैं जिनसे हमें अपने वर्तमान को परखने की एक दृष्टि मिल सकती है। सोने में सुगंध जैसी बात यह कि

ये सभी ज्ञान को किसी न किसी विधा से जुड़े लोग थे, बल्कि इनमें गणित का एक लघुतम समापवर्तक यानि 'Lowest Common Multiple' वाला तत्त्व भी है : वह यह कि ये सबके सब लोग अपने-अपने क्षेत्र के दिग्गज हैं और सबों में L.C.M. की तरह अपनी मृत्यु इसको बीते अगस्त महीने से एक अद्भुत संयोग के साथ जोड़ कर रखा था, इन लोगों ने समय के चक्र को अपने काबू में कर लिया था। अब ये कालजयी है : समय इनकी व्याख्या करता रहे। इसलिए आप इस लेख को मेरी अगस्त-डायरी की तरह पढ़ें; इसमें समय गौण है, ज्ञान को विभिन्न अनुशसानों की व्याख्याएँ भविष्य की तरफ गतिशील हैं, विमर्श तो हमेशा इतना उदार होता है कि वह किसी का रास्ता नहीं रोकता और सभ्यता के आगे बढ़ने का क्रम इतना शक्तिशाली है कि उसे ज्ञान के अंकुश की परवाह नहीं होती!!

2018 का अगस्त : यानि वी एस नॉयपाल, गोपालदास नीरज, अटल बिहारी वाजपेयी, सोमनाथ चटर्जी, करुणानिधि, कुलदीप नैयर आदि का हमारे बीच से दो एक, तीन, चार दिनों के अंतराल पर उठ जाना; ऐसा उठ जाना जिसके लिए मुझे अभी सिर्फ महान शायर मीर ही याद आते हैं :

‘देख तो दिल कि जां से उठता है
ये धुँआ सा कहाँ से उठता है.....S.....
बैठने कौन दे है उन को
जो तेरी आस्तां से उठता है S.....
यूँ उठे आह! उस गली से हम.....S
जैसे कोई जहाँ से उठता है S.....’

ये सब विभूतियाँ जहाँ से उठ गईं लेकिन वहाँ बैठ गईं जहाँ समय ठहरता भी है और गतिमान भी होता है : यानि कुछ लोग हनुमान की तरह समय के सारे चक्र पर भारी पड़ जाते हैं : याद करे ‘राम की शक्तिपूजा’ का वह प्रसंग जहाँ संजीवनी बूटी लाने जाते हुए हनुमान से कहा जाता है कि उन्हें सूर्योदय से पहले ही लौटना पड़ेगा, वरना बूटी काम नहीं करेगा। महाबलि

हनुमान को गुस्सा आ जाता है और वे कहते हैं ‘कल मेरे बूटी लेकर लौटने के बाद ही सूर्योदय होगा। अगर मैं समय से नहीं लौटा तो मैं सृष्टि का चक्र बदल दूँगा। मैं सूर्योदय होने ही नहीं दूँगा।’ यह समय सृष्टि के चक्र पर बहस का नहीं है, मैं बस इतना कह सकता हूँ कि इन लोगों ने अपने समय के विमर्श में अपने अपने ढंग और स्तर पर काफी कुछ जोड़ा और इतिहास के अपने समय में अपना मुकाम निश्चित किया। इन सबको एक साथ करके देखने के पीछे मेरी मंशा यह है कि इन सबके L.M.C. यानि साहित्य से इनके संबंध को अपनी क्षमतानुसार पकड़ूँ और कुछ कहूँ!! इसलिए सबसे पहले वे जो शुद्ध रूप से साहित्य के होकर रहे यानि नॉयपाल और नीरज या फिर वे जो साहित्य और राजनीति दोनों में रहे यानि अटलजी और करुणानिधि, फिर कुलदीप नैयर जो उस पत्रकारिता में रहे। “जल्दी का साहित्य” यानि ‘Literature in hurry’ कहा जाता है और एक इटालियन कहावत के अनुसार यह भी कहा जाता है कि एक अच्छा पत्रकार जो कुछ भी लिखता है, अच्छा ही लिखता है यानि ‘A good journalist can write anything well’ और इन्हीं सबों के साथ शुद्ध राजनीतिज्ञ और कानून मर्मज्ञ सोमनाथ चटर्जी जिन्हें आधार बनाकर हम अपने समय की कई सामाजिक- आर्थिक सांस्कृतिक परतें खोल सकते हैं :

आइये नॉयपाल से शुरू करें;

सर विद्याधर सूरजप्रसाद नॉयपाल के व्यक्तित्व के तीन महत्वपूर्ण पक्ष हैं : वे अप्रतिम कथाकार हैं। वे उसी अनुपात के विमर्शकार हैं। इन दोनों को उनके भीतर का पत्रकार संतुलित रखता है। और इन सबमें उनका व्यक्तित्व अपनी पूरी इयत्ता और सार्थकता के साथ समाहित है और वह प्रायः आलोचना का पात्र है। लेकिन बीसवीं शताब्दी की दुनिया का सांस्कृतिक-साहित्यिक सभ्यतागत विमर्श विख्यात और कुख्यात, दोनों धाराओं से हमेशा खबरों में रहने वाले नॉयपाल के बिना हो ही नहीं सकता, क्योंकि उन्होंने अमर्त्य सेन

की तरह सभ्यता-संस्कृति के हर कोण को किसी न किसी रूप में साहित्य-खासतौर से कथा-विधा से जोड़कर देखा यानि लिखे वे चाहे जो कुछ भी उनकी विधा हमेशा कथा रही। उनकी बत्तीस(32) किताबों में सोलह(16) उपन्यास हैं और बाकी किताबें भी लिखी तो पत्रकारिता की शैली में हैं, लेकिन उसमें विधा शुद्ध-कथा की है। इन किताबों में भी पात्र ही अपनी बात करते हैं और नॉयपाल प्रश्न करके अलग हो जाते हैं। हिंदी में यह क्षमता सिर्फ निर्मल वर्मा में रही है। मेरा मानना है कि निर्मल जी नॉयपाल का सही 'मैच' हैं। दोनों पर एक किताब की ही मेरी योजना है।

नॉयपाल से मेरा एक रिश्ता और बनता है/ यानि उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के उसी गोरखपुर के थे जहां के मेरे पूर्वज थे। 18 वर्ष की उम्र में नॉयपाल दुनिया भर में प्रतिष्ठित ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ने गए थे और मैं भी वहाँ आठवें दशक में पढ़ चुका हूँ। मेरी पढ़ाई के दौरान वे दो बार ऑक्सफोर्ड में भाषण देने आए। मैंने दोनों बार उनसे कुछ प्रश्न किए और दो स्वतंत्र साक्षात्कार भी उनके लिए जो बाद में एक लंदन स्थित पत्रकार मित्र स्वप्न दास गुप्त की मदद से 'लंदन टाइम्स' और 'टेलीग्राफ' अंग्रेजी दैनिकों में छपे। लेकिन मेरे लिए नॉयपाल दुनिया में सबसे अच्छा 'अंग्रेजी गद्य लिखने वाला' यह व्यक्ति इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इन्होंने साहित्य के ज्ञान को ज्ञान की बाकी विधाओं से जोड़कर साहित्यकारों के लिए एक नई राह भी दिखाई जिससे बीसवीं शताब्दी की आलोचना को एक खास तरह का लाभ हुआ पत्रकारिता की शैली में दुनिया भर में धूम-धूमकर लिखी उनकी किताबों बियांड विलीफ, इन्डिया : अ उन्डेड सिविलाइजेशन, 'अ राइटर्स पीपुल' आदि ने उन्हें सभ्यता-विमर्शकार के रूप में भी स्थापित किया हालांकि उपन्यासकार के रूप में तो वे अपने उपन्यास 'अहाउस फॉर मिस्टर विश्वास' से पहले ही स्थापित हो चुके थे जब इस उपन्यास के बाजार में आने के दस दिनों के भीतर उन्हें दुनिया के

अट्टारह(18) विश्व-विद्यालयों से भाषण, पाठक के निमंत्रण मिले थे। अपनी ऐंठ के लिए कुख्यात हालांकि अपने समय के एक बड़े मौलिक आलोचक नित्यानंद तिवारी ने एक बार मुझसे बातचीत में कहा था कि प्रतिभाशाली और मेधावी आदमी थोड़ा ऐंठू भी हो तो समाज को उसको बर्दाश्त करना चाहिए, नॉयपाल से, यह अनायास नहीं है कि जब उन्हें 2001 के अक्टूबर में नोबेल पुरस्कार मिला तो फोन पर नोबेल समिति के सचिव ने जो पहला वाक्य बोला, वह यही था, 'सर! हमें यह उम्मीद है कि आप हमारा वही हाल नहीं करेंगे जो सार्त्र ने किया था यानि 'You are not going to do a sartre on us'. दुनिया जानती है कि महान् फ्रांसीसी लेखक और दार्शनिक ज्यॉ पॉल सार्त्र ने 1964 में यह कहकर नोबेल पुरस्कार लेने से इंकार कर दिया था कि मैं अपनी पीठ पर यह आलू का बोरा ढोना नहीं चाहता।' सचिव का इशारा इसी तथ्य की तरफ था और नॉयपाल की ऐंठ तो दुनिया को पता ही थी। लेकिन नॉयपाल जो उस सुबह मुंह धो रहे थे अपनी पाकिस्तान मूल की पत्नी नादिरा नॉयपाल के कहने से फोन पर आए और कहा "नहीं नहीं! मैं आप का सार्त्र वाला हाल नहीं करूंगा। मुझे यह मंजूर है। इससे मेरा और मेरे पूर्वजों के देश भारत का नाम रौशन हुआ है।" कुछ लोग त्रिनिदाद को—जहाँ उनके पूर्वज उन्नीसवीं शताब्दी में 'मजदूर' बनाकर कांग्रेस मालिकों द्वारा गन्ने ने खेतों में काम करने के लिए ले जाए गए थे; याद नहीं करने के लिए उनकी आलोचना करते हैं लेकिन उनके पाठक जानते हैं कि वे उस देश और वहाँ की हबशी आबादी को पसंद नहीं करते थे और उन्हीं के शब्दों में अफ्रीका का कोई भविष्य नहीं है।" उनका जीवन-जिसे जाने माने पत्रकार लेखक, पेटरीक फ्रेंच ने लिखा है—"द वर्ल्ड इज ह्वाट इट इज" में यह सब वर्णित है कि कहां-कहां नॉयपाल को गालियाँ मिली, कहां उन पर जूते फेंके गए, कहां-कहां उन्हें बोलने नहीं दिया गया। मगर इस पट्टे को धन्यवाद देना पड़ेगा कि आदमी ने

जो चाहा, वही किया और अपनी नोबेल पुरस्कार समिती से विशेष-प्रशंसा प्राप्त किताब 'बियांड बिलीफ' में लिखा 'कोई भी मुसलमान जो अरब देशों में पैदा नहीं हुआ, धर्म-परिवर्तन करके बना हुआ मुसलमान है यानि Any one who is a muslim and not an Arab, is a convert; जाहिर सी बात है कि बहुत लोगों को इस वाक्य को पचाने में परेशानी हुई और माना जाने लगा कि नॉयपाल भारत में एक ऐसी पार्टी के मददगार हैं जो इन बातों को बढ़ावा देती है। लेकिन नॉयपाल ने यह किताब भारत, पाकिस्तान, ईरान, बांग्लादेश आदि उन देशों की यात्रा के बाद एकदम कथा-शैली में लिखी है जो अरब देशों की परिधि में नहीं आते। नॉयपाल का मानना ठीक ही है कि अपने 'essence' यानि अपनी आंतरिक-बनावट में इस्लाम "अरब और सिर्फ अरब" (Arab and precisely Arabi speaking region) का धर्म है। इस किताब में ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक और सभ्यतागत तर्कों, मानकों और उदाहरणों से यह साबित किया गया है कि कोई भी व्यक्ति जैसे हों अपना धर्म परिवर्तित करता है वह अपने संस्कृति, वातावरण, अतीत खानपान, वेशभूषा, भाषा आदि से तुरत कट जाता है और जहाँ जाता है वहाँ जीवन भर इस जद्दोजहद में रहता है कि वह 'आखिर है कौन'। जो वह पहले 'था' या अब 'है'? जाहिर सी बात है कि कुछ दलीय संदर्भों के साथ यह बात जाति-धर्म से हटाकर अगर व्यक्ति, समाज और उसके परिवर्तन-परिवेश से जोड़कर व्याख्यायित की जाये तो नॉयपाल खुद इसके शिकार रहे (यानि उत्तर-प्रदेश) के एक कर्मकांडी परिवार का लड़का जिसके बाबा कपिलदेव महाराज-जो संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे और कभी बिना खड़ाऊ के नहीं चलते थे, को गरीबी के कारण अंग्रेजों के सांप, बिच्छुओं से भरे हुए गन्ने के खेतों में काम करने वाले के लिए पानी के जहाज में बोरों की तरह भरकर त्रिनिदाद भेजा गया, जो हव्सियों के बीच पैदा हुआ और 18 वर्ष की कच्ची उम्र में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति पाकर इंग्लैंड

आ गया और जीवन भर उसे यह अहसास होता रहा, या कराया जाता रहा कि हालांकि वह "दुनिया का सबसे अच्छा अंग्रेजी का जानकार है" फिर भी वह एक 'भारतीय' है जिसकी चमड़ी यूरोपियन या अंग्रेज की नहीं है। नॉयपाल के पूरे लेखन में यह दर्द कई कोणों, प्रसंगों और संदर्भों में मुखरित है। जाहिर सी बात है कि गीतकार नीरज की पंक्ति उस नॉयपाल पर भी लागू होती है जिन्होंने कविता तो नहीं लिखी लेकिन अपने ही देश के अप्रीकी मूल के नोबेल पुरस्कार विजेता कवि बॉल्काट को यह मान अपनी चर्चित किताब "अ राइटर्स पिपुल में देते रहे कि बॉल्काट जैसे लोगों ने नॉयपाल जैसों का निर्माण किया है। नॉयपाल और बाल्काट दोनों को अंग्रेजों के इंग्लैंड में अपनी चमड़ी के रंग के कारण झेलना तो बहुत कुछ पड़ा; लेकिन दोनों ने अपनी बनावट की धातु को साबित किया और नोबेल पुरस्कार जीता। यह अनायास नहीं है कि बॉल्काट ने एक बार 'बहुत-निराश' विधाधर से कहा था, 'बच्चे! लड़ो-लड़ो निराश मत हो। कत्तई नहीं। तुम्हारा रंग तो थोड़ा साफ भी है। मुझे देखो। एकदम काला भुच्च हव्शी! लेकिन अंग्रेज मुझसे अपनी अंग्रेजी ठीक कराते हैं।' नीरज की चर्चा मैंने इन दोनों के संदर्भ में इसलिए की थी कि उनकी एक पंक्ति है :

‘सूनी-सूनी सांस के सितार पर
भींगे-भींगे आसुओं के तार-पर
एक गीत गा रही है जिन्दगी
एक गीत सुन रही है जिन्दगी

—नीरज भी इसी अगस्त

मैं हमारे बीच से चले गए लेकिन एक तथ्य यह छोड़ गए कि गीत को कविता से अलग करके देखने की अहम कई पार्टनरों की पॉलिटिक्स वाली आलोचना छोड़े और गीत को कविता की हर विधा की तरह ही समझा, देखा, व्याख्यायित किया जाय। कवि और पूर्व ऐतिहासिक प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी भी इसी अगस्त में अपनी कविता की पंक्ति 'हार नहीं मानूंगा,

रार नहीं ठानूंगा' को छोड़कर हमसे विदा हो गए।

आज की राजनीति को 'यह मुझे रास नहीं आती' जैसी कहने वाले अटलजी अपनी समूची बनावट में कवि-पत्रकार थे। नीरज की परंपरा का कहने के पीछे मेरा मतलब यह था कि दोनों ने तुकांत कविताएँ ज्यादा लिखी हैं, और दोनों की कविताओं में समय-संदर्भ अपने-अपने ढंग से व्यक्त हुआ है।

अटलजी को राजनेताओं में अलग दर्जा इसलिए भी प्राप्त है क्योंकि उन्हें उस पार्टी की कट्टरता बिल्कुल पसंद नहीं थी जिसमें वे जीवन भर रहे और प्रधानमंत्री तीन बार हुए। उन्होंने उस दल से पढ़े-लिखे लोगों को जोड़ा और जब लगा कि 'पार्टी विथ अ डिफरेंस' बाकी से अलग नहीं है। तो लोग सभा में एक बहस के दौरान कहा 'मुझे नहीं रास आती आज की राजनीति।' इस पर किसी मजाक में कहा 'तो छोड़ देते'। अप्रतीम हाजिरजवाब अटलजी ने तपाक से कहा, 'अरे मैं तो कब का छोड़ चुका होता। यह नहीं छोड़ती है मुझे'। यह वाक्य कई अप्रत्यक्ष तमाचों की तरह है।

और इन्हीं तमाचों को विद्वान राजनेता और लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष इंग्लैंड में पढ़े-लिखे बैरिस्टर सोमनाथ चटर्जी ने तब झेला था जब उनकी पार्टी के कुछ नकारा किस्म के दोगलों ने-जो हर दोगलेपन के लिए 'हिस्टोरिक ब्लैंडर' या ऐतिहासिक-गलती का अर्थहीन राग अलापने के लिए कुख्यात रहे हैं—निकाल बाहर किया था। यह अनायास नहीं है कि उनकी मृत्यु के बाद उनके परिजनों ने उस पार्टी के एक भी आदमी को अपने घर में नहीं घुसने दिया और न उनकी लाश को पार्टी-कार्यालय में ले जाने की अनुमति दी। वे अपनी हर बात को एक सही पत्रकार की तरह गृह-कार्य या होम-वर्क करके पूरी प्रखरता के साथ कहने के लिए विख्यात थे और उन्हें लोकसभा की तकरीरों के लिए 'सबसे अच्छा' वक्ता का पुरस्कार भी मिला था और पत्रकार कुलदीप नैयर से उनकी दोस्ती विख्यात थी।

कुलदीप नैयर की याद करना मेरे लिए बहुत

दुःखद है क्योंकि मुझे पत्रकारिता में लाने का श्रेय नायर साहब जिन्हें मैं अपनी पूर्विया शैली में 'काका सर' कहा करता था, को ही है। छः वर्ष तक दिल्ली विश्वविद्यालय के एक प्रतिष्ठित कॉलेज में जहाँ मैं पढ़ा-लिखा भी था, स्थायी नौकरी के बाद जब मुझे यह महसूस होने लगा कि इस नौकरी में रहकर सामाजिक जीवन में कोई बड़ा रोल अदा नहीं कर पाऊँगा तो मेरे मन में नौकरी छोड़ने का कीड़ा कुलबुलाने लगा। एक दिन मैं अपने गुरु, मार्गदर्शक और दिल्ली में मेरी हर सहायता के सहभागी जाने माने कहानीकार और राजनीतिक टिप्पणीकार डॉ. महीप सिंह के यहाँ बैठा था। हम कुछ दोस्त और कुछ जे. एन. यू के दोस्त वहाँ थे और उस आठवें दशक के 'गर्म' पंजाब पर चर्चा चल रही थी। महीप सिंह जी ने जिन्हें सभी डॉक्टर साहब कहकर ही संबोधित करते थे, अपनी सुरक्षा के लिए इंदिरा गांधी सरकार से सुरक्षाकर्मी लेने से इंकार कर दिया था। उनके 'जनसत्ता और नवभारत टाइम्स' अखबारों के लेखों का विषय पंजाब ज्यादा हुआ करता था। हमारी बातचीत के बीच में डॉक्टर साहब ने कहा कि वे अपनी पत्रिका त्रैमासिक 'संचेतना' को मासिक करने का सोच रहे हैं और चाहते हैं कि हम सब दोस्तों का सहयोग उन्हें मिले। अपने मजकिया स्वभाव के अनुकूल उन्होंने हम सबों की ओर देख कर मुस्कराते हुए यह भी कहा, 'मैं तुमलोगों को लिखने के पैसे भी दूँगा, लेकिन तुमलोगों को हिसाब देना पड़ेगा कि उसमें से कितने पैसों का सिनेमा देखा।' हंसी का फब्बारा छूटा ही था कि उसी समय नायर साब और इन्द्र कुमार गुजराल सुरक्षा कर्मियों से घिरे डॉक्टर साहब के भिवाजी? नगर के मकान में उतरे। परिचय होने के बाद 'चाय-चूँ' का दौर चलना ही था, मेरा दस वर्ष तक पंजाबी-समाज के बीच रहने का अनुभव यही है और आज भी कायम है, कि इन घरों की 'चाय' भी 'यज्ञ' का आभास कराती है। काका सर से वहीं जान पहचान हुई और मैं उनके यहाँ आने-जाने लगा। मैंने एक दिन उनसे कहा कि मैं

लेक्चररशिप छोड़ना चाहता हूँ। बिना एक पल रुके वे बोले, 'हाँ, वहाँ एडजस्ट कर जाओगे। पत्रकारिता करो। पत्रकारिता को ठीक-ढंग से पढ़े-लिखे नौजवानों की जरूरत है।' लगभग मिलती-जुलती बात डॉ. महीप सिंह ने भी कहा और मैं पढ़ाने की नौकरी छोड़कर पत्रकारिता में आ गया।

काका सर ने पत्रकारिता को नई-ऊँचाई दी, खोजी-पत्रकारिता के नए-मापदंड बनाये और दुनिया को दंग कर देने वाली खबरें उस उम्र में दी जिसे लोग अंधेड़ कहते हैं। वे अपनी खड़खड़ाती हुई फिएट से बाघा बोर्डर से होते हुए। पाकिस्तान जा सकते थे। वे देश के पहले पत्रकार थे जिन्होंने इलाहाबाद हाइकोर्ट में राजनारायण और इंदिरा गांधी के मुकदमें को हर-तारीख पर उपस्थित रहकर देखा और अपने अंतर्राष्ट्रीय स्तंभ 'विट्वीन द लाईन्स' में लिखा। वे पहले पत्रकार थे जिन्होंने लिखा कि इंदिरा गांधी संजय गांधी की मदद से मुकदमा हारने के बाद आपतकाल लगा सकती है। वे पहले पत्रकार थे जिसे उस मुकदमे के जज जगमोहन लाल सिन्हा ने प्रोटोकल तोड़ते हुए साक्षात्कार दिया और बताया कि उन्हें सुप्रीम कोर्ट का जज बनाने से लेकर राजदूत बनने तक के कितने 'ऑफर' उस दौरान दिए गए थे। काकासर पहले पत्रकार थे जो 'आपरेशन ब्लू स्टार' की भविष्यवाणी बीबीसी के उस जमाने के दिल्ली स्थित दक्षिण-एशिया-ब्यूरो प्रमुख मार्क टली से एक बातचीत में कर चुके थे। वे पहले पत्रकार थे जिन्होंने उस पाकिस्तानी वैज्ञानिक का साक्षात्कार किया था, जिसने उनसे कहा कि पाकिस्तान के पास न्यूक्लीअर बम है। वे लालबहादुर शास्त्री के प्रेस सलाहकार, लंदन में भारत के हाई-कमिशनर और अटलजी की सरकार की कई समितियों के सदस्य रहे। उनकी मृत्यु में कुछ ही दिन पहले भाजपा अध्यक्ष अमित शाह उनसे मिलने उनके घर गए थे। मैं अब तक जिन कुछ चुने हुए लोगों के निरंतर संपर्क में रहा हूँ उनमें प्रो. नित्यानंद तिवारी, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के कानूनविद् प्रो. उपेन्द्र वक्षी,

राजनीतिशास्त्री प्रो. रणधीर सिंह और प्रो. एम. एम. शंखधर और पत्रकारों में काकासर और जनार्दन ठाकुर प्रमुख रहे हैं। काकासर को अपनी सारी प्रतिभा का खामियाजा, आपात काल में जेल-जाकर चुकाना पड़ा था। उन्हें भी तत्कालीन सरकार ने बड़े-बड़े ऑफर दिए थे। मैं उनके देहावसान के एक हफ्ते पहले तक उनके संपर्क में था।

उनका जीवन इस बात का प्रमाण था कि 'एक अच्छा पत्रकार सब कुछ अच्छा लिखेगा।' उनकी योजना थी कि वे एक संस्मरणात्मक किताब लिखेंगे जिसमें अपने सारे अनुभव समेटेंगे। हम सब उनसे कहते थे कि सबसे ज्यादा साहित्य का नोबेल पुरस्कार उन लेखकों को मिला है जिनकी पृष्ठभूमि पत्रकारिता की थी; एलियट, गॉम्सवर्दी, माक्रिज, किपलिंग, सात्र, कामू, सैम्युअल बैकेट आदि। अपने यहाँ भी सबसे बड़ा नाम इस क्षेत्र में अज्ञेय का है।

इस तरह यह अगस्त साहित्य, पत्रकारिता, राजनीति आदि के उन दिग्गजों के अवसान का रहा जो अपने-अपने क्षेत्र में मील का पत्थर थे। मैं नहीं चाहता कि ऐसा अगस्त फिर आए। लेकिन इतिहास की गति और मनुष्य की भावना के तालमेल की लकीर बहुत पतली है और दोनों लगभग-समानान्तर रेखाओं की तरह हैं जो कहीं नहीं मिलती। मेरा इन सब लोगों से चूँकि किसी न किसी प्रकार व्यक्तिगत-संपर्क रहा है, इसलिए मैं यहाँ कुछ ऐसी बातों की चर्चा करना चाहता हूँ जिसका मैं, प्रत्यक्ष गवाह रहा हूँ :-

ऑक्सफोर्ड में मेरी पढ़ाई के दौरान ही नॉयपाल दो बार विश्वविद्यालय में भाषण देने आए। भाषणों के बाद जैसा कि अमूमन होता है, विद्यार्थियों से आयोजकों ने कहा कि हर विद्यार्थी एक प्रश्न कर सकता है। उनकी पहली यात्रा 1986 के नवंबर में हुई थी। भाषण के बाद एक फ्रेंच लड़की-जो मेरी तरह एक दूसरे अनुशासन में Rhodes Scholar थी ने सवाल किया। "किसी महान् व्यक्ति के जीवन में इस बात का क्या

कोई महत्व है कि वह एम. ए. पास नहीं है?”

इस सवाल से नॉयपाल के चेहरे पर थोड़ा तनाव आया, लेकिन संयत भाव से एक-डेढ़ मिनट तक तो वे उसे फ्रेंच में कुछ कहते रहे जो हमें लगा कि उसे बहुत प्रिय नहीं लग रहा था, जैसा कि उसके चेहरे से स्पष्ट था। फिर जब इस सारे कार्यक्रम के संचालक और रोमांटिक पोएट्री के जानेमाने आलोचक प्रो. विल्सन नाईट ने उन्हें इशारे से अंग्रेजी में बोलने का इशारा किया तो उन्हें कुछ याद आया और एक भद्र आदमी की तरह अपने शुद्ध अंग्रेजी टोन में उन्होंने ‘सारी’ कहते हुए उस लड़की के सवाल का जवाब देना शुरू किया : ‘तुम्हारा इशारा शायद इस बात की तरफ है कि मैं अंग्रेजी एम. ए. में इसी विश्वविद्यालय में फेल हो गया था। तो ठीक है। फेल होना बुरी बात नहीं है। उससे आदमी का जीवन उसके सामने नए रूप में खुल जाता है। फेल होने के बाद ही मैंने प्रण किया कि अब डिग्री के लिए नहीं पढ़ना है। जीवन में जो होना है, उसके लिए पढ़ना है। मुझे लेखक बनना था। मैंने प्रण किया कि दूसरा कोई काम नहीं करना है। अंग्रेजी का लेखक बनना है क्योंकि मैंने वहीं रहने का प्रण किया था। मैंने जो ठाना, उसे निभाया। मुझे कोई पश्चाताप नहीं है।’

इसी सत्र में मैंने उनसे पूछा “भारत आपके लिए हमेशा आब्सेशन बना रहता है। यह क्या एक शाश्वत परिघटना है जो किसी भी प्रवासी को अपने से मुक्त नहीं होने देती?”

नॉयपाल ने मेरी तरफ मुस्कराकर देखा, फिर शुद्ध भद्र अंग्रेजी अंदाज में दाहिने हाथ की अंगूठे की बगल वाली अंगुली उठाकर उसे मेरी तरफ इंगित किया और बोले ‘तुम भारत से हो; यहाँ क्या कर रहे हो?’

मैंने अपनी पढ़ाई के कोर्स के बारे में बताया, वे खुश हुए और ‘वेरी नाइस’ कहकर आगे बढ़े : “मैं तुम्हारा गेहुँआ रंग देखकर समझ गया कि तुम भारत से हो। मेरे पुरखों का देश! तुम कह सकते हो, मेरा

आब्सेशन भी। लेकिन क्यों? इसलिए कि मैं चाहता हूँ कि चीजें सुधर जाए। भारत मेरे लिए घायल सभ्यता या उडेंड सिविलाइजेशन है। तो घाव जब ठीक हो जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा। मैं चाहता हूँ कि भारत का आदमी प्रतिक्रिया व्यक्त करे। भारत में पुस्तकालयों को आक्रांता गजनी, बाबर जलाते रहे, मंदिरों को तोड़ते रहे, सोना खच्चरों पर लादकर ले जाते रहे और लोग देखते रहे, भारत का आदमी देखता रहा। ऐसा होता है दुनिया मेरा आब्सेशन सिर्फ भारत नहीं है, बल्कि दुनिया का वह हर कोना है जिसको तथाकथित तीसरी दुनिया कहा जाता है। हर लेखक चाहता है कि चीजें बेहतर हो, अब अगर यह आब्सेशन है तो है।’

यह अनायास नहीं है कि उनकी इस चिंता को नोबेल पुरस्कार समिति ने 2001 में पुरस्कार देते समय इन शब्दों में चिन्हित किया था “यह पुरस्कार उनकी रचनाओं में बोधगम्य आख्यान और ईमानदार समीक्षा-दृष्टि को एकाकार करने के लिए दिया गया है, जो हमें दमित-इतिहासों के अस्तित्व को देखने को मजबूर करती है।” (The highest prize in literature has been given Sir Vidyadhar Suraj Prasad Naipal for having united perceptive narrative and incorruptible scrutiny in words that compel us to see the presence of suppressed histories)

अब आज जब मैं सर नॉयपाल को याद करता हूँ तो मुझे उनकी मृत्यु की खबर के साथ अटलजी के साथ-उनकी एक तस्वीर याद आ जाती है जिसमें दोनों मुस्कुरा रहे हैं। अटलजी को मुस्कुराहट की एक याद कथा की तरह सुनिए:

वे उस समय प्रधानमंत्री थे। थोड़े दिन बाद वे कहीं विदेश जाने वाले थे। वहाँ तत्कालीन पाकिस्तानी तानाशाह मुशरफ भी जाने वाले थे। अटलजी से थोड़े दिन पहले किसी विदेशी धरती पर ही मुशरफ ‘गले पड़ने’ के अंदाज में हाथ मिलाने पहुंच गए थे। हाथ मिल भी गए थे। तो इस बार मैं अपने अखबार के

दिल्ली कार्यालय में बुलाया गया था और विज्ञान भवन का यह कार्यक्रम कवर कर रहा था। जब कार्यक्रम खत्म हो गया और सुरक्षाकर्मियों से घिरे अटलजी सीढ़ियों से उतरने लगे तो हम दो मित्र उनकी तरफ लपके और साथ वाले मित्र ने अटलजी से सवाल कर दिया, “सर! आप बाहर जा रहे हैं। वहाँ मुशरफ भी आएंगे। आप फिर उनसे हाथ मिलाएंगे क्या?”-अटलजी का पहले तो विख्यात ठहाका गूँजा, फिर उन्होंने हाथ बढ़ाते हुए उस मित्र से कहा, “लाओ तुम से मिला लेता हूँ। फिर मेरी तरफ देखा और बोले “अरे तुम भी लाओ ना हाथ।” मैंने भी अपना हाथ बढ़ा दिया। उन लंबी, पहली कलाकारों जैसी अंगुलियों और मक्खन जैसे हाथ की छुअन आज भी महसूस करता हूँ। लेखक कवि अटलजी जैसा मेरा कोई अनुभव 150 किताबों के लेखक और कई फिल्मों के कथा लेखक करुणानिधि के बारे में तो नहीं है लेकिन एक अनुभव मैं जरूर अपने पाठकों से बांटना चाहता हूँ। मैं 1992 में इंडियन एक्सप्रेस अखबार के मुंबई संस्करण में कार्यरत था। उसी वर्ष पी. वी. नरसिंहा राव नादियाल से एक लोकसभा का उपचुनाव लड़ रहे थे। मुझे वहाँ भेजा गया संयोग ऐसा बना था कि मैं जिस होटल में हैदराबाद में ठहराया गया था, उसी होटल में राव साहब के लिए प्रचार के लिए आए करुणानिधि भी आ गए। मैंने संपर्क किया तो दूसरे दिन ‘प्रातःकाल’ यानि साढ़े पांच बजे मुझे उनसे मिलने

का समय मिल गया। मैं उनके कमरे में पहुँचा तो देखा कि बाकी अगरू-चंदन-त्रिपुंड-भस्म आदि के साथ के टेपेरोकार्ड भी रखा गया है। मैंने उनके दुभाषिये से-जो उनके लिए मेरे अंग्रेजी के प्रश्नों के तमिल-अनुवाद के लिए वहाँ था-जब उस टेपेरेकार्ड के बारे में पूछना चाहा उसी बीच करुणानिधि अपनी खरखराती हुई तमिल में जो कुछ मुस्कुराते हुए बोले उसका अर्थ जानकर आप भी हंसे बिना नहीं रह सकेंगे। ‘देखिए मैंने अपना टेपेरेकार्ड इसलिए रखा है कि पत्रकार लोग कई बातों को तोड़-मरोड़ देते हैं। इसलिए मैं आपका भी प्रमाण अपने पास रखूंगा।’ हंसी तो होनी ही थी। बाद में मैं उनको बात को उद्धृत करके जो लेख लिखा उसे देखकर उन्होंने एक चिट्ठी अपने हाथ से मुझे लिखी और धन्यवाद दिया।

इतने सारे बड़े लोगों को लील जाने वाला दो हजार अठारह का यह अगस्त मेरे लिए बहुत क्रूर रहा है। लेकिन लेखन होता ही इसीलिए है कि वह क्रूरता को शांति और नकार को साकार बना दे। यह सब लिख देने के बाद कोई भी हल्का महसूस करेगा क्योंकि व्यक्तिगत की डायरी सार्वजनिक बनकर व्यक्ति को हल्का कर देती है।

-और हाँ डायरी में श्रद्धांजलि भी व्यक्तिगत से सार्वजनिक हो जाती है।

संपर्क : 9775938214

लघुकथा : संरचना-विधान है।

रामयतन यादव

साहित्य जीवन की गतिशील प्रक्रिया के वैचारिक प्रतिध्वनियों की अभिव्यक्ति है। चेतना के तदनुरूपी रूप विचारधारा से अलग नहीं होते। वे परस्पर जुड़े होते हैं। चेतना का पदार्थी-सम्बन्ध साहित्य जगत की पुनर्रचना का आधार होता है। वास्तविक दुनिया साहित्य में हु-ब-हु अवतरित नहीं होती, वह रचना की अनुभूति में संश्लिष्ट होकर पुनर्रचित होती है चेतना पर जीवन का स्वरूप के सापेक्ष होता है। समाज-जीवन का कार्य व्यापार और समय के संघात रचनाकार के भीतर रच बसकर कला के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। जीवन का यथार्थ कल्पना-शक्ति द्वारा पुनर्रचित होता है, इसलिए रचना यथार्थ की वास्तविक प्रतिच्छवि नहीं, कला रूप में व्यंजित नवीन सर्जना है। सामाजिक स्थितियों-घटनाओं को रचना में ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देना रचना की कलात्मकता को अपसरित करने जैसा है। क्योंकि कोई भी घटना या परिघटना कला के संस्पर्श से जीवंत होती है। यदि कोई रचनाकार सामाजिक या ऐतिहासिक घटनाओं को यथावत पेश करता है तो पाठक के लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं रह जाता क्योंकि पाठक उन घटनाओं को देख-पढ़ चुके होते हैं। समाज अथवा इतिहास में तो फिर उस रचना या कलाकृति की क्या ज़रूरत रह जाती है? तात्पर्य यह कि...महत्व तभी है, जब वर्ण्य वस्तु कलात्मक रूप में अभिव्यक्त हो।

कथा-साहित्य सामाजिक सम्बन्धों और निरंतर विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया का अनुचिंतन और अभिव्यंजन है। इतिहास की निरंतरता और समय की गतिशीलता के मार्ग में कोई अवरोध नहीं होता है। किन्तु खण्ड विशेष को अंतर्विष्ट किये रहने पर भी विशेष कालखण्ड विशेष अखण्ड इतिहास नहीं होता। इसी तरह 'क्षण विशेष' समय की लघु इकाई होते हुए भी समय-प्रवाह से विभक्त नहीं है। 'क्षण' को हर समय की निरंतरता से अलग कर 'क्षण' का न तो कोई औचित्य सिद्ध कर

सकते हैं और न ही 'क्षण' जीवन का कोई चित्र निर्मित कर सकते हैं। हमारे लिए वही 'क्षण' महत्वपूर्ण होता है जो जीवन और समय की निरंतरता और सक्रियता से सम्बद्ध हो तथा पूर्णतया रचनात्मक हो। स्थिर क्षण की तो कल्पना करना भी असंभव है। दिक्काल और गति की परस्पर संबद्धता और गतिशीलता ही रचना में केन्द्रित होकर 'क्षण' की समय-संज्ञा प्राप्त करती है।

जब हम कथा की चर्चा करते हैं तब हमारे दिमाग में उपन्यास, कहानी और लघुकथा के रूप उभरते हैं। उपन्यास मनुष्य के परिपक्व काल की रचना-विधा है जिसमें जीवन सम्पूर्णता में चित्रित होता है और कथा का विस्तार होता है। कहानी में कथा-क्रम घनीभूत और सिमटा हुआ होता है और चरित्र-चित्रण हेतु भी आकुंचित अवसर होता है। लेकिन लघुकथा वह रूप है जिसमें घटनाओं-परिघटनाओं का विस्तार, चरित्र-चित्रण का बहुआयामी अवसर तथा कथा-क्रम के फैलाव की गुंजाइश बहुत कम होता है। घटना चरित्र और कथा का परस्पर इस प्रकार संगुफन रहता है कि इन्हें अलग करने से लघुकथा का रूप ही ध्वस्त हो जाता है। दरअसल लघुकथा कथा का अत्यंत ही कलात्मक, संघनित और जटिल संरचना-विधान है। लघुकथा जीवन-प्रवाह के विशेष ऊर्मि-आवर्त का प्राणोष्म बिम्ब है जिसमें जीवन के गतिशील क्षण अपने वृत्त में अर्थ-विशेष का प्रक्षेपण करते हैं। लघुकथा अपनी ध्वान्त-धात्विक खनक में खनकती है, रीझाती है। लघुकथा ऐसी खाँटी धात्विक घंटिका है जो लघु आघात में ही झंकृत हो जाती है। इस तरह लघुकथा न तो क्षण-विशेष की क्षणिक अभिव्यक्ति है और न ही कथा का अभिलाक्षणिक रूप। वह तात्विक रूप में निर्मित और शिल्पित कथा-कला का प्रतिदर्शन है। यदि वह निश्चित और कलात्मक नहीं है तो उसमें धात्विक झंकृति नहीं होती। लघुकथा कथा का झंकृत रूप है। लघुकथा की संरचना में ही कथा-चरित्र घटनाएँ समुच्चय में रूपायित होते हैं। जिस प्रकार गीत की संरचना, जटिल, गड़गड़ और संश्लिष्ट होती है, उसी

प्रकार लघुकथा की संरचना भी। अरसा पहले नयी कविता में 'क्षण' और 'लघुमानव' की खून चर्चा हुई थी। नयी कविता का आन्दोलन समाप्त हो चुका है। 'क्षण की अनुभूति' तथा 'लघुमानव की प्रतीति' को सिरे से समय ने नकार दिया है। पता नहीं कतिपय आलोचक किस लोभ में 'क्षण' की अनुभूति की अभिव्यक्ति को ही लघुकथा के नाम से अभिहित करते अघाते नहीं हैं। न तो कोई 'क्षण' अपने आप में खुरदरा होता है और न ही 'संवेदनशील' रचना का भाषा-शिल्पक खुरदरा होता है और रचनाकार संवेदनशील। खूब गहरे में विवेचना करने पर यह भी पता चलता है कि खुरदरे शिल्प में भी प्रभावपूर्ण-उम्दा रचनाएँ लिखी गई हैं। मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प और एक हद तक नागार्जुन का काव्य-शिल्प भी खुरदरा ही है। संवेदनशीलता भी विचारधारा का विलोम नहीं है। सक्रिय समानुभूति ही संवेदना है। किन्तु लघुकथा में संवेदना और विचारधारा का पृथक प्रतिभास नहीं होता।

लघुकथा आन्दोलन की तीव्रता आवेग और उसके वस्तु विनियोग का प्रारंभिक दौर समाप्त हो चुका है। इस दौरान ढेर सारी लघुकथाएँ लिखी गई हैं। इस आन्दोलन के पूर्व भी लघुकथाएँ लिखी गई थीं किन्तु लघुकथा विधा की स्थापना के आन्दोलन धर्मी प्रवृत्ति से वे दूर ही थीं। तत्कालीन परिवेश में वे लघुकथाएँ कहानी में लघुरूप ही मानी जाती थीं। लघुकथा-आन्दोलन से सर्जना और समीक्षा के क्षेत्र में काफी विकास किया है। अतः लघुकथा का सौन्दर्यशास्त्र भी इन्हीं रचनाओं के आधार पर निर्मित, विकसित किया जा सकता है कोई भी समीक्षा पद्धति सर्वथा नयी नहीं होती। उसमें पारम्परिक आलोचना-शास्त्र का बहुत बड़ा योगदान रहता है। परम्परा के आधार पर और नयी रचना ऐसे में जबकि हिन्दी में कायदे से आलोचना शास्त्र का कोई सर्वमान्य प्रतिमान नहीं बना है, लघुकथा के प्रतिमान की बात तो दूर की चीज़ है। किन्तु इससे संबंधित रचना प्रवृत्ति अथवा विधा के स्वतंत्र प्रतिमान की

अभ्यर्थना समाप्त नहीं हो जाती। छायावाद की आलोचना में जब परम्परिक आलोचना-प्रतिमानों का प्रयोग किया गया तब छायावाद के साथ न्याय नहीं किया गया। परिणामतः छायावाद के कवियों ने अपनी कविता-संग्रहों में लम्बी भूमिकाएँ लिखी जिनसे उन कविताओं को समझने और मूल्यांकित करने की दृष्टि विकसित हुई और छायावाद की प्रामाणिक आलोचना उभर कर आई। ठीक उसी तरह कविता के परम्परागत प्रतिमानों द्वारा ही गीत की समीक्षा की जाती रही जिससे गीत की संरचना और अभिव्यंजित भावों-विचारों, ध्वनियों तथा लक्ष्य स्वरों की सम्यक् समीक्षा संभव नहीं हुई। इसलिए गीत की गंजिन संरचना और व्यंजना की समीक्षा के लिए पृथक् समीक्षा पद्धति की मांग होती रही है।

हिन्दी का आलोचना शास्त्र कविता की आलोचना का ही शास्त्र है। कथा-साहित्य का स्वतंत्र समीक्षा शास्त्र भी कायदे से विकसित नहीं हुआ है। इसलिए लघुकथा के स्वतंत्र समीक्षा शास्त्र के निर्माण में भी समय लगेगा जिसकी ज़मीन स्वयं लघुकथा लेखक ही तैयार कर रहे हैं। लघुकथा अपने अन्तर्गठन से ही समीक्षा का प्रतिमान गढ़ेगी और गढ़ भी रही है। इस संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि किसी विधा की तरह लघुकथा भी, निरपेक्ष एवं स्वतंत्र नहीं है, वह विधागत सापेक्षता से संबंधित है। इन्हीं सापेक्ष रचना-स्थितियों से लघुकथा-विश्लेषण की प्रवृत्ति और प्रतिमान उभरकर सामने आयेंगे।

लघुकथा में कथा और कथा की अन्विति संश्लिष्ट होती है। लघु आकाशीय कथा के कारण उसकी संरचना सघन, कलात्मक और जटिल होती है। सनसनीखेज घटना की प्रत्यक्ष और स्थूल प्रस्तुति भी लघुकथा में संभव नहीं है। चूँकि लघुकथा में कहानी और उपन्यास की तरह कथाक्रम का विस्तार और विषयवस्तु की स्फीति नहीं होती, इसलिए उसमें प्रतीकों का भी सहारा लिया जाता है। प्रतीकों के माध्यम से कथा-बिम्ब का

निर्माण एक कठिन किन्तु कलात्मक रचना प्रक्रिया है जिसे दृष्टिसम्पन्न रचनाकार ही साध पाता है। लघुकथा समय के 'क्षण-विशेष' के साथ जीवन के क्षण विशेष की कथा-संदर्भिता शिल्पन और व्यंजन की द्वन्द्वात्मकता में सम्पूर्ण जीवन-दर्शन को प्रतीकित कर देती है। इसलिए लघुकथा जीवन और समाज की व्याख्या नहीं, व्यंजना है। वस्तुतः यह उसकी संक्षिप्तता, क्षिप्रता और वैधता है जो घनीभूत तमस के बीच से तीव्रता से निकल जाती है। किन्तु वह चमत्कार भी नहीं है और न ही जादुई प्रदर्शन है। लघुकथा अपनी संक्षिप्ति संश्लिष्टि में मंत्र-शक्ति की तरह होती है। संसार के सारे अभिलाक्षणिक जीवन-तत्त्व लघुकथा में क्या किसी भी रचना-रूप में अभिव्यक्त नहीं हो सकते, कुछ छूट ही जाता है। जब लघुकथाकार जीवन और समाज के प्रायः सभी सम्बन्धों, संदर्भों और परिघटनाओं पर कथात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगता है तो न केवल इससे लघुकथा की संरचना का संक्षिप्त कलेवर स्फीत होता है, बल्कि वह अपना गुण धर्म छोड़कर विधान्तरित हो जाती है। इसलिए लघुकथा विपुल घटना-प्रवाह में से चयन की कला विधा है। विस्तीर्ण सामाजिक जीवन में घटित और बिखरी हुई स्थितियों में से किसे छोड़ा जाय और किसे ग्रहण किया जाये, इसी विवेक की विधा है लघुकथा। लघुकथा व्याख्यापन विधा नहीं, व्याकृत विधा है। यह कहानी का आंकुचित आधुनिक रूप नहीं, वरन् लक्ष्य केन्द्रित लघुकथा के सभी आंगिक तत्त्व कथा, भाव, विचार, शिल्प-स्थापत्य, भाषा और शैली समिश्रय-समुच्चय में अंतर्निहित होते हैं। तब पृथक् रूप में 'क्षण-विशेष' का चमत्कृत विन्यास लघुकथा का तंतुवलय नहीं रच सकता है। कथा-कथ्य का विश्वसनीय यथार्थ सामाजिक यथार्थ का पुनर्रचित रूप है, इसलिए वह सत्य के साथ सुन्दर और शिव की भी साधना है।

लघुकथा की लघुकाया को देखते हुए यह कहा जाता है कि आज के जटिल यथार्थ और जिंदगी की

संश्लिष्ट सच्चाई को लघुकथा में अभिव्यक्त ही नहीं किया जा सकता है। लेकिन ऐसी बात नहीं कि किसी भी साहित्य-विधा में अंतर्दृष्टि सम्पन्न रचनाकार अपने समय, समाज और जीवन के जटिल से जटिल यथार्थ को भी सहजता से व्यंजित कर सकता है जिसे भाषा, भांगिमा और कला लाघवता के साथ विवेक युक्त वैचारिक प्रतीत हो। अभिव्यक्ति की रचनात्मक ऊर्जा हो। यह सत्य है कि भिन्न विधाओं में व्यक्त यथार्थ की विवृति और व्यंजना सम्पूर्णतः या आंशिक ही हो सकती है। लघुकथा में संकेतों के बावजूद गहराई में यथार्थ व्यंजित होता है। यथार्थ का विवरण, व्याख्या और विस्तार उपन्यास की संरचना में ही संभव है। समकालीन युग अत्यंत व्यस्त और तेजी से भागता हुआ समय है जिसमें सामाजिक क्रिया-व्यापारों और व्यक्ति के क्रिया-कलापों के सम्बन्धों में बिखराव आया है। जहाँ एक ओर भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने विश्व-सीमा को संकुचित किया है, वहाँ दूसरी ओर विश्व-मानवता के बीच विभेद भी बढ़ाया है। इस यंत्र-युग में साहित्य के आस्वादन के अवसर कम होते जा रहे हैं, ऐसे वक्त में लघुकथा अपनी संवेदनात्मक प्रभान्विति से मनुष्य के थके मानस को किंचित भी आलोकित करती है तो यह इस विधा की एक बड़ी उपलब्धि कही जाएगी। अतः लघुकथा वर्तमान की ही नहीं, भविष्य को भी रचना-विधा है। लघुकथा अपनी लघुता में भी यथार्थ जीवन के गतिशील क्षणों को व्यक्त करने में सामर्थ्य से युक्त है।

आठवें दशक से लेकर अबतक थोक-भाव में लघुकथाएँ लिखी गई हैं। जाहिर है कि ऐसे में काफी निम्न-स्तरीय और सामान्य किस्म की लघुकथाएँ सामने आई हैं, किन्तु इन्हीं में से छनकर उत्तम रचनाएँ ऊपर आती हैं और अपनी उपयोगिता और महत्त्व सिद्ध करती हैं।

लघुकथा की भाषा, शैली और उसका गठन रचना-विधान की दृष्टि से काफी अहमियत रखते हैं। व्यवस्थित और सुगठित कला रूप ही वर्ण्य-विषय में

गहराई तथा प्रभान्विति पैदा करते हैं। लघुकथा के वर्ण्य-विषय में भिन्नता तो है किंतु कला कौशल ढीला-ढाला। इसलिए लघुकथा के कलात्मक विन्यास और भी विकसित करते रहने की ज़रूरत से इंकार नहीं किया जा सकता।

जब हम समकालीन लघुकथा लेखन की व्यापकता और गहराई पर विमर्श कर रहे होते हैं तो वस्तुतः लघुकथा के वर्ण्य-विषय और शिल्प-संरचना को केन्द्र में रखकर ही विचार कर रहे होते हैं।

लघुकथा की रूपगत और वस्तुतः समृद्धि को अस्त करने वाले कुछ ऐसे कारण तत्त्व रूप में मौजूद रहे हैं जिनका उल्लेख आवश्यक है ताकि लघुकथा लिखने के क्रम में सावधानी बरती जा सके। यथा-जीवन का नग्न चित्रण, घटनाओं की समाचारी विवरणी, बड़ी कथा का सार संक्षेप, चटपटी और चुटकुला की सतहीप्रवृत्ति, व्यक्तिवादी चेतना, एक ही काव्य की पुनरावृत्ति, सकालीन तनावों की सही पहचान का अभाव, दृश्यों और रचनाओं के चयन में असमर्थता आदि कारणों से लघुकथा एक मुकम्मिल कलारूप पाने से वंचित रह जाती है।

लघुकथाकार अपने समाज और जीवन से किसी घटना-विशेष का चयन करते हैं या फिर कल्पना के बल पर उन्हें गढ़ते हैं, लेकिन कथा-विन्यास एक बात है और उसकी संश्लिष्ट अभिव्यक्ति दूसरी। जब कथा का विन्यास कलात्मक होता है तब अभिव्यक्ति भी संश्लिष्ट सम्पूर्णता में होती है। इकहरी, एकांगी और सपाट प्रस्तुति कला नहीं है जबतक उसमें द्वैत का तनाव न हो। रूपाकार में लघु होते हुए भी लघुकथा ऐसी मार्मिक स्थिति और शिल्पित क्षण का सृजन करती है कि वह अपनी पूरी अर्थवता में अद्र्भासित हो जाती है।

लघुकथा निश्चित रूप से आधुनिक युग की विधा है जिसका नामकरण बुद्धिनाथ झा 'कैरव' ने अपनी पुस्तक 'साहित्य साधना' की पृष्ठभूमि में सन् 1954 में किया था। हां, इतना अवश्य है कि लघुकथा के बीज

प्राचीन संस्कृत साहित्य में भिन्न नाम से मौजूद था जिसका पल्लवन लघुकथा के रूप में हुआ। मनुष्य के सामूहिक श्रम परिहार के निमित्त उच्चरित अस्फुट ध्वनियों में जो लय-संहति थी उससे गीत की उत्पत्ति मानी जाती है। उसी तरह भाषा के विकास के साथ ही कथा को संयुक्त किया जा सकता है। अग्निपुराण से कथा की पहचान शुरू होती है और इसकी परम्परा जातक कथाओं और सिंहासन बतीसी तक जुड़ती है। जी.वी. गिलक्राइस्ट के हिन्दी स्टोरी टेलर में भी कई छोटी-छोटी कथाएँ हैं। जिनमें लघुकथा के बीज विद्यमान हैं। पश्चिम के ओ हेनरी, मोपांसा और तुर्गनेव की छोटी कहानियों से कई विद्वान लघुकथा की शुरुआत मानते हैं। खलील जिब्रान को भी लघुकथा रचना का श्रेय दिया जाता है रवीन्द्रनाथ टैगोर की कणिका और क्षणिका में भी लघुकथा के रूप ढूँढे जा सकते हैं। भरतेन्दु, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पद्म लाल पुन्नालाल बख्शी, जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द्र की कहानियों में लघुकथा के रूप की झलक मिलती है। लघुकथा से जुड़ अनेक लघुकथाकारों ने अपनी सृजनात्मक एवं आलोच-नात्मक प्रतिभा से इस विद्या को स्थापित किया है। कलात्मक विन्यास और पूरी अर्थवत्ता के साथ लेखकों के आंतरिक संघर्ष एवं सामाजिक सरोकारों को रेखांकित करती हुई शताधिक लघुकथाएँ लिखी हैं। सचेतन लघुकथाओं का सृजन अब भी जारी है उदाहरण के

तौर पर हम सतीश दुबे की लघुकथा 'रिश्ताई नेहबन्ध' अशोक भाटिया की 'कपों की कहानी', शिवनारायण की 'जहर के खिलाफ', विक्रम सोनी की 'बनैले सूअर', चितेश की 'आंधी', राजेन्द्र साहिल की 'जीवन का गणित', प्रो. राणाप्रताप की 'स्नेह की बाती', घनश्याम अग्रवाल की 'एकरी-टेक' और 'अपने-अपने सपने', सुकेश साहनी का 'ठंडी रजाई' बलराम अग्रवाल की 'गोभीजनम कथा', राजहीरामन की 'अंगूठा' हर भगवान चावला की 'फाँस', जोगिन्दर पाल की 'जागीरदार', सूर्यकांत नागर की 'अंतर', शंकर पुणतांबेकर की 'साइकोफैन्ट', जोगिन्दर पाल की 'जागीरदार', सूर्यकांत नागर की 'अंतर', शंकर पुणतांबेकर की 'साइकोफैन्ट', चित्रामुद्गल की 'बोहनी', रमेश बतरा की 'बीच-बजार', रूपदेवगुण की 'जगमगाहट', ज्योति जैन की 'जलतरंग', श्याम नंदर शास्त्री की 'धरती का काव्य', रघुनंदन त्रिवेदी की 'स्मृतियों में पिता' विष्णु प्रभकर की 'फर्क', उपेन्द्र प्र. राय की 'घोंसला', सुरेश शर्मा की 'राजा नंगा है', भागीरथ की 'पिता, पति और पत्नी', प्रताप सिंह सोढ़ी की 'कसाई', रत्नकुमार सांभरिया की 'आटे की पुड़िया', राजकुमार घोटड़ की 'ममता की मूरत', कमल चौपड़ा की 'संतान', राजेन्द्र वर्मा की 'दौड़' तथा सिद्धेश्वर की 'कच्ची सड़क-पक्की सड़क' आदि। इन्हें पढ़कर अनुभव के साथ लघुकथा की विकास यात्रा की समुचित तौर पर समझा जा सकता है।

संपर्क : मकसूदपुर पो. फतुहा(पटना), पिन-803201, मो. 7261039059

व्यंग्य से मुठभेड़ की रचनात्मकता

विनोद साव

प्रेम जनमेजय ने जब कहा कि बिलासपुर व्यंग्य-महोत्सव में 'व्यंग्य से मुठभेड़ की रचनात्मकता' पर आपको बोलना है तब मैंने पूछा था कि 'व्यंग्य से मुठभेड़ का आशय आपका विसंगतियों से मुठभेड़ का होगा।' तब उन्होंने सहमति जताई और कुछ इशारा भी किया। क्योंकि लेखक के सामने लक्षित करने के लिए विसंगतियां और विद्रूपताएं पहले उपस्थित होंगी तब यह तय होगा है कि उन पर किस विधा से मार-प्रहार किया जाए कविता, कहानी या फिर व्यंग्य से!

अमूमन विषय कोई भी हो विमर्श सत्र के प्रतिभागी वक्ता बोलते वही हैं जो उन्हें बोलना होता है। एक मानक वक्तव्य होता है जिसे कहीं भी पढ़ा या फिर बोला जा सकता है। इसलिए किसी विषय पर विमर्श करने से पहले अपना विषय कहीं और विमर्श कर खोल लें तो वह सहायक वाचन का काम कर सकता है।

चलिए इस विषय पर चर्चा आरम्भ करने से पहले एक व्यंग्य का यह अंश देखते हैं जिससे यह सिद्ध होगा कि कैसी और किन विसंगतियों के चलते यह व्यंग्य जना होगा:

कम्पनी गीता सार

हे पार्थ !

तुम पिछली इन्क्रीमेंट का पश्चाताप मत करो,

तुम अगली प्रमोशन की चिंता भी मत करो,

बस अपनी ड्यूटी से ही प्रसन्न रहो,

तुम जब नहीं थे, तब भी ये कम्पनी चल रही थी,

तुम जब नहीं होगे, तब भी ये कम्पनी चलती रहेगी

जो टारगेट आज तुम्हारा है, कल किसी और का था,

वो कल किसी और का होगा,

तुम इसे अपना समझ कर मगन हो रहे हो,

यही तुम्हारे समस्त दुखों का कारण है

हे पार्थ!

तुम श्रेष्ठ कार्मिक का आचरण करो, यही उचित
और प्रासंगिक है।

प्रमोशन, इन्क्रीमेंट, छुट्टी, बोनस और इंसेंटिव जैसे
शब्द अपने मन से निकाल दो,

“फिर तुम कम्पनी के और ये कम्पनी तुम्हारी
होगी”

अपने अनिवार्य कार्य करो, क्योंकि वास्तव में कार्य
करना निष्क्रियता से बेहतर है, क्योंकि जब तुम
अपने कार्यों में आनंद खोज लोगे तब पूर्णता प्राप्त
कर लोगे जो हुआ, वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है
वह अच्छा हो रहा है, जो होगा, वह भी अच्छा ही
होगा, तुम भूत का पश्चाताप मत करो, भविष्य की
चिंता मत करो,

“वर्तमान तुम्हारा है जीवन का भरपूर आनंद लो”

व्यंग्य उपजाने की कला का यह एक उपरोक्त
प्रमाण हमारे सामने है।

दोस्तो... आम पाठक के लिए व्यंग्य आज गद्य की
सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है, ऐसा हमारे प्रकाशक भी
कहते हैं। वे कहते हैं कि कविता का पूरा खर्चा भी कवि
उठा लें तब भी कविता संग्रह छापना मुश्किल होता है
क्योंकि हम अगर छाप भी लें तो काव्य संग्रहों को बेच
पाना बड़ा कठिन होता है। पर व्यंग्य का आधा खर्च
भी अगर व्यंग्यकार उठा लें तो हम छाप देते हैं (हालाँकि
आजकल तो सभी विधाओं के लेखक पूरा खर्चा भी
उठा लेते हैं)। प्रकाशकों का यह मानना है कि बाजार
में सबसे जल्दी हास्य-व्यंग्य का माल बिकता है। कभी
कभी साहित्य की विधागत लोकप्रियता को आलोचक
की तुलना में प्रकाशक प्रमाणित कर देते हैं और वो भी
एक झटके में कर देते हैं।

व्यंग्य की लोकप्रियता का बड़ा कारण यह है कि

न तो उनमें ठेठ गद्य का सूनापन होता है न तो कविता
के दांवपेंच। लेकिन लोकप्रियता के अपने अलग खतरे
होते हैं जिसे कविता के साथ घटित होता हम सबने देख
लिया है। कविता-मंचों की कविता फिर हास्य व्यंग्य के
नाम पर कविता ‘जिसका नतीजा हुआ लाफ्टर-शो...
जिसमें न कविता रही’ न व्यंग्य, न स्वस्थ हास्य रहा।
एक भंगिमा होती है जिसे क्या कहा जाए या इसे कुछ
कहा नहीं जा सकता। कविता की ‘ट्रेजिडी’ व्यंग्य के
लिए ‘कामेडी’ हो जाती है, एक का ‘टैरेरिस्ट’ दूसरे का
‘फ्रीडम फाइटर’ हो जाता है।’

मनोहरश्याम जोशी के शब्दों में-‘कहने को कहा
जाता है कि दुखी मन की उपज कविता है ‘आह से
उपजा होगा गान’ कवि दुखी किस्म का मानव रहा
होगा...पर मनोविज्ञान बताता है कि निर्बल की हाय
हास्यव्यंग्य के रूप में प्रकट होती है। वैसे हाय करेगा तो
वह पिटेगा। दुखी होकर भी कोई कहता जाए कि मैं
सुखी हूँ तो अपने में यह व्यंग्य है। जहां तानाशाह था,
नृशंस शासन था, वहाँ कई कृतियों के बारे में कहा गया
कि वे लिखी ही इस कारण गयीं, पर व्यंग्य कुछ ज्यादा
हो गया उनमें। इसलिए बुद्धिमान किस्म के तानाशाह
के कान पहले ही खड़े हो जाने चाहिए। बड़ी खुशी से
नहीं जरा दुखी हो, अभावग्रस्त हो तो कोई व्यंग्य
लिखता है। तानाशाह नहीं तो उपभोक्ता संस्कृति ही
सही मैं रोऊँ गाऊँ कौन सुनेगा? हास्यव्यंग्य करेंगे तो
कौन सुनेगा? मानव जीवन अपने आप में बड़ा बेतुका,
दिलचस्प और हास्यास्पद है। हर घटना पर सोचिए।
इन विरोधाभासों के चलते लगता है कि पूरा मानव
जीवन ब्रम्हांडव्यापी स्तर पर घटित होने वाली दुखद
सुखद घटना है। (नया ज्ञानोदय के लिए प्रेमकुमार से
बातचीत)।

इसलिए भी जनप्रियता के साथ व्यंग्य अपने जनवादी
और जनधर्मी रूप को बनाए रखे। पॉपुलर राइटिंग के
खतरे पर पहले भी बातें हो चुकी हैं। रचना में पठनीयता
पर जोर हो पर साथ ही लोकप्रियता के झांसे से सतर्क

होना होगा। यह बात केवल व्यंग्य के लिए नहीं बल्कि व्यंग्य सम्मलेन के लिए भी कही जा सकती है कि सम्मलेन केवल साहित्यिक पिकनिक या पर्यटन मात्र का आस्वाद न दें बल्कि यहाँ गंभीर विमर्शों की ज़रूरत होती है ताकि समकालीन व्यंग्य को किसी बहकावे से बचाकर उसे मुकाम पर पहुँचाया जा सके। सम्मेलनों की विचारयुक्त स्थापनाओं का दीर्घकालिक महत्त्व होता है। साहित्य और विचार की दुनियाँ में सम्मलेन में लिए गए निर्णयों को किसी संदर्भ (Reference book) की तरह quote किया जाता है। दशकों बाद भी यह याद किया जाता है कि 'हाँ! फलां सम्मलेन में ये मुद्दे उठाए गए थे या अमुक निर्णय लिया गया था।'

जैसा कि श्रीलाल शुक्ल कहते हैं कि 'साहित्य में जिस ढंग से प्रतिपक्ष का प्रत्याख्यान होता है उसी तरह उसी 'डागमैटिक' ढंग से प्रतिपाद्य मूल्यों की प्रतिष्ठा नहीं हो पाती।' कहने का आशय यह है कि हम अपने सामने दिख रही व्यवस्था का विरोध तो कर लेते हैं पर मूल्यों की स्थापना नहीं कर पाते। जबकि रूढ़िवादी और दकियानूसी मुठभेड़ों से निपटने के लिए कुछ ऐसी तैयारी होनी चाहिए कि आज के विमर्श में यह याद रखा जा सके कि 'हाँ...बिलासपुर सम्मेलन में यह मुद्दा उठाया गया था या इस तरह से कोई निर्णय लिया गया था। यहाँ रचना के उद्घरण देने से कहीं अधिक ज़रूरी है व्यंग्य से मुठभेड़ के समय लेखन का तकनीकी कौशल क्या हो...व्यंग्य के औजार हथियार क्या हों और लेखक की तैयारी कितनी तर्कसम्मत और प्रतिबद्ध हो। लेखक का रचनात्मक प्रदेय कितना है? इन सब पर विचार होने चाहिए। इसलिए आगे की जिम्मेदारी मैं मंच पर आसीन अतिथियों पर छोड़ता हूँ।

बहरहाल कार्यक्रम संयोजकों के निर्देशानुसार मुझे अपनी रचना प्रक्रिया पर भी कुछ बातें करनी चाहिए। इसलिए मैं अपने को उस मानक पर खड़ा करने की थोड़ी कोशिश करूँगा कि मेरे अपने लेखन में व्यंग्य से कहाँ और कितनी मुठभेड़ हुई है? चूँकि ऐसा करने में

आत्मश्लाघा की संभावना होती है पर यह विषय की मांग है इसमें मेरा दोष नहीं है...फिर भी आत्मग्रस्तता से बचने के लिए मैं अपने लिखे पर ज्यादा विस्तार में नहीं जाऊँगा, सार-संक्षेप से ही काम चलाऊँगा और अपनी केवल एक ही कृति की कुछ चर्चा करूँगा।

दोस्तो...वर्ष 1993 में मैंने अपना पहला व्यंग्य उपन्यास 'चुनाव' लिखा जो 1997 में प्रकाशित हुआ था। यशस्वी उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा ने लिखा था कि 'चित्रलेखा उपन्यास को लिखते समय मुझे नहीं मालूम था कि मैं कोई क्लासिक लिख रहा हूँ।' वैसे ही 'चुनाव' को लिखते समय मुझे भी यह नहीं मालूम था कि यह उपन्यास लगातार तीन वर्षों तक पुरस्कृत होगा। पहला भोपाल में डॉ. नामवर सिंह के हाथों, दूसरे लखनऊ में श्रीलाल शुक्ल से और तीसरे जमशेदपुर में खगेन्द्र ठाकुर और डॉ. शिवकुमार मिश्र जैसे मूर्धन्य लेखकों आलोचकों के करकमलों से पुरस्कार प्राप्ति के योग बने थे।

इस उपन्यास की कथा पूरी चुनावी व्यवस्था पर नहीं बल्कि केवल मतदान प्रणाली (Polling system) पर केंद्रित कथा है। इस उपन्यास में सामग्री भारीभरकम नहीं है। चुनाव की घोषणा के बाद सरकारी तंत्र में वोटर लिस्ट बनाने से लेकर मतदान संपन्न करने तक जो कुछ होता है वही इसकी आधारकथा है...और वह केवल आधार है पर उसके पीछे छिपी हुई कथा का विषय फैलता हुआ प्रायः भारतीय समाज और राजनीति के तंत्र तक पहुँच जाता है। जैसा कि इसके ब्लर्ब में श्रीलाल शुक्ल जी ने पहले ही आगाह कर दिया है कि 'यह कृति 'चुनाव' मूलतः राजनीतिक उपन्यास है पर साथ ही जीवन के अनेक क्षेत्रों में सही चुनाव करने से चूक जाने वालों की व्यथा-कथा भी है। यहाँ 'चुनाव' जैसे बहुलिखित विषय के कई नितांत अनछुए पहलुओं से भी हमारा रोचक साक्षात्कार होता है। यह उपन्यास कई अर्थों में प्रयोगधर्मी है और कई स्थलों पर स्थिति की गंभीरता को उभारने के लिए व्यंग्य का बड़ा सार्थक

प्रयोग किया गया है। शिल्प, शैली, किस्सागोई—इन सभी तत्वों के आधार पर ‘चुनाव’ नवलेखन में एक अत्यंत स्वागत योग्य कृति है।’

संभवतः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में चुनावों का संपन्न होना किसी युगांतरकारी घटना के समान है, जिसमें किसी सरकारी कर्म की चुनाव ड्यूटी लग जाना ही बड़ा चुनौतीपूर्ण कर्म हो जाता है। यह एक अस्त्र-शस्त्रविहीन युद्ध के समान होता है, जिसमें शासकीय कर्मचारियों को पहले जिला मुख्यालय से बस में बिठाकर तहसील मुख्यालय छोड़ा जाता है फिर वहाँ से ट्रक में बिठाकर विकासखण्ड मुख्यालय में छोड़ा जाता है फिर वहाँ से मतदान केन्द्र के गांव में ट्रैक्टर में पहुँचाया जाता है और ज़रूरत पड़ी तो बैलगाड़ी तक में भी उन्हें चढ़ाया जा सकता है। एक ऐसे गांव में जहाँ मतदान दल के कर्मचारी अपने जीवन में पहली और आखिरी बार पदस्थ हुए हों वहाँ आधी रात को घुप्प अँधेरे में चुनाव वाहन उन्हें छोड़कर भाग खड़ा होता है।

मतदान दल अपने तीन चार दिनों के भोजन और शौचालय-विहीन व्यवस्था में चुनाव कर्म को किसी नारकीय दशा में संपन्न करता है और जिसे संपन्न करवाते समय उसके नौकरी पर निलंबन की तलवार लटक रही होती है। चुनावी प्रशिक्षण से लेकर स्वतंत्र एवं निष्पक्ष मतदान संपन्न करवाने से लेकर अंत में चुनाव सामग्री को जमा करने की भीषण और हृदयविदारक कवायद तक चुनाव कर्म को लगातार निलंबन की धमकी दी जाती है और कभी कभी किसी कार्मिक के निलंबन की माइक पर सार्वजनिक घोषणा भी कर दी जाती है इन शब्दों में ‘फलाना पीठासीन अधिकारी या ठेकाना मतदान अधिकारी जिनका नाम कई बार पुकारा जा चुका है अगर वह पन्द्रह मिनट में यहाँ उपस्थित नहीं होता है तो उसे तत्काल प्रभाव से निलंबित कर दिया जावेगा।’

इन सारी स्थितियों के घनघोर चित्रण के लिए आखिरकार भोपाल के निर्णायक मंडल ने पुरस्कार अलंकरण में यह खुदवा दिया था कि ‘समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य में भारतीय लोकतंत्र के विद्रूप को विदग्ध शैली में विश्लेषित करने के लिए निर्णायकों द्वारा प्रशंसित कृति ‘चुनाव’ के कथाकार को पुरस्कृत किया जाता है।’ इस निर्णायक मंडल में वही नाम थे जिन्हें ‘परसाई रचनावली’ के संपादन मंडल में देखा जाता है।

अंत में उपन्यास ‘चुनाव’ के एक अंश के साथ मैं अपनी बात पूरी करता हूँ—‘क्या नाम है इस स्कूल का’ स्कूल के नाम की तख्ती गायब है। गुनवंत ने आदेश पत्र देखा उसका मतदान केन्द्र है, नवीन प्राथमिक शाला, ग्राम बोइरतरी। स्साला—स्कूल का नाम भी किसी साबुन के विज्ञापन की तरह होने लगे हैं जैसे लक्स नहीं न्यू लक्स... वैसे नवीन शाला। जैसे जब जब सरकार बदल जाती है और नई सरकार आ जाती है. अब पुरानी नहीं... नई सरकार। जनता की दरकार पर नई सुपर सरकार... नई सरकार की नई पेशकश—सौ दिनों में महंगाई हटाए, बेजा कब्जे पर पट्टा दिलवाए, ऋण माफी करे, लगान माफी करवाए, मस्जिद गिरवाए मंदिर बनवाए, पब्लिक सेक्टर को प्राइवेट बनवाए, सबकी जान-शताब्दी मनवाए, फिर राम रहीम रोटी के साथ हेमामालिनी दिलवाए. नई सरकार के लिए नए चुनाव चाहिए। सरकार गिराओ, चुनाव कराओ। पंचवर्षीय नहीं एकवर्षीय सरकार हो। कौन प्रत्याशी होगा, किसकी सरकार चलेगी और कौन प्रधानमंत्री टिकेगा ये मत पूछिए—किसी डिपार्टमेंटल स्टोर में टंगी तख्ती की तरह ‘ये फैशन का दौर है गारन्टी का नाम मत लीजिए।’

मुझे लगता है कि व्यंग्य से मुठभेड़ की रचनात्मकता का यहाँ पर दिया इतना प्रमाण पर्याप्त है।

बांग्ला साहित्य में राष्ट्रीय तत्व

डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय

भारतीय उपमहाद्वीप में राष्ट्रीयता उन्सवीं सदी के पूर्वाह्न में जन्म ले चुकी थी। यूरोपीय देशों में पूंजीवाद के उदय के साथ ही आधुनिक अर्थ में राष्ट्रीयता प्रादुर्भूत हुई किन्तु हिन्दुस्तान में इसका जन्म अंग्रेजी, साम्राज्यवादी हुकूमत की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। राष्ट्रप्रेम अथवा राष्ट्रीयता, भूमि, भूमिवासी जनता और जन संस्कृति के एकीकृत स्वरूप राष्ट्र के प्रति निवासियों के हृदय में पलनेवाली स्थायी मंगल भावना-कामना का पर्याय है। किसी भी राष्ट्र की पहचान उसके नागरिकों के जीवनयापन के ढंग, उनकी संस्कृति हर्ष-विषाद को व्यक्त करनेवाले रीति-रिवाजों एवं सौन्दर्य चेतना की विशिष्टता से ही बनती हैं। कोई भी नागरिक अपने राष्ट्र का अपमान सहना पसंद नहीं करता और न अपनी पहचान खोना चाहता है। किन्तु अंग्रेजों के आने के पूर्व भारतीय जनता में कश्मीर से कन्याकुमारी तथा मणिपुर-नागालैण्ड से बलूचिस्तान तक फैले भारतीय उपमहाद्वीप को एक राष्ट्र के रूप में मानकर इसके प्रति तन-मन-धन के भक्तिभाव प्रदर्शित करने का न चलन था और न वैसी व्यापक राष्ट्रीय चेतना ही थी। इसमें कितने राज्य थे, कई राष्ट्रीयताएं थी, अलग-अलग क्षेत्र को अलग-अलग संस्कृतियां थी। आजादी के दरम्यान जिन साहित्यकारों ने महापुरुषों को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया उसमें बंगाल के राजाराममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, सुभाषचन्द्र बोस भी शामिल थे। स्वतंत्रता संघर्ष में देश-प्रेम की भावना को जगाना, स्वातंत्र्य भावना को चरम मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करना, अतीत से शक्ति संचय करना वर्तमान की हीनावस्था का चित्रण करना, देश के लिए संघर्षरत नेताओं का गुण-गान करना, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल देना, अपनी भाषा, संस्कृति, साहित्य को महत्व देना और सब मिलाकर निरंतर संघर्ष-चेतना को जागृत रखना राष्ट्रीयता का पर्याय था। राष्ट्रीयता के पोषण तत्वों में राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पदा तथा पर्वतों-वनो, सरिताओं तथा सागर

तटों के प्रति आत्मीयता की भावना, राष्ट्र के मूलभूत जीवन दर्शन के प्रति निष्ठा, राष्ट्र के चतुर्विध विकास के प्रति कटिबद्धता, राष्ट्र के कण-कण के प्रति समर्पण और सेवाभाव, राष्ट्र की स्वतंत्रता, अखंडता और सम्प्रभुता के प्रति उत्सर्ग की उत्कंठा, राष्ट्र के कल्याण के लिए सतत् चेष्टा और राष्ट्र के स्वाभिमान, गौरव गरिमा तथा अस्तित्व रक्षण के लिए सर्वस्व न्योछावर की उदात्त भावना आदि की गणना की जा सकती है।

राष्ट्रीयता का उदय मात्र किसी देश नामक भूभाग को लेकर ही नहीं हुआ करता, यद्यपि उसका होना परमावश्यक एवं पहली शर्त है। उसके साथ-साथ उस भूभाग पर रहने वाला जन, उस भूभाग की प्रकृति और भूगोल, वहाँ पनपने वाली सभ्यता-संस्कृति, रीति-नीतियाँ, परम्पराएँ आदि भी जुड़ी रहा करती हैं। जन का उन सब के प्रति सहज समर्पित अनुराग का भाग तो परमावश्यक है ही, उस भूभाग के कण-कण, घास-फूस, पेड़-पौधों, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, वनालियों के साथ आन्तरिक अनुराग एवं जुड़ाव भी परम आवश्यक हुआ करता है। इस सब के समुचित प्रभाव से, समन्वित अपनत्व एवं अपनाव से ही राष्ट्रीयता के भाव का उदय एवं विकास हुआ करता है। इन सब के प्रति अपनत्व एवं सहज समर्पण की भावना ही राष्ट्रीयता को परिपुष्ट किया करती है। जब तक व्यक्ति के मन में इन सभी के साथ अपनत्व सभी के प्रति सहज समर्पण का भाव नहीं जागता तब तक राष्ट्रीयता की पावन-पूत भावना का उदय कतई संभव नहीं हुआ करती। जन-जन में राष्ट्रीयता की भावना बड़ी अच्छी मानी जाती है। वह इसलिए कि इस भावना के रहने पर ही कोई भूभाग या देश स्वतंत्र रहकर अपनी समग्र प्रगति एवं विकास के लिए कार्य कर सकता है।

बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचा गया गीत 'वंदेमातरम्' हमारा राष्ट्रीय गीत ही नहीं स्वतंत्रता के संघर्षकाल में राष्ट्रीय नारा भी रहा है। राष्ट्रीय त्यौहारों पर गाया जाने वाला यह गीत किसी भी भारतीय के

लिए भूलना मुश्किल है। परतंत्र भारत में इस गीत ने न केवल स्वतंत्रता का मंत्र फूँका, बल्कि राष्ट्रीय भावना के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस गीत की अमर प्रेरणा के प्रति एक कवि लिखता है—

“मुसलमां, हिन्दू जैन सिख व ईसाई सभी देश के सपूतों ने गाया था वंदेमातरम्।

हंसते ही हंसते फांसी पै झूल गये थे जो ऐसे ही शहीदों को भाया था वंदेमातरम्।

वीरता की कितनी कीमत चुकानी पड़ी थी तब कहीं देश ने पाया था वंदेमातरम्।

परतंत्रता की बेड़ियों को काटने के लिए राष्ट्र-शौर्य बन के आया था वंदेमातरम्।”

राजा राममोहन राय से लेकर बंकिमचन्द्र तक उस समय द्विधाग्रस्त होने पर भी उनमें राष्ट्रीय चेतना पैदा हुई उसके साथ-साथ कृषक विद्रोहों के प्रभाव से जुड़कर बंगाल में समाज सुधार संबंधी आंदोलन शुरू हुआ। तत्त्ववाहिनी सभा(1939) तत्त्वबोधनी पाठशाला (1843) द्वारा देश-प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और हिन्दू मेला या स्वदेशी मेला के माध्यम से राजनारायण बसु, ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर आदि ने प्रमुख लोगों ने नेतृत्व में लोग इस आंदोलन में शामिल हुए। रवीन्द्रनाथ ने 14 वर्ष की अवस्था में 1875 में 'हिन्दूमेला का उपहार' कविता और 1877 में भारत साम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया की घोषणा के विरुद्ध कविता लिखी। हिन्दू स्वराष्ट्र बोध के उपादान रहने पर भी इस अवधि में रवीन्द्रनाथ बृहत्तर जगत में जुड़ गये। 1879-1880 में विदेश यात्रा ने उनके विचारों को विशेष रूप से प्रभावित किया। क्योंकि यात्राकालीन अनुभवों एवं ज्ञान से प्रत्येक देश में साम्राज्यवाद के शोषण के रूप में उन्हें केवल जानकारी ही नहीं हुई बल्कि उन्होंने इसका प्रतिवाद किया था। भारत लौटने के बाद 1883 में राष्ट्रीय कांग्रेस के संगठन के पहले से लेकर इंडियन नेशनल कांग्रेस के अधिवेशन तक उन्होंने राष्ट्रीय नेताओं की आलोचना करते हुए कई लेख भी लिखे। कहना नहीं होगा उसमें

नेताओं के आवेदन, निवेदन, आत्ममर्यादाहीनता के बारे में लिखा गया था। हमारे देश में पॉलीटिकल एंगीटेशन करने के नाम पर भीक्षा मांगने का पेशा... भिखारियों को सुख नहीं मिलता, भीख का फल अस्थायी होता है। परन्तु आत्मनिर्भर होने का परिणाम स्थायी होता है।” उस अवधि के परिप्रेक्ष्य में युवक रवीन्द्रनाथ की यह उपलब्धि विशेष तात्पर्यपूर्ण है। 1890 में रवीन्द्रनाथ ने दूसरी बार विदेशी यात्री की। दोनों विदेश यात्रा में उनके परिवार एवं पारिवारिक शिक्षा की पृष्ठभूमि के कारण उनकी चेतना का स्तर और ऊँचा हो गया अपने अर्जित अनुभवों के माध्यम से उस समय सही मायने में उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति साहित्य संबंधी अध्ययन में प्रवेश किया। डब्लू. बी. ईड्स, स्टैफर्डबुक, एजरा पाउण्ड, बैडले, बर्नार्ड शॉ, गालनवर्दी, नेसफील्ड, एच. जी. वेल्स इत्यादि प्रमुख अग्रिम पंक्ति के साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों के साथ उनका घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हुआ। वे अपने लम्बे जीवनकाल में बहुत बार यूरोप, उत्तरी द. अमेरिका, द. पूर्वी एशिया देशों में घूमें। इस विश्व अनुभव ने उनके पिछड़े सामंतवादी औपनिवेशिक देशों में पिछड़ी चेतना से उन्हें मुक्त किया। नवजागरण एवं फ्रांस की क्रांति के बाद उस देश की यात्रा से रवीन्द्रनाथ की चेतना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। रवीन्द्रनाथ की सृजनशीलता में लगभग एक शताब्दी का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। 19 वीं सदी के नवजागरण की गतिशीलता ने उनकी चेतना को कालजयी बनाया। प्राचीनता के गर्भ से नवीनता के आविर्भाव ने उन्हें अपनी सीमा के अतिक्रमण करने के असीम मार्ग को रोज-रोज अपनाने को प्रेरित किया। रवीन्द्रनाथ की गतिमयता में सामाजिक राष्ट्रीय आध्यात्मिक सभी विषयों में एक तरह की समग्रता रूपी सामंजस्य है। कहा जाता है कि उच्चकोटि का साहित्यकार सदैव राष्ट्रनिर्माण का लक्ष्य सामने रखकर ही उच्चकोटि की रचना किया करता है। इसके साथ एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार

अपने लिए खाद और पानी अर्थात् भाव और विचार-सामग्री राष्ट्रीय जीवन से लिया करते हैं। साहित्यकार उच्चराष्ट्रीय विचारों और भावनाओं का प्रतिनिधि होने के कारण सोये हुए राष्ट्रों को जगाने, गिरे हुए राष्ट्रों को उठाने तथा अवनत राष्ट्रों को उन्नत बनाने की प्रेरणा भी बन जाया करता है। किसी भी देश के इतिहास की लम्बी दौड़ में जो कृतियाँ जो समय के निर्णय के सामने टिक पाती हैं, अपने रचयिताओं से सम्बन्धित जातीय चेतना की सम्पत्ति होती हैं। किसी भी देश के साहित्य का सृजन वहाँ के जातीय परिवेश में होता है। वह जातीय संदर्भ के माध्यम से ही रचनाकार शाश्वत मूल्यों को प्रकट करता है।

नजरूल की काव्य चेतना के विस्तार में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की बहुत बड़ी भूमिका है। भारत की स्वतंत्रता के लिए उनमें तीव्र छटपटाहट है। उनके हृदय में अत्याचार, पीड़ित, शोषित जनता के लिए गहरी हमदर्दी शब्द बनकर आम जनता को जागरूक बनाने के लिए सम्प्रेषित होते हैं। सम्प्रेषित चिंतन में राष्ट्रीय चेतना अहम है। देश की पराधीनता से पीड़ित कवि नजरूल देशवासियों में राष्ट्रीय सम्मान का बोध कराने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इनके काव्य की राष्ट्रीय मुक्त चेतना के विकास में देश की तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल, पहले महायुद्ध की विभीषिका साम्राज्यवाद का नग्न रूप, राजनीतिक आजादी के लिए सशस्त्र आंदोलन का विशेष महत्व है। कई ऐतिहासिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य भी नजरूल की काव्य चेतना अपने भीतर ज्वालामुखी या भावावेग ली हुई है। वे राष्ट्र को ही मुक्त देखना नहीं चाहते बल्कि मेहनतकश आम आदमी को भी राजनीतिक तथा आर्थिक रूप से स्वतंत्र देखने की आकांक्षा पालते थे। नजरूल ने राष्ट्र प्रेम को जनता के मुक्त-संघर्ष के साथ जोड़कर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को नया आयाम प्रदान किया। इस आयाम के पीछे परम्परा से प्राप्त नवजागरण की प्रेरणा भी संपृक्त है। उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत को उनके वर्तमान

से जोड़कर राष्ट्र की सांस्कृतिक गरिमा को व्याख्यायित किया है। नजरूल राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन झंकार सुनाते हैं, आमियुगे: युगे आसि असिपाछि पुनःमहा-विप्लवहेतु एइ स्रष्टार शनि महाकाल धूमकेतु। ओई वामन विधि से, आमारे धरिते बाडियोछिलरेहात मम अग्नि दहने ज्वले पुड़े ताई ठुंठो जगन्नाथ। आमि जानि जानि ओह भुओ ईश्वर दिये जा हयनि हबेताओ। ताई विप्लव आनि विद्रोह करि नेचे नेचे दिठू गोफंता। (धूमकेतु-अग्नि वीणा)

राजा राममोहन राय (1774-1833) के नेतृत्व में पहले पहल बंगाल में नवजागरण की दौड़ चली। कम्पनी सरकार के ओहदा से इस्तीफा देकर उन्होंने धार्मिक-सामाजिक नवीकरण का रास्ता अपनाया। उन्होंने नारी जीवन को एक उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित करने के महान ऐतिहासिक दायित्व का निर्वाह किया। यही नहीं विश्व-प्रेम का संदेश भी उन्होंने दिया। महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर(1817-1905) और केशव सेन(1838-84) ने भी राष्ट्रीयता के नये दीप जलाये। रामकृष्ण परमहंस (1831-1902) ने आध्यात्मिकता और समाज तथा देश सेवा का सशक्त आह्वान किया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन नारी जागरण से जुड़ा है। भारतीय भाषाओं तथा समाचार पत्रों ने भी राष्ट्रीयता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस दिशा में टैगोर, बंकिम चन्द्र, नजरूल इस्लाम ने अपनी तूलिकाओं का सफल प्रयोग किया। जगदीशचन्द्र बोस, पी.वी. राय महान विचारकों ने भी विविध ज्ञान-क्षेत्रों को सम्पन्न किया। इनमें राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी।

‘आनंदमठ’ प्रसिद्ध राजनीतिक उपन्यास है जिसका ‘वंदेमातरम’ गीत चिरकाल तक भारत का राष्ट्रीय गीत माना जाता रहा और आज भी इस रूप में इसका समादर है। भारत का यह प्रथम राष्ट्रीय गीत ‘वंदेमातरम’ बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने उपन्यास ‘आनंदमठ’ में लिखा था। यह उपन्यास 1882 में प्रकाशित हुआ था और इसकी कथा स्वतंत्रता का नारा बन गया। नवीन

भारत के अभ्युदय और राष्ट्रीय एकता की भावना को उभारकर सामने रखने वाले की रचना महासभा की स्थापना से इसे बल मिला और 1905 में लार्डकर्जन द्वारा किए गए बंगाल के विभाजन ने इसमें आग फूंक दी। स्वदेशी का जो बढ़ा और भाषा तथा साहित्य पर भी इनका प्रभाव पड़ा। सन् 1913 ई. में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिलने से बंगाल तथा भारत में राष्ट्रीय भावना की प्रबलता बढ़ गयी और बंगला में साहित्य में एक नए युग का आरंभ हुआ जिसे हम रवीन्द्रनाथ युग की संज्ञा दे सकते हैं। यह गीत सर्वप्रथम 27 सितम्बर 1911 को कांग्रेस के अधिवेशन में गाया गया। सुभाषचन्द्र बोस की ‘आजाद हिन्द सरकार’ ने राष्ट्रीय गीत के रूप में अंगीकृत किया था। भारतीय संविधान सभा में 24 जनवरी 1950 को राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार किया गया, किन्तु ‘वंदेमातरम’ का स्थान इसके बराबर ही माना गया। जिस प्रकार भारतीय जनता की श्रद्धा का केन्द्र हमारी राष्ट्र-पताका बनी उसी प्रकार राष्ट्रगीत के द्वारा हमारी राष्ट्रीय भावनाएं उजागर हुई। राष्ट्रगीत का इतिहास भी स्वतंत्रता और जागृत जनता की क्रांतिकारी भावनाओं का इतिहास है। स्वाधीनता आंदोलन की राष्ट्रीय क्रांति का प्रबुद्ध स्वर बंगला साहित्य में भी हुआ। 19 वीं शती के समाज सुधारक राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर जैसे मनीषियों ने तथा माइकेल मधुसुदनदत्त एवं बंकिमचन्द्र जैसे साहित्य महारथियों ने बंगाल के समाज और साहित्य में नवयुग का प्रवर्तन किया। स्वदेशाभिमान में रचे गए भारतीय साहित्य में रवीन्द्रनाथ ने जहाँ भारतीयता और भारतीय संस्कृति को मुखरित किया। वहीं गांधी स्तवन में बंग भाषा में अनेक कविताएं रची गयीं। नजरूल समाज और राष्ट्र को आशा की नई परिभाषा देते हैं। वे संकल्प और सक्रियता लाने को महत्व देते हैं। अपने आंदोलन में श्मशान जैसी निर्जन जगह को भी शामिल करना चाहते हैं और नये जीवन के गीत गाते हैं। वे जागरण

के माध्यम से आस्था का स्वर देते हैं। यह आस्था पीड़ित, पराधीन मानव जाति पर भी है। उनकी दृष्टि में साम्राज्यवादी अंग्रेज, शोषक, जमींदार या महाजन ही आसुरिक शक्ति हैं, 'आनंदमयी आगमने' कविता 1923 की रचना है। आनंदमयी गान लिखने के अपराध में नजरूल को एक साल का जेल भी हुआ था। वे लिखते हैं—“*आर कतकाल थाथिन बेटि माटिर डेलार मूर्ति आड़ाल स्वर्ग के आज जय करेछे अत्याचारी शक्ति चांडाल देवशिशुदेर मारछे वीर चुबादेर दिच्छे फांसी यू भारत आज कसाईखाना आसविकरवन सर्वनाशी, देवसेना आज तान छै घानि तेपाक्तेरेर द्वीपान्तरे खांगने नाबबे के आर तुइ ना एले कृपाण धरे?*”

(और कितने दिन तू मिट्टी का ढेला बनकर छुपी रहेगी, अत्याचारी शक्ति ने स्वर्ग राज्य जीत लिया है, वीरों को फांसी दे रही है, पूरा भारत आज कसाईखाना हैं, युद्ध में कृपाण लेकर उतर जा)

नजरूल ने अत्याचारियों के नाश के लिए देशवासियों को प्रेरित किया है। नजरूल साम्राज्यवादियों के कारागार को तोड़ने का आह्वान करते हैं। वे लिखते हैं—“*कारार एइ लौह कपाट, भेंगे फेल करदे लोपाट* (कारा का लौह द्वारा तोड़ डालो)” (थिकन भांगार गान) नजरूल की सम्पूर्ण चेतना में राष्ट्र है। जन है। राष्ट्र और जन की मुक्ति के लिए अपने को समर्पित करते हैं। नजरूल विद्रोही कविता में राष्ट्रीय भावना अपने चरमोत्कर्ष के साथ अभिव्यक्ति हुई है।

बुद्धिजीवियों, रचनाकारों एवं पत्रकारों का दायित्व है कि इस तरह के प्रयासों को रोकें तथा समाज को भ्रमित होने से बचायें तभी हम अंधराष्ट्रवाद की पीड़ा से पीड़ित नहीं होंगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बदलते हुए संदर्भ में देश की प्रगति का आकलन करना, उसे प्रगति के लिए कृतसंकल्प और बाहरी शत्रुओं से सावधान रहने की प्रेरणा देना, प्रजातंत्रता का स्वागत करना और देश की विजय पताका के नित्य लहराते

रहने की शुभकामना करना राष्ट्रीयता का अंग माना गया। आधुनिक साहित्य में समान रूप से सभी भाषाओं में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्रांति को वाणी मिली। बंगला साहित्य में पुनर्जागरण की मूल उत्स राष्ट्रीय चेतना ही रही है जिसकी लहर सर्वत्र व्याप्त थी। इसमें राष्ट्रीय भावना का उत्कर्ष मिलता है। स्वाधीनता आंदोलन की राष्ट्रीय क्रांति का प्रबुद्ध स्वर बंगला साहित्य में भी व्यापक रूप से व्याप्त हुआ। 19वीं शती के समाज सुधारक राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर जैसे मनीषियों ने तथा मार्किल मधुसुदन दत्त, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिम चंद तथा मुंशी नजरूल इस्लाम जैसे साहित्य महारथियों ने बंगाल के समाज और साहित्य में नवयुग का प्रवर्तन किया। स्वदेशाभिमान में रचे गये भारतीय साहित्य में रवीन्द्रनाथ ने जहाँ भारतीय संस्कृति को मुखरित किया, वहीं गांधी स्तवन में बंगला की कई कविताएं लिखी। अपनी जीवन-स्मृति आत्मकथा में रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखते हैं—“बाहर से देखने में हमारे परिवार में बहुत से देशी-विदेशी रीति-रिवाजों का चलन था, लेकिन उसके अंदर देश के प्रति स्वाभिमान स्थिर जोत लिए जाग रहा था। अपने देश के लेकर जिंदगी के उतार-चढ़ाव में बिना टूटे कायम रही थी, उसी ने हमारे पूरे परिवार में स्वदेश के प्रति प्रबल प्रेम का भाव भर रखा था। रवीन्द्रनाथ का परिवार सामाजिक सुधार आंदोलनों और राष्ट्रवादी गतिविधियों से जुड़ा हुआ था। उनके पिता देवेन्द्रनाथ का परिवार सामाजिक सुधार आंदोलनों और राष्ट्रवादी गतिविधियों जुड़ा हुआ था। उनके पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर स्वयं एक राष्ट्रवादी थे जो राजाराम मोहन राय के प्रभाव से 1843 में ब्रह्मसमाज में दीक्षित हो गये थे। देवेन्द्रनाथ के सहयोगी नवगोपाल मित्र और उनके पुत्र गनेन्द्रनाथ टैगोर के सहयोग से 1867 में पहला हिन्दू मेला आयोजित किया गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस हिन्दू मेले के बारे में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि—“यह शायद

भारत को अपनी मातृभूमि के रूप में महसूस करने का प्रयास था।” इसी मेले में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड लिंटन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार की आलोचना करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 1877 में एक कविता प्रस्तुत की थी।

रवीन्द्रनाथ जीवन-स्मृति में स्वदेश शीर्षक में लिखते हैं—“हमारे घर के सहयोग से उस उक्त ‘हिन्दू मेला’ के नाम से एक मेला चालू हुआ था। नवगोपाल मित्र महाशय के हाथ उस मेले के इंतजाम और देख-रेख थी। भारत को अपने देश के रूप में भक्ति के साथ पाने की यह पहली कोशिश थी। मंझले भाई साहब ज्योतिरिन्द्रनाथ ने उसी वक्त प्रसिद्ध जातीय गीत “मिलके सब भारत संतान” की रचना(1874 ई.) की थी। उस मेले में देश के प्रार्थना गीत गाये जाते थे और देश के प्रति प्यार की कविताएं पढ़ी जाती थीं। देशी कला-कौशल और कसरतों बगैरह की नुमाइश होती थी और देश के अपने फन में माहिर लोगों को इनाम दिया जाता था।”

रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी एक कविता में मुक्ति के स्वर को व्यक्त करते हैं—

जहाँ मस्तिष्क भय से मुक्त हो, और सिर उन्नत हो,
जहाँ ज्ञान स्वतंत्र हो, जहाँ विश्व का संकीर्ण गृह-प्राचीरों
ने विभाजन न किया हो,

जहाँ तर्क का निर्मल प्रवाल रुढ़ आदतों को सूखी
रेगिस्तानी रेत में खो न गया हो,

हे मेरे पिता, उस स्वतंत्रता के स्वर्ग में ही मेरे देश को
जगा।

रवीन्द्रनाथ का मानवप्रेम, देश-प्रेम, विश्व-प्रेम सब एक दूसरे से जुड़ा हुआ है।

राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत 1857 के आस-पास हो चुकी थी। हिन्दी प्रदेश तथा बंगाल में आधुनिक राष्ट्रीयता का प्रथम दर्शन हमें सन् 1857 के विद्रोह से मिलता है। 1905 में लार्डकर्जन द्वारा किया गया बंगाल के विभाजन के बाद बंगाल में, उत्तर भारत में, अंग्रेज

शासक के विरुद्ध देश की संगठित राष्ट्रीय भावना का आह्वान था। उत्तर भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रथम चरण में पुनरुत्थानवादी आंदोलन सामाजिक क्षेत्र तक सीमित रहा और राजनीतिक समस्याओं से उसने अपने आप को प्रायः अलग ही रखा, परन्तु इस सीमित क्षेत्र में भी देश भक्ति की भावना की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त गुंजाइश रही। उस समय यहाँ देश भक्ति के अन्तर्गत प्राचीन गौरव, विदेशी संस्कृति के और सभ्यता के प्रति घृणा और वर्तमान अधःपतन, अनाचार, अशिक्षा वर्णाश्रम धर्म की अव्यवस्था, अछूतों और स्त्रियों की हीनावस्था के प्रति चिंता और विद्रोह आदि का समावेश था। बंगला भाषा में राष्ट्रीय चेतना से युक्त कवियों की मूल प्रवृत्ति भी देश के अतीत गौरव का गुणगान और उसके माध्यम से जनता में नयी जागृति उत्पन्न करना रही है।

एक बार रवीन्द्रनाथ ने अपनी जमींदारी के एक गाँव में यात्रा किया। गांववालों की दुरावस्था को रवीन्द्र ने अपनी एक कविता ‘एक बारे फिराओ मोर’ में व्यक्त किया है। उनको विश्वास था कि भारत को स्वाधीन बनाने के लिए ग्रामोन्नयन को छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं था। उक्त कविता में कवि ने अपनी काव्य-कल्पना से अनुरोध किया है कि वह उन्हें काल्पनिक स्वर्ग से लौटाकर धरती पर जनता के बीच ले चलें, जहाँ गरीबी से आम आदमी छटपटा रहा है। उन्हें अन्न की जरूरत है, प्राण की आवश्यकता है, उन्हें अंधकार से बाहर निकलने के लिए आलोक चाहिए। इस कविता में एक ओर तो आम आदमी के दैन्य की तस्वीर है तो दूसरी ओर मानवतावादी अहिंसक स्वाधीनता आंदोलन की प्रेरणा।

“इन मूढ़-म्लान-दीन लोगों को देनी होगी भाषा। उनके प्रांत-शुष्क भग्न हृदयों में ध्वनित करनी होगी आशा। उन्हें आह्वान कर कहना होगा कि मुहूर्त भर भी यदि तुम लोग एक साथ सिर उठाकर खड़े हो जाओगे तो जिनसे तुम डरते हो, वे भय से दुम दबाकर

भाग खड़े होंगे। जखनि जागिबे तुम तखनि से पलाइबे रेखे।” (एबार फिरओ मोरें, चित्र संकलन, विश्वभारती, 1895, अनुवाद-लेखक, पृ.-27)। राजनीतिक स्वाधीनता के सात दशक से अधिक गुजर चुके किन्तु गांवों के विकास के लिए अब तक संतोषजनक काम नहीं हो पाया। “1905-1906 के आस-पास टैगोर राष्ट्रवाद को अंधदेश भक्ति से न जोड़कर उसे आलोचनात्मक रूप से देखने की कोशिश करने लगे थे। आक्रामक राष्ट्रवाद के अंतर्विरोधों को परिलक्षित करते हुए उसे तीव्र हृदयवेग से जोड़ते हैं, उसे वे आत्मसंयमन से हीन तथा देश के समग्र हित पर आघात करने वाला मानते हैं। टैगोर का विचार है कि आकस्मिक क्रांति से उसी देश का भला होता है जिसके भंडार में ज्ञान और शक्ति का सम्बल संचित होता है। यह मानना कि प्रत्येक पराधीन देश जिसने स्वतंत्रता प्राप्त की है, क्रांति के द्वारा ही सफल हुआ है, इतिहास को गलत तरीके से पढ़ना है। वास्तव में स्वाधीनता की रक्षा करने तथा राष्ट्र निर्माण हेतु बृहद् मानवीय गुणों की आवश्यकता होती है।” (रवीन्द्र और हिन्दी साहित्य, पृ. 184)

रवीन्द्र को नोबेल पुरस्कार 1913 (13 नवम्बर) में मिला और उसके बाद 1914 में प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत हुई। 1915 में वे ब्रिटिश शासन द्वारा ‘नाइटहुड’ से सम्मानित हुए। 1915 में ही उनका महात्मागांधी से प्रथम साक्षात्कार हुआ। 1916 में उन्होंने जापान और अमेरिका की यात्रा की। इस यात्रा में उन्होंने राष्ट्रवाद एवं व्यक्तिवाद विषयों पर व्याख्यान दिए। 1918 में रवीन्द्र पर अमेरिकी शासन द्वारा यह अभियोग लगाया गया कि जर्मन-इंडियन षडयंत्र में उनका योगदान था। उन्होंने टेलीग्राम से अमेरिकी राष्ट्रपति को इस मिथ्या अभियोग की सूचना दी और वे बरी हो गये। 1919 में जलियांवाला हत्याकांड के प्रतिवाद में ‘नाइटहुड’ सम्मान को लौटा दिया। रवीन्द्रनाथ स्वतंत्रता की पहली शर्त यह रखते हैं—‘मस्तिष्क भय से मुक्त हो, सिर उन्नत हो।’ इनका समय जितना भयग्रस्त था और जितना

था उससे ज्यादा आज है। रवीन्द्रनाथ की छोटी-छोटी कहानियां ‘अंतिम धारा’ ‘पिंजर’, ‘गुंगी’, ‘समाज का शिकार’, ‘प्रेम का मूल्य’, ‘भिखारिन’, ‘नई रोशनी’, ‘यह स्वतंत्रता’, ‘विद्रोही’, ‘सीमान्त’, ‘काबुलीवाला’, ‘अनमोल भेंट’ आदि कहानियाँ के द्वारा निःस्वार्थ त्याग, परोपकार, प्रकृति प्रेमादि द्वारा ही स्वतंत्रता के मूल्य को समझा जा सकता है। यहाँ के रिश्ते-नाते, परम्परा, भोलापन, संस्कृति की बहुरंगीयता आदि सहायक हो सकते हैं, देश की वास्तविक स्वतंत्रता को बचाने में।

मुंशी नजरूल इस्लाम क्रांतिकारी विद्रोही कवि के रूप में जाने जाते हैं। वे देशभक्ति, ‘विद्रोही-क्रांतिकारिता के वैतालिक के रूप में सामने आये। ‘विद्रोही’ कविता में आने से पूर्व नजरूल के साहित्य जीवन में एक प्रस्तुति पूर्वचल रहा है। कविता लिखते समय भारतवर्ष के राजनैतिक आंगन में गांधी जी का प्रथम असहयोग आंदोलन संगठित हो रहा था। राजनैतिक उन्माद के समय नजरूल ‘विद्रोही’, कविता की रचना करते हैं। इसी दौरान बुद्धदेव बसुअपनी कालेर पुतूल’ ग्रंथ। असहयोग आंदोलन के शूरवीरों को लेकर उस समय नजरूल कविताएं लिख रहे थे, ‘विद्रोही’, कविता अत्यंत लोकप्रिय हुई। वह कविता देशव्यापी उद्दीपन की वाणी बनी। समकालीन समाज, राजनैतिक ‘अग्निगर्भ की दशा में विद्रोही कविता लिखा। यह कविता 1921 में लिखी गयी। यह कविता मुजफ्फर अहमद के साथ रहते हुई लिखी। बल्कि मुजफ्फर अहमद ही विद्रोही कविता के प्रथम स्रोत थे। विद्रोही कविता के प्रकाशित होने के बाद नजरूल बांग्ला साहित्य में विद्रोही कविता के प्रकाशित होने के बाद नजरूल बांग्ला साहित्य में विद्रोही कवि के रूप में ख्याति प्राप्त किए। यह कविता सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्यग्रंथ ‘अग्निवीणा’ में प्रकाशित हुई। ‘अग्निवीणा’ का प्रकाशन 1922 में हुआ। नजरूल ने सर्वप्रथम ‘अग्निवीणा’ काव्य को वारिन्द्र घोष को भेंट किया। वारिन्द्र कुमार घोष (1880-1959) विप्लवी अरविन्द घोष के छोटे भाई थे।

हमारे समय में राष्ट्रीयता को लेकर अनेक भ्रमों का सृजन किया जा रहा है। विघटनकारी शक्तियों राष्ट्रीयता को गलत तरीके से व्याख्यायित करके समाज को जोड़ने के स्थान पर बांटने का काम कर रही हैं। इस कार्य में वे संस्कृति और इतिहास के तथ्यों को तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत कर रही हैं। उनके कार्य में धर्म के ठेकेदार, पूंजी संस्कृति के पुरोधा, पूंजीवादी, साम्राज्यवादी शक्तियां निहित स्वार्थों के लिए सहयोग कर रही हैं। वास्तव में देखा जाये तो इसके द्वारा राष्ट्रीय और सामासिक-साझी संस्कृति के स्थान पर फांसीवादी संस्कृति की स्थापना के प्रयास हो रहे हैं। विप्लव चक्रवर्ती का मानना है— “भारतेन्दु लिखित ‘भारत दुर्दशा’(1876) नाटक में दो प्रधान की भूमिका में एक बंगला और एक मराठी ही है। प्रथम अंक के किताबखाना वाले दृश्य में भारत दुर्दशा मोचन के लिए भारतीय भाषाओं के विभिन्न कवि एवं साहित्यकार अपने-अपने मत और परिकल्पना को व्यक्त करते हुए दिखते हैं तथा सभी एक स्वर में भारत से अंग्रेजों के निकालने का निर्णय लेते हैं। इसी दृश्य में एक बंगला चरित्र कहता है कि- हमारा देश में भारत उद्धारनामक एक नाटक बना है उसमें अंग्रेजों को आज साहित्यकार को अपने युग धर्म के प्रति सचेत सक्रिय होना पड़ेगा। आज का युग धर्म है-भारत के स्वराज्य की रक्षा, भारतीय की जातीय संस्कृति और उसकी अस्मिता की रक्षार्थ भारत के समग्र विकास में भारतीयता के मानवीय पक्ष का उद्घाटन करना और उसे आज के अनुरूप बनाना। यदि भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाना है तो हमें अपनी जातीयता, भारतीयता की रक्षा करनी होगी। राष्ट्रद्रोही प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना होगा।” डॉ. कमल किशोर गोयनका के शब्दों में—“आज साहित्यकार जमीन से जुड़ने का नाटक तो करता है, परन्तु वह कबीर और प्रेमचंद के समान अपने सिर को हथेली पर रखने को तैयार नहीं है। आज अंग्रेजों की गुलामी से भी बड़ा संकट है। आज अपने ही लोग जनता का खून चूस रहे हैं, उसे

लूट रहे हैं और सारी सुविधाएं एवं सत्ता अपनी मुट्ठी में बंद किए हुए हैं। आज अपने की इस गुलामी से जनता और देश को बचाने की आवश्यकता है। आज ‘गोविंद’ भी ‘जान’ बन गया है और कौरव तथा कंस की सारी अमानवीयता एवं अनैतिकता भी इसमें मिल गयी है। आज के साहित्यकार पर बहुत बड़ा दायित्व आ गया है। उसे योगीराज कृष्ण तथा कौटिल्य बनना होगा कि उसका साहित्य कर्म उसकी जातीय एवं राष्ट्रीय आकांक्षा को उद्घाटित करने के साथ भारतीयता की मूल भूमि से गहराई से जुड़ा रहे। भारत का लोक जीवन अपने चारों ओर घिरे संकट को देख रहा है, उससे वह चिंतित है और घबराया हुआ भी है, वह उपभोक्ता संस्कृति के आकर्षण के बीच भी अपनी मूल संस्कृति को छोड़ना नहीं चाहता-ऐसी स्थिति में क्या साहित्यकार सोया रहेगा?” (इन्द्रप्रस्थ भारती, जुलाई-सितम्बर-1995, पृ. 48)।

राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के लिए स्वाधीनता संग्राम के संदेश को व्यापक बनाने के लिए निज भाषा, यानी जनता की भाषा को अपनाने की जरूरत क्यों पड़ी? इसलिए कि नयी राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के लिए आम जनता ही लड़ रही थी। किसान मजदूर लड़ रहे थे। मध्यवर्ग के वकील, शिक्षक, छात्र, नौजवान लड़ रहे थे। इस सबको जगाने, प्रेरित करने और संगठित करने के लिए इनकी भाषा में ही इन्हें सम्बोधित करने का कोई विकल्प नहीं था इसलिए हिन्दी के अलावा हिन्दी क्षेत्र की लोक भाषाओं ने और तमाम हिन्दीतर भाषाओं ने राष्ट्रीय चेतना और स्वाधीनता को सशक्त अभिव्यक्ति दी और जनता में जनतांत्रिक चेतना भरने का ऐतिहासिक काम किया। हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की इस महान भूमिका का विस्तृत वर्णन करने की यहाँ जरूरत नहीं है। इतना समझना काफी होगा कि अपनी राष्ट्रीय भाषाओं की जनतांत्रिक भूमिका के बिना स्वाधीनता संग्राम को जनता के बीच ले जाना संभव नहीं था। हमारे स्वाधीनता संग्राम के सभी नेता जनता

की भाषा में बात करते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्यधारा की एक पावन अंतःसलिला बहती रही है। उसी तरह भारत के विभिन्न भाषाओं के साहित्य में राष्ट्र और राष्ट्रीयता की सरिता सभी में समान रूप से निरंतर प्रवाहित होकर चलती आ रही है, आज भी चल रही है और आगे भी अनवरत चलती रहेगी। सत्य तो यही है कि राष्ट्र और राष्ट्रीयता से कट

कर जैसे कोई व्यक्ति जीवित नहीं रह पाता। उसी प्रकार कोई साहित्य एवं उसका सर्जक भी नहीं रह सकता। राष्ट्र धर्म से बढ़ कर अन्य कोई धर्म-कर्म नहीं होता। पूर्वोत्तर की सभी भाषाओं में पूर्वोत्तर के लोग, पूर्वोत्तर का साहित्य राष्ट्रीय सोच रखता है। हम परस्पर अनुवाद को प्रोत्साहन देकर भाषायी समरसता, एकता, सामाजिक समरसता के राष्ट्रीय एकता को और अधिक मजबूत बना सकते हैं।

संपर्क : डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय, संपादक : नया परिटृश्य, गेट बाजार, (एन. जे. पी.), पो. भक्तिनगर, सिल्लीगुड़ी, पिन-734007(पं. बंगाल), मो. 9434494430

भाषा नियोजन और राजभाषा

डॉ. ऋषिकेश राय

संविधान के अनुच्छेदों में हिंदी के प्रशासनिक, न्यायिक एवं शैक्षिक क्षेत्रों में प्रयोग सम्बन्धी अनुदेश दिए गए हैं। किंतु अनुच्छेद 351 हिंदी के प्रश्न का, अतीत और वर्तमान से निकालकर भविष्य के लिए सूत्रीकरण करता है। इसके अनुसार हिंदी को भविष्य में इस प्रकार गढ़ा जाना था कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। भविष्य में गढ़ी जानेवाली इस भाषा के निर्माण की दिशा एवं शर्तों के सूत्र संकेत मोटे तौर पर इस अनुच्छेद में निर्देशित किए गए हैं। इस अनुच्छेद में हिंदी को आधुनिक संचेतना से संयुक्त करने और विभेदक संकीर्ण रुझानों से बचाने का आग्रह है। संस्कृत पर शब्द भण्डार के लिए निर्भर रहने के पीछे स्वर्णिम अतीत और संस्कृत की समृद्ध परम्परा से जुड़ने की इच्छा अभिव्यक्त हुई है। 'हिंदुस्तानी' की बात का उल्लेख हिंदी को किसी सम्प्रदाय विशेष से जोड़ने से विरत रहने हेतु किया गया है। आठवीं अनुसूची में दर्ज अन्य भारतीय भाषाओं का उल्लेख संघीय प्रणाली और केन्द्र-राज्य संतुलन की मंशा की ओर संकेत करता है। यह अनुच्छेद भाषाई नियोजन और उसके लक्ष्यों का संग्रह है। भाषिक विमर्श में इसके कई पाठ प्रचलित हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि अगर संविधान निर्माता हिंदी को केवल राजभाषा बनाना चाहते थे तो फिर उससे 'सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति बनने की अपेक्षा क्यों की जा रही थी। संभवतः इसके पीछे स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में हिंदी के लिए राष्ट्रभाषा पद के प्रचलन का दबाव भी काम कर रहा था। सरकारी कामकाज की भाषा का सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रियाओं के जरिए संसाधित होने की आवश्यकता क्या अपेक्षाओं का अतिरेक नहीं है। सहकारी राजभाषा के रूप में अंग्रेजी से कोई ऐसी अपेक्षा तो नहीं की जाती? राजभाषा को एक भाषाई प्रयुक्ति के रूप में देखा जाता है। उसे एक आंगिक संरचना के रूप में देखने के बजाय एक उपकरण के रूप में

देखने की प्रवृत्ति ही प्रमुख है। हमारे संविधान निर्माताओं ने राजभाषा के प्रश्न को उपयोगितावादी दृष्टिकोण से देखने के बजाय एक सांस्कृतिक एवं एकतामूलक प्रत्यय के रूप में देखा।

इस अनुच्छेद को कृष्णकुमार ने 'अदभुत शब्दजाल' की संज्ञा दी है जो आजादी के बाद के वर्षों में 'हिंदुस्तानी' को राजकीय परिधि से गायब होने से न बचा सका। 1950 में 'वैज्ञानिक शब्दावली मंडल' की स्थापना की गई जो बाद में तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली आयोग में परिणत हो गया। इस आयोग पर शब्दावली निर्माण में संस्कृत को वरीयता देने का आरोप लगाया गया है। विवेचन करने से यह पता चलता है कि यह आरोप राजनीतिक निहितार्थों से अधिक लगाया जाता है। इसमें भाषा वैज्ञानिक चिंतन का अभाव है। शब्दावली निर्माण के लिए 'आकर भाषा' (Building Language) का सहारा लेना पड़ता है। यह भाषा व्युत्पन्न शब्दावली निर्माण में भी सक्षम होनी चाहिए। उच्च भावों एवं संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति के लिए मिश्रित और सम्प्रेषण सौकर्य वाली पिजिन कोड उपयोगी नहीं होती। इसके अतिरिक्त हिंदुस्तानी की आड़ में अरबी-फारसी शब्दों और शैली की आमद को स्थाई मान्यता देने की मंशा भी कुछ लोगों की थी। ऐसे लोगों के लिए संस्कृत निष्ठ हिंदी साम्प्रदायिक रुझान की अभिव्यक्ति थी। इसका इस्तेमाल हिंदू राष्ट्रवादियों ने अपने स्वार्थ के लिए किया। इन आरोपों को लगानेवाले अबतक संस्कृत पारिभाषिक शब्दावली का तथाकथित सरल विकल्प हिंदुस्तानी में प्रस्तुत नहीं कर सके हैं।

प्रसिद्ध दलित चिंतक धर्मवीर ने भी अपनी पुस्तक 'हिंदी का जीनियस' में इस अनुच्छेद पर विचार करते हुए इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि इसमें संस्कृत से केवल शब्द लेने की बात कही गई है। रूप, शैली और पदावली तक हिंदुस्तानी से ही आत्मसात करने की अपेक्षा है। इस अनुच्छेद से स्पष्ट है कि हिंदी से अपना

सम्बन्ध पहले हिंदुस्तानी से स्थापित करने की अपेक्षा की गई है। अन्य भारतीय भाषाओं से भी हिंदी द्वारा शब्दावली के स्तर पर सम्बन्ध रखने का प्रावधान किया गया है। धर्मवीर ने भी रामविलास शर्मा और पंडित किशोरीदास वाजपेयी की तर्ज पर हिंदी को संस्कृत की पुत्री नहीं माना है।

इस अनुच्छेद का एक और पाठ न्यायमूर्ति गोपाल राव एकबोटे की देन है। अपनी चर्चित पुस्तक 'राष्ट्रभाषा विहीन राष्ट्र' में वे हिंदी की भूमिका को दो हिस्सों में बाँटकर देखने के हिमायती हैं। वे जनपदीय हिंदी से उस हिंदी को पृथक बताते हैं, जिसे संविधान के अनुच्छेद 351 में प्रस्तावित किया गया है। इस तरह उनके अनुसार संविधान की 8 वीं अनुसूची में जिस हिंदी की बात की जाती है, राजभाषा का आदर्शत्मक रूप उससे पर्याप्त भिन्न होगा। अनुसूची वाली हिंदी विकसित करने का काम राज्य सरकारों का है जबकि अनुच्छेद वाली हिंदी केन्द्र सरकार की जिम्मेदारी है। जस्टिस एकबोटे किसी भाषा की प्रकृति और स्वरूप को अलग अलग करके देखने के समर्थक नहीं हैं। 351 अनुच्छेद में वर्णित हिंदी का स्वरूप हिंदीभाषी प्रदेशों में बोलीजाने वाली हिंदी से भिन्न होगा। दक्षिण भारत में सिखाई जानेवाली हिंदी का वे एक नया स्वरूप प्रस्तावित करते हैं, जिसमें राष्ट्रभाषा बनने की क्षमता होनी चाहिए। इन विशेष क्षमताओं की चर्चा के क्रम में सार्वदेशिकता, पुरातनत्व, सरल समावेशिकता, विविधस्रोतीय उत्पत्ति मूलकता, समन्वित संस्कृति की अभिव्यक्ति क्षमता और बोधगम्यता आदि को वे रेखांकित करते हैं। हिंदी प्रदेशों में व्यवहृत हिंदी में वे इन विशेषताओं की कमी लक्षित करते हैं। संविधान द्वारा राजभाषा हिंदी के प्रस्तावित भावी स्वरूप का विवेचन करने वाले ये पाठ भाषा नियोजन को विविध दृष्टिकोणों से विवेचित करने का प्रयास करते हैं। पहले पाठ में यह तथ्य उभारा गया है कि राष्ट्रभाषा की श्रेणी का इस्तेमाल किए बगैर राजभाषा हिंदी पर अखिल भारतीय

सम्पर्क भाषा का गुरुतर दायित्व सौंप दिया गया है। इसके साथ सांस्कृतिक एकतत्व का दायित्व भी संलग्न है। इस अनुच्छेद में प्रस्तावित राष्ट्र की आत्मछवि को प्रदर्शित किया गया है। दूसरा पाठ हिंदी को एक जनभाषा के रूप में विकसित करना चाहता है। इस पाठ में बोलचाल की हिंदी को सामासिक एकता के समानार्थक के रूप में पेश करने का प्रयत्न किया गया है। किंतु इस पाठ के समर्थक जैसे कृष्णकुमार और धीरूभाई सेठ आदि यह नहीं बताते कि इस बोलचाल की सहज हिंदुस्तानी और उच्च शिक्षा के लिए विकसित किए जानेवाली हिंदी के बीच समीकरण क्या होगा? संस्कृत और फारसी की भूमिका भी इस संदर्भ में विचारणीय है। हिंदी को हाट-बाजार की हिंदुस्तानी का पर्याय बना देने के सेकुलर आग्रह के प्रति भी धीरूभाई सेठ आशंकित हैं। उनका मत है कि बोलचाल की भाषा और उच्च शिक्षा का माध्यम तथा विमर्श की भाषा में अंतर होना स्वाभाविक है। हिंदी को अगर सर्वसमावेशी और परिष्कृत विमर्श की भाषा बनाना है तो संस्कृत के स्रोतों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

धर्मवीर के विचारों में भी संस्कृत से हिंदी में शब्द और पदावली लिए जाने का निषेध नहीं है। लेकिन इसके लिए वे एक व्यवहारिक मॉडल अपनाने के पक्ष में हैं। वे संस्कृत व्याकरण की पद्धति को नजरअंदाज करते हुए पाँच अक्षरों से अधिक के हिंदी शब्द बनाने का विरोध करते हैं। एकबोटे हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का समर्थन तो करते हैं, परंतु उसे वे कुछ विशेषताओं से युक्त करना चाहते हैं। वे हिंदी में पुरातनत्व के आदर्श की प्रतिष्ठा चाहते हैं जबकि खड़ी बोली हिंदी का इतिहास दो सौ वर्षों से पुराना नहीं है। वह आधुनिकता की प्रतिनिधि है जिसका विकास अन्य भारतीय भाषाओं के साथ ही हुआ है। उनके द्वारा व्यक्त सार्वदेशिकता का गुण संस्कृत को छोड़कर अन्य किसी भाषा में नहीं है। इसलिए हिंदी इस मापदंड को संस्कृत के करीब जाकर ही पूरा कर सकती है। कई

हिंदीतर भाषी भी ऐसा मानकर हिंदी शब्दावली को संस्कृत के करीब लाने की वकालत करते हैं।

संविधान निर्माताओं पर भाषाई प्रावधानों के निर्माण के समय यूरोप के एकभाषी मॉडल से प्रभावित होने का आरोप कतिपय विश्लेषकों ने लगाया है। इसमें सुदीप्त कविराज प्रमुख हैं। यूरोपीय एकभाषिता और उसपर आधारित राष्ट्रवादी छवि को वे भारत जैसे देश के लिए हानिकारक मानते हैं। वे इस बात पर आश्वस्ति भी प्रकट करते हैं कि देशको एकभाषी बनाने का मॉडल सफल न हो सका। वे हिंदी के अंतर्विरोधों की चर्चा करते हुए लिखते हैं, “हिंदी के भीतरी मदभेदों से वे परिस्थितियाँ बनीं जिसका विरोधाभासी नतीजा नए राज्य के लिए लाभकारी निकला। अंग्रेजी को अनिवार्यतः प्रतिस्थापित करने वाली ‘राष्ट्रभाषा’ के रूप में हिंदी की लामबंदी रफ्तार नहीं पकड़ पाई। इसका कारण यह तय करने की मुस्किल में निहित था कि कौन सी हिंदी इससे मिलने वाले सार्वभौम लाभों को भोगेगी।”

यहाँ कविराज सरलीकरण का सहारा लेते हुए केवल भाषाई मॉडल के मामले में एकभाषी यूरोपीय आदर्श की चर्चा करते हैं। वास्तविकता यह है कि संविधान निर्माण का प्रत्येक पहलू ही यूरोपीय आदर्शों से प्रभावित है बंगाल के संदर्भ में वे बांग्ला की बोलियों का जिक्र तो करते हैं परंतु उन्हें ‘फोकिश’ कहकर कोई विशेष महत्व नहीं देते। किसी भाषा के आधुनिकीकरण की गाथा निर्माण का यह यूरोपीय तरीका नहीं तो और क्या है? क्या बोलीगत सांस्कृतिक पहचानें हिंदी प्रदेशों की ही विशिष्टताएं हैं? अन्य प्रांत क्या इससे पूर्णतः मुक्त हैं।

हमारे संविधान निर्माताओं ने भाषा के क्षेत्र में यूरोपीय मॉडल के अलावा कई नई पहलें भी कीं। मुंशी-अयंगर फार्मूला एक ऐसा ही प्रयत्न था जिसमें राजभाषा और राष्ट्रभाषा के पदों को अवधारणागत रूप से पृथक कर दिया गया। सुदीप्त कविराज के

मंतव्यों को ध्यान से देखने से यह प्रतीत होता है कि वे भाषाई मसलों पर हिंदी प्रदेशों में चल रही बहसों और रामविलास जी के लेखन से अनभिज्ञ थे। पचास के दशक तक हिंदी शब्दावली निर्धारण में तत्सम और तद्भव शब्द सम्बन्धी वाद-विवाद शांत हो चुके थे। अभय कुमार दुबे, संस्कृत निष्ठता के आग्रह से मुक्ति की परियोजना को एक 'पॉवर शिफ्टिंग' (शक्ति परिवर्तन) के रूप में देखते हैं। उनके मतानुसार इस प्रक्रिया की शुरुआत 1907 ई. में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा हो चुकी थी। द्विवेदी जी ने लिखा था, "काशी में किसी-किसी को उच्च भाषा लिखने का अभिमान है। यह उनकी नादानी है। यदि हिंदी का कोई शब्द न मिले तो संस्कृत का शब्द लिखने में हानि नहीं, पर जान-बूझकर भाषा को उच्च बनाना हिंदी के पैरों में कुल्हाड़ी मारना है।"

हिंदी में उर्दू शब्दों से बचने और संस्कृतनिष्ठता की प्रवृत्ति का अनुसरण करने की आलोचना प्रायः की गई है। यह हिंदी के आत्मसंघर्ष का आख्यान है, जिसका पूर्व सोपान ब्रजभाषा-खड़ीबोली संघर्ष था। कालांतर में यह द्वंद्व हिंदी बनाम अंग्रेजी के रूप में ढल गया। साठ के दशक में प्रगतिशील भाषा चिंतकों ने हिन्दुस्तानी के प्रचलित शब्दों के हिंदी में पुनर्वास का माहौल तैयार करना आरम्भ कर दिया था। इन भाषा चिंतकों ने राष्ट्रीय एकता और राजभाषा के विषय पर चिंतन किया। संविधान में हिंदी को राजभाषा का पद अंग्रेजी को हटाकर दिया जाना था। अंग्रेजी ने कई प्रादेशिक भाषाओं के अधिकारों को दबा रखा था। भारत के भाषिक नियोजन में ऐसी व्यवस्था निर्मित की जानी थी जिसमें इन भाषाओं को उनके अधिकार मिलने थे। प्रादेशिक भाषाओं को प्रदेशों में ज्ञान-विज्ञान और शिक्षण की भाषा बनना था। ऐसा करना केन्द्र में हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए आवश्यक था।

अपने भाषाई विमर्श में रामविलास शर्मा ने राजभाषा और अनिवार्य राजभाषा की अवधारणा में हमेशा फर्क

किया। राजभाषा को आवश्यक मानते हुए भी वे इसकी अनिवार्यता के पक्षधर नहीं थे। आजादी के बाद राज्यों ने अपने राजभाषा अधिनियम पारित कर लिए थे, परंतु इससे अंग्रेजी के वर्चस्व में कोई कमी लक्षित नहीं की गई। हिंदीभाषी क्षेत्र की स्थिति इससे कोई अलग न थी। इसी समय राहुलजी और शिवदान सिंह चौहान हिंदी के साथ उसकी जनपदीय बोलियों के रिश्तों को पुनर्निर्धारित करने की माँग कर रहे थे।

इस पृष्ठभूमि ने आजादी के बाद भाषा नियोजन को एक नई दिशा में प्रेरित किया जो योरोपीय एकभाषी मॉडल से भिन्न थी। भाषा नियोजन की प्रक्रिया गैर योरोपीय देशों में भी लागू की गई थी। एशिया में थाईलैण्ड, चीन, जापान और इण्डोनेशिया प्रभृति देश इसका आश्रय ले चुके थे। भाषा नियोजन ही वह बिन्दु था जहाँ गाँधीजी और नेहरू दोनों में सहमति थी, जबकि राष्ट्र निर्माण और राज्य के स्वरूप के मसलों पर उनके विचार भिन्न थे। गाँधीजी पश्चिमी प्रभुत्व के खिलाफ प्रतिरोध स्वरूप जापान द्वारा भाषा नियोजन के क्रियान्वयन को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखते थे। उनके लिए यह एक उपयोगी उपकरण था। भारत के भाषा नियोजन में तमाम गड़बड़ियाँ और परिकल्पना शून्यता के बावजूद इसे यूरोपीय मॉडल का भाषा नियोजन कहना एक सरलीकरण है।

यूरोपीय भाषा नियोजन के मॉडल को देखने से यह स्पष्ट होता है कि बहुभाषी परिदृश्य में विभिन्न भाषाएँ राज्य की मान्यता के लिए संघर्ष करती हैं। थोड़े से आरम्भिक प्रतिरोध के बाद राज्य उन्हें मान्यता प्राप्त भाषा का दर्जा प्रदान कर देता है। लेकिन ऐसा करने के क्रम में राज्य अपनी सत्ता का संगतिकरण भी करता है और भाषाओं के मध्य किसी एक को प्रमुख भाषा के रूप में स्थापित करता है। यह भाषा समानों के मध्य अग्रणी की भूमिका प्राप्त कर लेती है। दूसरे चरण में उस भाषा के संदर्भ में कानूनी वैधता की व्यवस्था होती है। इसके अलावा राज्य सांस्कृतिक

प्रविधियों द्वारा दूसरे भाषा-भाषी समूहों के लिए स्वीकार्य बनाने का प्रयास होता है। इस प्रक्रिया का नाम 'लैंगुएज रैशनलाइजेशन' है। इस प्रक्रिया के कारण पिछड़ जानेवाली भाषाओं को राज्य प्रोत्साहन प्रदान करता है। भाषा नियोजन की यह प्रक्रिया थाईलैण्ड, चीन, इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी ने भी अपनाई। उनका यह प्रयत्न कमोवेश सफल भी कहा जा सकता है। बहुभाषिक होने के बावजूद ये देश एक भाषा और लिपि को स्थापित करने में सफल रहे। इस संदर्भ में डेविड लाइटिन ने अपनी पुस्तक 'लैंगुएज गेम्स' में लिखा है, "इन देशों ने जो भाषाई एकरूपता हासिल की वह एक जटिल राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक शक्तियों की अन्योन्यक्रिया का परिणाम थी।"

भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भिन्न थीं। स्वतंत्रता संग्राम में विकसित राष्ट्रवाद में उपराष्ट्रीयताओं की भी महत्वपूर्ण साझीदारी थी। उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के दौरान इन उपराष्ट्रीयताओं ने अखिल भारतीय राष्ट्रवाद का एक परिसंघ निर्मित किया था। सांस्कृतिक स्वायत्ता की अपनी इच्छा को उन्होंने तिरोहित नहीं किया था। औपनिवेशिक प्रभु लगातार उनकी इस इच्छा को हवा दे रहे थे। औपनिवेशिकता ने भी इस देश के अभिजनों को दो श्रेणियों में विभक्त कर रखा था। राजनीतिक अभिजन का निर्माण औपनिवेशिकता के खिलाफ संघर्षों के फलस्वरूप हुआ था। दूसरी तरफ नौकरशाही अभिजन की बुनियाद उपनिवेशवाद की सेवा के लिए पड़ी थी। इसके स्वार्थ और हित उससे प्रत्यक्षतः जुड़े हुए थे। ऐसी स्थिति में यहाँ भाषा नियोजन का परिणाम यूरोपीय अनुभवों से स्वाभाविक तौर पर पृथक् ही होना था।

हमारे संविधान निर्माताओं ने भाषा का लोकतांत्रिक क्रम स्थापित करने की मंशा से संविधान के भाषाई उपबंधों का सृजन किया था। किंतु अंग्रेजी को पन्द्रह वर्ष की मोहलत देने और उसको प्रतिस्थापित करने के चिंतन के पीछे यूरोपीय राष्ट्रभाषा की संकल्पना का

असर था। भारतीय राष्ट्रभाषा का संदर्भ बहुभाषिकता का पोषक है। इसी धारणा के तहत गाँधीजी हिन्दी या हिन्दुस्तानी के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और आधुनिकीकरण के हिमायती थे। विभिन्न भारतीय भाषाओं के अभिजनों ने आजादी मिलने के पूर्व से ही इन भाषाओं के विकास और आधुनिकीकरण के प्रयत्न शुरू कर दिए थे। स्वतंत्रता काल के आते-आते उनकी साहित्यिक एवं राजनीतिक आत्मछवि का निर्माण एक सुनिश्चित आकार ग्रहण कर चुका था। इस प्रक्रिया के कारण भारत में भाषा नियोजन केन्द्र और राज्य स्तर पर अलग दिशाओं में गतिशील हुआ। राज्यों में नियोजन के केन्द्र में क्षेत्रीय भाषाएँ थीं।

भाषा नियोजन का उद्देश्य ऐसी नागरिकता का निर्माण था जो तात्त्विक रूप से यूरोपीय एकभाषी राज्य के मॉडल से अलग था। कई बहुभाषिक राज्यों ने भाषाई आदर्श के रूप में ऐसा मॉडल चुना था, जिसमें किसी भाषा को प्रधानता प्रदान की जाती थी। दूसरी अन्य भाषाएँ अल्पसंख्यक भाषाओं का दर्जा प्राप्त करती थीं। दूसरी किस्म भी बहुभाषिक राज्य का नमूना थी जिसमें अपने-अपने क्षेत्रों में उन भाषाओं को मान्यता दी जाती थी। अंतर्भाषिक सम्पर्क के लिए इन्हीं भाषाओं में से किसी एक को राजभाषा के रूप में अंगीकृत किया जाता है। उपर्युक्त दोनों मॉडलों में राजभाषा की आवश्यकता थी। प्रशासनिक सुविधा और सम्बद्धता की जरूरत यूरोपीय मानकों से प्रभावित नहीं थी। यूरोपीय राज्य व्यवस्था के अस्तित्व में आने से पूर्व भी राज्य किसी न किसी भाषा को राजभाषा के रूप में स्वीकृत करते आ रहे थे। इनके चयन का कोई सार्वभौम नियम नहीं था। कई देश ऐसे भी थे, जहाँ एकाधिक भाषाओं को राजभाषा का स्थान दिया गया था। राष्ट्र-राज्य के उदय के साथ प्रशासनिक और राष्ट्रीय एकता के मानक समरूप होते गए। लोकतांत्रिक राज्यों में राष्ट्र-राज्य की वैधता का स्रोत जनता में निहित हो गया। राष्ट्र राज्यों का युग लोकतंत्र के युग

में बदल गया। भारतीय राज्य का गठन भी लोकतांत्रिक आधार पर हुआ। भारत में राजभाषा की भूमिका को अंतर्प्रतीय प्रशासनिक एवं सम्पर्क उपादान से अधिक सांस्कृतिक उपादान के रूप में गृहीत किया गया। भारत में राष्ट्रभाषा के विचार को सम्पर्क भाषा के रूप में ग्रहण किया गया। इससे अपेक्षा की गई कि वह समृद्ध सांस्कृतिक भाषाई एककों के बीच सम्पर्क सूत्र की भूमिका निभाहेगी। यूरोप में जहाँ एकभाषा वर्चस्व बहुभाषिकता के बलपूर्वक समरूपीकरण और आत्मसातीकरण के फलस्वरूप जब कर लेने का परिणाम है, जबकि भारत में देशी चेतना वाली व्यापक संचार की भाषा विकसित करने का प्रयास किया गया। इसका उद्देश्य था, उपनिवेशवादी शासन का विरोध करने वाली राष्ट्रीय चेतना का उद्भव और राष्ट्रीय एकीकरण की उपलब्धि। इसीलिए भारत में राजभाषा के साथ त्रिभाषा सूत्र और आठवीं अनुसूची जैसी भाषिक परिकल्पनाओं को आकार दिया गया।

आजादी के पूर्व ही भाषाई पहचानों के प्रबल होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी। इसने स्वतंत्रता के बाद तत्कालीन नेतृत्व वर्ग के समक्ष एक किस्म की प्रशासनिक और राज्य पुनर्गठन की समस्या उत्पन्न कर

दी। तत्कालीन नेतृत्व के सामने सबसे बड़ा सवाल था, बहुभाषिक परिदृश्य में एक विचार के रूप में भारतीयता का संवर्धन। भाषाई आधार पर राज्यों के गठन के सम्बन्ध में 1948 में न्यायमूर्ति एस. के. दार की अध्यक्षता में एक कमीशन बनाया गया। दूसरा आयोग कांग्रेस ने गठित किया था। इसकी बागडोर नेहरू, पटेल और सीतारामैया के हाथ में थी। दोनों आयोग ने भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन से फूट की आशंका को व्यक्त किया। उनका मत था कि इससे प्रत्येक राज्य में भाषाई अल्पसंख्यक पैदा हो जाएंगे। इनकी रिपोर्टों के आधार पर सरकार बहुभाषी राज्यों के पक्ष में हो गई। संविधान पारित होने के दो साल पहले ही इन आयोगों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि भारत में किसी भी राज्य की संरचना एकभाषी नहीं है। अतः एक ऐसी भाषा की आवश्यकता है जो सम्पर्क भाषा की भूमिका अदा कर सके। आजादी के बाद भाषाई राज्यों के पुनर्गठन के लिए तीव्र आंदोलन हुए। सरकार आंशिक तौर पर इन माँगों को मानने के लिए बाध्य हुई। किंतु नए बने राज्य भी पूर्णतः एकभाषी नहीं थे। उनमें भाषाई अल्पसंख्यकों की मौजूदगी बनी रही। यह तथ्य भारत में राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का प्रबल प्रमाण है।

सम्पर्क : उप निदेशक (रा.भा.), टी बोर्ड इंडिया 14, ब्रेबोर्न रोड, कोलकाता-700001, मो. 09903700542

कठिन समय में है कविता

बद्रीनारायण

मैं बिहार के गांव में पैदा हुआ गांव का नाम था जनैदी जो आरा जिले के सहार क्षेत्र में अवस्थित है मेरे पिताजी रेलवे विभाग के सुरक्षाबल में थे और छपरा जिले के पहलेजा घाट नामक स्थान पर कार्यरत थे आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई मैंने गांव में की आरा के जैन विद्यालय नामक एक छोटा सा विद्यालय था जहां मेरी पढ़ाई हुई वहीं विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से कविता के प्रति मेरी रुचि जागृत हुई और मैंने कविता लिखने की जरूरत महसूस की। वामपंथी आंदोलन का दौर था कविता लेखन के क्रम में ही मैं वामपंथी संगठन से जुड़ा गांव-गांव में संगठन के काम-काज को लेकर आने जाने लगा जब मैंने कविता लिखना शुरू किया तो पाया कि अपने मां के द्वारा गाये जाने वाले लोकगीत एवं लोककथाएं मेरी रचना के संस्त्रोत के रूप में कार्य कर रहे हैं। वामपंथी आंदोलन के विचार ने उन सब संस्त्रोतों को धार दिया। मेरी पहली कविता कलकत्ता से प्रकाशित जनवादी लेखक संघ की पत्रिका 'कलम' में छपी फिर तो कविता लिखने का क्रम चल पड़ा हाई स्कूल की पढ़ाई के बाद आगे की पढ़ाई के लिए मैं इलाहाबाद आ गया। इस प्रकार आंदोलन और कविता लेखन-क्रम साथ-साथ चल पड़ा सन् 1992 में मेरी एक कविता को 'भारतभूषण' पुरस्कार मिला उसी के बाद मेरा कविता संकलन 'सच सुने कई दिन हुए' प्रकाशित हुआ उसके लगभग 10-12 वर्ष बाद मेरा दूसरा कविता संग्रह 'शब्दपदीयम' प्रकाशित हुआ। 6-7 वर्ष बाद तीसरी कविता पुस्तक 'खुदाई में हिंसा' का प्रकाशन हुआ चौथा कविता संकलन 'तुमड़ी के शब्द' शीघ्र आनेवाला है।

कविता मेरे लिए हमेशा जीवन में अनुभूति संवेदना एवं वैचारिक प्रतिक्रियाओं का समुच्चय रही है। आज की कविता एक कठिन समय में रची जा रही है, लेकिन इस कठिन समय के घात-प्रतिघात से इस समय की महान कविताओं का आना बाकी है। उन्हें कौन लिखेगा, कब लिखेगा, कैसे लिखेगा इसे अभी देखना बाकी है।

बेगमपुरा एक्सप्रेस

अमरपुर से बेगमपुरा तक
चलती है एक ट्रेन
बेगमपुरा एक्सप्रेस
सुबह पाँच दस पर
बिल्कुल ब्रह्मबेला में।
टिकट काउंटर पर बैठा है क्लर्क टिकट लेकर
कहते हैं कि पैसे से मिल जाता है सब कुछ
पर लोग हाथ में ले खड़े हैं पैसे,
रुपये व एटीम कार्ड
टिकट बाबू फिर भी उन्हें टिकट नहीं देता
कल्ली, खूनी, बलात्कारी
बेईमान, चालू, फ्रॉड, लम्पट
हिंसक, झूठ, बवाली,
सुल्तान, साहेब, मालिक
इन सबको नहीं मिलेगा टिकट
दम्भी कवि, सत्ता के बौद्धिक
सब खड़े रह जाएंगे और नहीं मिलेगी
उन्हें इस ट्रेन की टिकट
टिकट बाबू अगर इन्हें बेचना भी चाहेगा
तो उसके हाथ बेकार हो जाएंगे
जो ढाई आखर जानता होगा
वही बेचेगा टिकट
जो ढाई आखर जानता होगा
वही पायेगा टिकट
लहरों से होकर आये तारों को
कोमल मन सुकुमारों को
सराय के मालिकों को तो नहीं
पर सराय में रुकने वालों को
मिल जायेगी टिकट
टिकट बाबू सोना ले लो, चाँदी ले लो
मुहरें और मोती ले लो
पर दे दो मुझे टिकट

कई दशकों से मैंने कोई यात्रा नहीं की है
मैं जाना चाहता हूँ
बेगमपुरा
ट्रेन खुलने लगी है, हरे पंछी पेड़ से उड़ने लगे हैं
ट्रेन में धाना बैठे हैं
पीपा बैठे हैं
बैठे हैं सेना नाई
ट्रेन खुलने लगी है।

तुमड़ी का शब्द

यह सबद की तुमड़ी है
कि तुमड़ी का शब्द
कहना कठिन है

यह शब्द कितना शाश्वत है
कितना क्षणभंगुर
कहना कठिन है

यह कितना नानक का है
कितना कबीर का
कि कितना बोधा, रैदास का
हिगराना कठिन है
बिलगाना कठिन है
कि यह कितना है जौनपुर से आये खिलाड़ी राम का

इस शब्द में क्या है
बूझना कठिन है

इसमें कितनी चाहते हैं, कितनी हसरते
कितने इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, स्वप्न घुले मिले हैं,
इसमें कितना भूत है कितना भविष्य
कहना कठिन है

कहना नहीं है आसान कि
इसमें कितना शामिल है इसे कहने,
गाने, सुनने वालों का वर्तमान

इसमें कितना निछुका शब्द है
कितना टेक, कितना कहनी,
रहनी और कितना छंद है
कितना आऽऽ, साऽऽ, रेऽऽ का योगदान है इसमें
जिस तुमड़ी से निकला है शब्द
वह कितना जोगी का है
कितना जती का
कितना राजा का
कि कितना है जन का और कितना जनतंत्र का
कहना कठिन है

पर सुनो! इस शब्द से निर्बल को बल मिलता है
निर्धन को धन
अंधे को आँख मिलती है
और बहरे को कान
इसमें निराकार को
निराकार में भी साकार मिलता है

इससे अपमानितों को सम्मान मिलता है
मिलता है इसमें निचलों को उठान
इन्हीं शब्दों से गरीबों में जनमता है
ताज और तख्त हिलाने का स्वप्न
देखो कितने तोप, तीर, तलवार,
आरी, कटार, तने हैं इस शब्द पर
कई फूलों के बाण से
इसे मार कर खा जाने
में सिद्धहस्त
लगाए बैठे हैं घात

डरता हूँ मैं
इस शब्द के लिए डरता हूँ

बीच-बीच में ढाँढ़स बंधाता है मुझे
तुमड़ी पर गा-गाकर नाचता भगैत
डरो मत कवि!
यह शब्द मरते ही जी जाता है।

तुम क्यों नहीं समझते

आनंद, वैभव, खुशियों की तलाश में
मॉल, हाईवे, फ्लाईओवर से गुजरते
तुम पहुँच रहे हो
एक महाबाजार में
उसी बाजार के बिल्कुल बगल से
खुलता है मृत्यु लोक का एक महाद्वार
तुम समझते क्यों नहीं

तुम समझते क्यों नहीं
कि जिंदगी के हँसी खिलखिलाहटों के बीच
यह दुनिया है एक महाश्मशान
हीरे में भी पत्थर होता है तुम क्यों नहीं समझते
तुम क्यों पानी के बुलबुले पर बैठ
राई-राई, पाई-पाई जोड़ने में समझते हो
अपनी शान

तुम समझते क्यों नहीं
कि इस सभ्यता को
कबीर की एक बार फिर आ पड़ी है जरूरत
कि एक बार फिर पुराने डिक्शन में नई बात
कहने की बड़ी आवश्यकता है

तुम समझते क्यों नहीं
कि प्रेम मात्र सुख ही नहीं है
प्रेम के पीछे भरा है अनंत दुख
कि तुम्हें बुद्ध क्यों नहीं आते याद

यह ठीक है कि यह जिंदगी बहुत मनोरम है
और चौरासी योनी के बाद
मानुष जन्म पाने पर
तुम चाहते हो इस जीवन के
हर आनन्द को भोग लेना
परन्तु तुम यह क्यों नहीं समझते
कि चार्वाक दिल्ली में महाभोग के बाद भी

कितना दुखी है
और शाहदरा के किसी गली में बैठा
फूट-फूट रो रहा है
कि तुम फिर से उस हंसा को
क्यों नहीं करते याद
जो हरे गाछ से उड़ान भरने को
न जाने कबसे खड़ा है
तैयार

देश

जैसे चिड़ियों के देश नहीं होते
क्या ऐसा हो सकता है कि
कवियों का भी देश न हो
चिड़ियाँ चली जाती हैं एक जंगल से दूसरा जंगल
और कोई उनसे उनका पासपोर्ट नहीं माँगता
कोई नहीं पूछता कि-रे चिड़िया तेरी पहचान क्या है
तुम तो रहने वाली वहाँ की हो, यहाँ क्यों आई,
न उन्हें वीजा संबंधी किसी पूछ-ताछ से
गुजरना होता है

क्या ऐसा हो सकता है कि किसी भी

सरकार के पास कवियों को
नागरिकता दे पाने की
और देश से निकाल पाने की
न शक्ति हो, न अधिकार
न उन्हें बीमा कराना पड़े
न एंबेसी में बार बार जाना पड़े
जब चिड़ियों के लिए जेल नहीं होते
तो आदमी के रूप में रह रहे
कवि के लिए ही क्यों हो जेल
कि उन पर नियंत्रण क्यों हो
कि उनके लिए खाके और खांचे क्यों हो
न कोई बिहारी कहे, न कोई पहाड़ी
लोगों, नागरिकता से परे उन्हें लोग में
तब्दील होने दिया जाए
एक सागर बनने दिया जाए,
उन्हें एक सागर में बहने दिया जाए
कुछ ऐसा किया जाय कि
भाषा से आजाद हो भाव
सबसे अपनी बात कर पाएँ
और कल्पनाएँ कहीं से उड़कर
कहीं चली जाएँ
पासपोर्ट के बिना

परिचय : जन्म : 1965, भोजपुर, बिहार के एक गाँव में। गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद के सेंटर फॉर कल्चर, पावर एंड चेंज में सामाजिक इतिहास/ सांस्कृतिक नृत्यशास्त्र विषय में संकाय सदस्य हैं। गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद के मानव विकास संग्रहालय एवं दलित रिसोर्स सेंटर के प्रभारी हैं।

यू.जी.सी., आई.सी.एस.एस.आर., आई.सी.एच.आर., तथा इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़, शिमला के फेलो रह चुके हैं। इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज़, लाइडेन यूनिवर्सिटी, द नीदरलैंड, मैसोन द साइंसेज द. ला. होम, पेरिस में फेलो रहे हैं। फुलब्राइट एवं स्मट्स फेलोशिप भी उन्हें मिली है।

पहला कविता संकलन 'सच सुने कई दिन हुए' तथा दूसरा कविता संकलन 'शब्दपदीयम' चर्चित रहे। अंग्रेजी, फ्रेंच, डच, उड़िया, बांग्ला, गुजराती, मराठी, उर्दू भाषाओं में कविताएँ अनूदित।

संपर्क : 9450613293

श्री हर्ष

छोटी-छोटी बातें

छोटी छोटी बातें मुँह खोलकर
बता देती हैं पेट में छिपी बातें
रूई ठूँस कर सुनते हैं कान
दुःख के सागर में हिलोरे खाता
परेशानियों के थपेड़ों से लड़ता
लहरों उजाले में चमकते रिश्ते अंश दूर-दूर भागते हैं
पर एक पाँव खड़ा होकर नाचता हूँ
अकेलापन भगाने
दूर-दूर भागते हैं-गले पड़ने के भय से।
जीने की ललक ठिकाने बदलती है
बार-बार धक्के खाकर
तिनके का सहारा प्राण वायु फूँकता है भीतर।
आज की सभ्य दुनिया में मैं कैसा आदमी हूँ
लहरों पर एक पाँव खड़ा होकर नाच रहा हूँ भय
भगाने

अर्थ का आधार

अर्थ का आधार हिलते ही
घर-देश-विदेश की दीवारें कांपने लगती हैं।
मुँडेर पर बैठी रौनक रफ़फू-चक्कर हो जाती है।
अर्थ-शब्द-शक्ति के कन्धों पर
चढ़ घुड़दौड़ लगाता है-होश-हवास खोकर
औकात से अधिक उड़ान भरता है-गिरने पर

चुपचाप चीखता है। चिंता की रेखाएं-चमकने
लगती हैं
कामवाली बाई अचानक शिकार हो गई-कंपन से
खाली हाथ थके पाँव धुंधलका ओढ़े लौटती है
हिलती दीवारों से बतियाती है आंचल से
उदासी पोंछ
कल सूरज नया प्रकाश लेकर आयेगा

मौन घबरा कर

सीढ़ियों से उतरती उम्र-फूँक फूँक कर रखती है पाँव
खांसी की आवाज-शीत लहर बन
चुभ न जाये नये पेड़ के कानों में
जिसे खून पसीने से सींचा है
पेड़ हरा भर होकर लहराने लगा
डालिया-फूलों की गंध के साथ मुस्कराती है
फल-फूले नहीं समाते हैं
उतरती उम्र पेड़ की छाया में सुख की
सांस लेना चाहती है
वह लंबी सांस लेकर दुत्कारता है।
उम्र का एक ही स्वप्न है—चिंता पर
मुँह में अग्नि डाल-प्यास बुझा देना।
पेड़ नई हवाओं के रेशमी जाल में उलझा
मौन घबराकर भागता है
डालियां फूल हँसते हैं।

फ़ोन-9352091663

उमेश पंकज

जेठ की बारिश

छुओ हां छुओ मुझे तुम छुओ
जल की तरह मुझे छुओ
मैल धुल जाएगी गुलाब की पंखुड़ियां
सुगंध के साथ बिखर जाएंगी
जल प्रपात की मधुर ध्वनि गूजेगी
अब यह तुम पर निर्भर होगा
कि मुझे रखोगे कहां
किसी लोटे, बाल्टी या कुंए में
अथवा किसी नदी की तरह
वैसे कोई फर्क नहीं पड़ता मुझे
तुम चाहे जहां रखो
मैं तो रहूंगा अपने प्राकृतिक स्वरूप में
हर जगह एक जैसा
सुनो, इस जेठ की दुपहरिया में
तुम हवा बन जाओ उतर आओ
मेरे भीतर मेरी सांसों में
खुद बहो और मुझे बहाकर
ले चलो किसी नदी के पास
मैं नदी की लहर बनकर सींचना चाहता हूँ
नदी के किनारे पसरी तपती हुई रेत ।

मेहतर

कचरा घर में है और बाहर भी
गली, मुहल्ला यहाँ तक कि
शहर-शहर पूरे देश में
जगह-जगह टीले बन गये हैं कचरा के
जिस पर अक्सर गाय-भैंस
कुत्ते-बिल्ली करते हैं आवाजाही
बहुत सारा कचरा हमारे भीतर भी है
हम इकट्ठा करते रहते हैं रोज
इस तरह हमारे भीतर भी कचरे का
एक टीला है बना हुआ
कचरे से जब बदबू भरी हवा बहती है
और सांस लेना भी हो जाता है कठिन
हम शुरू करते हैं मेहतर ढूँढना
कहां-कहां साफ करेगा मेहतर?
गली-मुहल्ला शहर-शहर देश
और फिर आपके भीतर एक भी
आप खुद क्यों नहीं
बन जाते एक मेहतर?
भाई साहब ।
मेहतर से नहीं है कोई इंसान बेहतर

मौत का स्थानान्तरण

लगता है पगला गया है भैंसा
कोई मादक पदार्थ खाया है
उसके भीमकाय शरीर में लगता है भूचाल आ
गया है
उसकी आंखें फैल गयी हैं, सूख लाल रक्तम
लगता है घटित होगी कोई विनाश लीला
कई खेतों को रौंदने के बाद
शहर के व्यस्ततम चौराहे को
अपने कब्जे में ले रखा है भैंसा
गाड़ियों की लम्बी कतारें लग गयी हैं सभी
दिशाओं में
सबके चेहरों पर दहशत है, उड़ रही हैं हवाइयां
मौत सामने खड़ी है, नाच रही
सबको मोह हैं-अपनी जिन्दगी से
कोई जीए-मरे, हमें क्या पड़ी है?
हम क्यों बढ़ें? क्यों लड़ें? मौत से
किसी तरह छिपे रहें, बचे रहें, बचे रहें।
अचानक बदलता है परिदृश्य
एक युवती आगे बढ़ती है, चुनौती देती है मौत को
भागती है-उसके आगे-पीछे कभी दाएं, कभी बाएं
ओर उछलकर बैठ जाती है भैंसा की पीठ पर
जूझती है मौत से, संचारित करती है
अदम्य साहस अपने इर्द-गिर्द
भैंसा अब दहशत में है
चारों ओर से घेर लिया है लोगों ने उसे
मौत स्थानान्तरित है उसकी ओर

अस्मिता का संकट

धूल मिट्टी में है और मिट्टी से है धूल
मिट्टी में हैं जड़ें पेड़ की
नीचे कसकर जमीन को पकड़े हुए
जब कभी मिट्टी ने ढीली की है
जहड़ों की पकड़
पेड़ धराशायी हुए हैं
खड़ा नहीं हो पाए उठकर कभी
परत-दर-परत चढ़ती चली जाती है
धूल उन पर
पेड़ मिट्टी बन जाते हैं
खो जाती है उनकी हरियाली
गायब हो जाती है उनकी शीतल छाँव
टहनियों पर बैठी चिड़िया उदास हो जाती है
अपने चोंच पीटती है
और उड़ जाती है अपना घर-बार लेकर
फिर कभी वापस नहीं आती
मैं उसी मिट्टी को मलता हूँ
अपनी देह पर
और मिट्टी बन जाता हूँ
महसूस करता हूँ अपने अन्दर एक पेड़
जिसकी हरी पत्तियां हवाओं के साथ मिलकर
फड़-फड़ाती है
टहनियों की फुनगियों पर टंगे फूल
चारों ओर अपनी खुशबू बाँटते हैं
टल जाता है अस्मिता का संकट
और आरम्भ होता है नया सिलसिला

डॉ. राजवंती मान

आकाशगंगा में सपने

मुझे नहीं जाना दलदले पानियों की ओर,
नहीं झांकना मुंडेर के उस पार
ऊँचे गुम्बदों को,
जिनके आस पास दूब नहीं उगती!

विकट परिस्थितियों में
स्मृतिपटल में रोपे हैं सुनहले पन्ने
निद्रा लोक में उन्हें
आकाशगंगाओं में सिरा दूंगी
चन्द्रकिरण थाम कर
क्षितिज तक हो आयेंगे!

उस लोक में मुट्ठी में होता है शाबर मन्त्र
चित्तकौडिया सांप को रस्सी की तरह
झटक कर तोड़ देती हूँ
बदबूदार लिजलिजे कीड़े पास नहीं फटकते
मन्त्रों के धागे पीपलों को नहीं बांधे जाते

उमंगें चन्दन वन सी महकती हैं
शक्ति तरंगें नई भाषाएँ

नई परिभाषाएँ गढ़ती हैं
संवेगीय उर्जा धमनियों में बहती है
स्वप्निल रात में!

कहता रहे कोई सपनों के अर्थ होते हैं
या अर्थपूर्ण सपनें होते हैं
उस वक्त ये विमर्श बेमायने हैं
इसे फ्रायड और जुंग के मनोविश्लेषण में रहने दें!

दैर्घ्यदिनी के छिनालपन के बाद
सान्त्वना देते हैं सपनें,
तीक्ष्ण विलाप में
सुनहरे हस्ताक्षर जैसे
टूटी टोकरी में जगमग चाँद सितारे
जादुई कालीन पर बैठ कर
बादलों पर विचरने जैसे
गरीब की अनमोल मिलकियत जैसे
जिन्हें कोई कुर्सी या रईसी खरीद ना पाये!

अगर बेचने पर आयें भी
तो क्या खरीदें उनके बदले!!

उसने कहा

उसने कहा
मैं कल फिर उठ खड़ा होऊंगा
पहाड़ियाँ नये हरीतिमा लिबास में
जी उठेंगी पश्चिमी घाट में
सड़कें, इमारतें, घर-बाजार फिर सजेंगे
गतिमय होगा जीवन-चक्र
मालाबार तट पर!

विनाश के लक्षण शायद नहीं बचेंगे
मगर, मेरे सीने पर
गड़े हुए वाग्बाण
कोंचे से खड़े रहेंगे
उन्हें भूल पाना दुष्कर होगा
पेड़ के तने में ठोंकी गई खपच्चियों से
रिसता रहूँगा मैं
तुम्हारे एक कसोरे रस की खातिर!

इस प्रलय से निकल कर
मैं निर्मल हो जाऊँगा और तुम
मैले कहलाओगे
शय और मात के खेल में
काणे पासे फैकते देख कर
दो हाथ, दस उँगलियाँ उकताने लगी हैं
आह! पृथ्वी पर मुक्त प्राणी
कितने कम बचे हैं!

यात्रावृत्तांत

उठो कनिका!
नहा लो
कर दो इस पानी को सुनहला
जंचता नही ये आलसी लिबास तुम पर
कर दो दफन इसे कहीं गहरे, बहुत गहरे
कुतर देता है ये रंगीन पंख और सुंदर कलगी भी
जो उग रही है मस्तक पर!

हां, सच है
दमघोटू राख की बादशाहत
लिपट जाती है परिधान से
सीने को बींध देती है चक्रव्यूह में
खेंच देती है लक्ष्मण रेखाएं!

मगर, धैर्यवती!
तुम्हारा ये गुलाबी मनफूल
भूरे त्वचापर्ण लिफाफे में
महक रहा है अभी
सिन्दूरी किरण को देख कर!

सो उठो!
तराश लो अपनी कलम
और लिख दो उस आसमानी चादर पर
स्वर्ण जड़ित अक्षरों में
अपना यात्रावृत्तांत!

सूरजमुखी के फूल

कमरे की बालकनी से दूर दूर तक
दिखाई देते हैं सूरजमुखी के खेत/ पीली ओढ़नी में
दिल जैसी आकृति के स्नेहिल पत्तों में
लिपटी बैशाख की हवाधो देती है
घुटन का काला धुंआ!

धरा की गोद में रात भर अलसाये,
शर्मिले फूल सूरजमुखी के
भोर के गुलाबी लालित्य में चहक उठते हैं
बड़े बड़े पातों में लिपटा बचपन
यौवन के सिरहाने आन खड़ा है
पीले पंखुड़ीवृत में पराग छुपाये
भीनी भीनी सुगंध बिखराता!

इसी रंग में रंगी जाती हैं
शगन की ओढ़नियां
आकुल कंठ शुक समूह मंडराते हैं
कृषक की 'हुर्र'-'हुर्र' से बेफिक्र
कच्ची मूंगफली का आस्वाद पाने!

पत्तों की सघन छाया तले
टटिहरी के अण्डों से बच्चे आँखें खोलते हैं
सचेत हैं टटिहरियां
देसी कुत्ते टोह में हैं!

ऊँची इमारतों, धुएँ की घनघटा से बचते बचाते
काली सड़क के उस पार

फिर खिल उठे हैं सूरजमुखी के फूल
नीयत समय पर भरपूर रंग जोबन के साथ
हमारी तुम्हारी सेहत का ढाढस बंधाते
ये फूल
शब्द हैं! अन्न हैं!! श्रृंगार हैं!!!

अपने कदमों से

वक्त आ गया है
कुछ रास्ते बदलें
कुछ मंजिलें नई बनायें
कदमों के गहरे नक्श उकें
बाँझ कदम मिटा दें

लड़ाई विचारों की स्वीकार हो
लड़ें तो
मच्छरदानियों के बाहर आयें
दुरात्माओं के डेरे ढहा कर
कुछ खेत नये बनायें

पेट भींचे जांधों में न सोयें
जीभों की काई पोंछ कर
मिथ्या पर्दे फाड़ें स
वक्त आ गया है
अपने कदमों से
अपने खेतों तक जायें!

संपर्क : फ्लैट न. एफ 2/301, माया गार्डन सिटी, अम्बाला रोड जीरकपुर, पंजाब-140603,
मौ. 9814676936

अनुपमा 'अनुश्री'

'अस्तित्व'

मेरी ही ज़मी, मेरा आकाश
हर दिन सूर्य, मुझ में उगता है
सुनहरी किरणें बिखेर,
मुझ में डूबता है
पंछियों के कलरव-करतब,
मुझ में ही बसते हैं,
कोलाहल करते हैं।
यह हिमशिखर अटल,
कभी मुझ में जमें,
कभी पिघले रहते हैं,
अकस्सर कहते हैं,
वह पल भी नहीं ठहरा,
नहीं ठहरेगा यह भी पल।
प्रकृतिस्थ होती हूँ,
जब प्रकृति के बीच,
यह मुझ में गुनगुनाती है,
गीत गाती है मुझ में ही,
संपूर्ण खिल जाती है,

नवसृजन की गाथाएं रच जाती है।
मानवता के दुख सुख,
मुझ में रिसते हैं, खुशियां भी,
यहीं रकूँस करती हैं,
अनुभूतियों की कलम थामें,
मेरी नित नूतन रचना,
सुख दुख को परिभाषित करती है।
श्वेत रश्मियों की चादरों पर,
लिखती जो मृदुल आखर,
यह दूधिया रजत चांदनी,
मुझ में भरी, मुझ में ही खिली है,
मेरे साथ ही चढ़ी उतरी है।
पूर्णत्व से प्रगट,
पूर्णत्व में समाहित,
सृष्टि के पुरातन ,
नव रूपों से झांकता,
मेरा अभिन्न अस्तित्व,
कहीं भी अधूरा, अपूर्ण नहीं है।

‘नववर्ष का नवगान’

स्वागत, अभिनन्दन नववर्ष
नवहर्ष, नवोत्कर्ष
नववर्ष का स्वर्णिम विहान
नव इतिहास रच जाये
खुशियों की सरसों लहलहाए
बुराइयों का तिमिर ढल जाये।
हर दिल हो भाव भरा
नव गान से गूँजे धरा
सुख, समृद्धि की पदचाप हो
नव भोर का आगाज हो।
सपना सच हो हर आँख का,
व्यक्ति के विकास का
अभ्युदय हो नए देश, नए समाज का
अपराधी मन बने वीतरागी

बने समाज हित सहभागी
जुल्मों-सितम का न हो नामों निशान
सच हो स्वस्थ राष्ट्र की संकल्पना।

न दोहराई जाएं विगत विभीषिकाएं, त्रासदियाँ
महिलाओं का हो सम्मान, संस्कारों का द्वार चार।
मस्जिदों में नित अजान हो,
मंदिरों में गूँजे प्रार्थना
उल्लास के तोरण सजें
उर प्रेम, मंगल घट बसैं।
शुभसंकल्पों की हो स्थापना,
नववर्ष में हो ऐसा एक जहाँ,
नव वर्ष, सर्वत्र नव उत्कर्ष,
‘महान भारतवर्ष’ से पुनः गुंजित हो नव अर्श।

संपर्क : अनुपमा ‘अनुश्री’, मो. - 8879750292

कविता : मेरी आत्मा का स्थापत्य

विजेन्द्र

कविता को कैसे समझें? इसके लिए बेहतर है पहले हम उसके स्वभाव को जाने, यूरोप और भारत में कविता को एक ढंग से नहीं समझा गया। क्योंकि दोनों की संस्कृति भिन्न और अलग है। कविता संस्कृति का सार है। वैसे वह मानव आत्मा का वास्तु-शिल्पीय-स्थापत्य भी है। इसीलिए कवि को 'आत्मा का शिल्पी' कहा गया है। भारत में कवि को प्रजापति भी माना है। स्रष्टा और द्रष्टा भी। अर्थात् कवि उसे भी देखता है जो सामान्यतः लोगों को दिखाई नहीं देता। या वे उसे देखना नहीं चाहते। हमारे यहाँ कहा गया है कि कवि का संसार अपरिमित है और कवि प्रजाति है। वह अपनी इच्छा के अनुसार जीवन और जगत को समझता है। उसकी व्याख्या करता है। आम तौर पर अगर देखें तो कविता जीवन-जगत की कलात्मक पुनर्रचना है। जो मनुष्य ने नहीं रचा वह प्रकृति है। मनुष्य जिसे रचता है वह कृति है। कविता एक कृति है पर यह कृति कलात्मक है। मनुष्य कृत जीवन-जगत की कलात्मक पुनर्रचना। अतः एक प्रकार से कविता प्रकृति के समानान्तर एक प्रकार से मनुष्य कृत प्रकृति है। यूरोप में कविता के स्वभाव के बारे में अरस्तू से लेकर टी.एस.एलियट तक उसे उपदेश परक और आनंद-मूलक बताया है। अरस्तू ने अपने गुरु प्लेटो के विचार को बड़ी शालीनता से पुनर्परिभाषित किया। प्लेटो ने कविता को जीवन-जगत का अनुकरण (imitation) कहा था लेकिन अरस्तू ने उसे जीवन जगत का (Re-creation) कहा है। अर्थात् जीवन जगत को फिर से रचना शायद आज तक हम इस बात को कहना पसंद करते हैं, कविता जीवन-जगत की पुनर्रचना है। वैसे मेरा विनम्र मत है कविता को परिभाषित नहीं किया जा सकता। उसकी प्रक्रिया को समझने के प्रयास हो सकते हैं। फिर भी हर कवि की काव्य-प्रक्रिया अलग-अलग हो सकती है। कुछ बुनियादी बातों को छोड़ कर जैसे कहा जाता है कि शिलर को सड़े सेब को सूँघ कर प्रेरणा मिलती थी। प्लेटो ने काव्य प्रेरणा के स्रोत को दैवीय

माना है। लेकिन भारत में कविता के स्वाभाव को लेकर प्राचीन काल से अबतक बहुत तरह से बताया गया है। इस संदर्भ में एक बात ध्यान देने की है। मनुष्य प्रकृति के नियमों को मानता है। उन्हें न तो बदल सकता है न ही तोड़ सकता है। लेकिन कविता प्रकृति के नियमों को नहीं मानती। आचार्य मम्मट ने कहा है कविता, नियति-कृति-नियम रहिताम अर्थात् कविता प्रकृति के नियम नहीं मानती। अगर कविता में कोई कहे कि, 'आज सूर्य पश्चिम से उदित हो रहा है' तो इस से अचरज नहीं होना चाहिए।

इसी तरह कविता दार्शनिक और व्यावहारिक तर्क से नहीं समझी जा सकती। उसके लिए काव्य तर्क ही काम में लेना होगा। न उसे शब्द कोश से समझा जा सकता है। कविता को समझने के लिए काव्य संस्कार विकसित करना पड़ता है। मेरे लिए कविता जीवन-जगत की पुनर्चना है। लेकिन मैं उसे कैसे देखता हूँ समझता हूँ उसे कैसे पुनः सृजित करता हूँ इसके लिए मैं स्वतंत्र हूँ, मुझे कविता के लिए अपनी संघर्षशील जनता(लोक) से एकात्म होना पड़ता है। मैं मानता हूँ कि संघर्ष शील लोक के बिना एकात्म हुए बड़ी और सार्थक कविता नहीं लिखी जा सकती, कविता जनविरोधी प्रवृत्तियों का विरोध भी करती है। सत्ता की असंगतिओं का प्रतिरोध करती है। जनता के प्रति अन्याय, शोषण, दमन और अत्याचार को लेकर प्रहार भी करती है। इसी लिए हमारे यहाँ कविता का एक प्रयोजन, 'शिवेतर-क्षतये' अर्थात् जो भी जन विरोधी और असंगत है उसका विनाश करने में कविता सहभागी हो, लोकतंत्र में तो यह और भी जरूरी है। यह तो सही है कविता से कोई व्यवस्था नहीं बदल सकती। न उससे कोई क्रांति हो सकती है। पर वह मनुष्य को अपने समय के हालात से सचेतन जरूर करती रहती है। उसके चित्त को रचती है। उसकी आत्मा के स्थापत्य को एक कलात्मक शिल्प में ढालती है। इसीलिए हम कवि को 'आत्मा का शिल्पी' कहते हैं। मेरे लिए भी कविता मेरी

आत्मा का स्थापत्य ही है। मेरे लिए कविता रचने के लिए कोई भी विषय अछूता नहीं है। मेरी प्रेरणा के स्रोत मेरी संघर्ष-शील जनता ही है। मेरी एक कविता है, 'मुर्दा सीने वाला'। जब किसी व्यक्ति की संदिग्ध मृत्यु होती है तो नियमानुसार उसके शव की शल्य-क्रिया की जाती है। फिर उसके बाद शव को सिल दिया जाता है। जो शव को सिलता है वही मेरे लिए 'मुर्दा सीने वाला' है। मैंने उस से बात भी की हैं, उसने अपने जीवन की इसे त्रासदी ही बताया।

मुझे किसानों के बीच रहने का बहुत समय मिला है। अतः मेरी कविता किसान जीवन के आभाव, संघर्ष और उसमें निहित शक्ति के बारे में लगातार कहती है। मेरी कविता के केंद्र में सर्वहारा है। अतः मैंने उसी वर्ग के अनेक चरित्र रचे हैं।

मैं मानता हूँ किसी कवि से एक ही ढर्रे की कविता लिखने की मांग करना उचित नहीं है। जीवन के सारे रंग रूप वर्ग-संघर्ष और सामाजिक अन्तर्विरोध कविता में आने चाहिए, मुझे सामान्य मनुष्य के साथ प्रकृति से भी प्रेम है। पर यह प्रेम जीवन से पलायन न होकर मनुष्य और प्रकृति के द्वंद्ववात्मक रिश्तों को बताता है। मनुष्य प्रकृति की ही उपज है, पर यह विवेकशील एक ऐसा प्राणी है जो एक ही स्थिति में नहीं रह सकता। अतः वह प्रकृति और अन्य भौतिक स्थितियों को अपने अनुकूल बनाने को सतत संघर्ष करता है। कविता इसे प्रतिबिंबित करती है। इसी प्रक्रिया से मेरी कविता मानवीय मूल्यों का सृजन भी करती चलती है।

मुझे प्रेम और सौन्दर्य बहुत आकर्षित करते हैं। अतः मैंने इन दोनों विषयों को कविता में बराबर व्यक्त किया है। मेरे दो कविता संग्रह, 'चैत की लाल टहनी' और 'आँच में तपा कुदन' दोनों प्रेम कविता-संग्रह है। मेरे 24 कविता संग्रह आ चुके हैं। 1918 में 'काव्य रचनावली' भी आ चुकी है। लेकिन अभी बहुत कुछ अप्रकाशित रहा है। मेरे दो काव्य नाटक हैं, 'अग्नि पुरुष' और 'क्रौंच बध', पांच मेरी डायरी प्रकाशित हैं।

एक आत्मकथा, 'शेष है अभी समर' आ चुकी है। एक पुस्तक 'विषय के लोकधर्मी कवि' पिछले दिनों आई है। अभी मेरे कुछ काव्य संकलन, 'लोकोदय प्रकाशन' लखनऊ से आने वाले हैं।

मेरी यह अवधारणा अब इस आयु में पुख्ता हो चुकी है कि कविता सबसे अधिक कठिन कर्म है। यह आकस्मिक कर्म नहीं है। बल्कि यह कवि से हर सांस और हर क्षण का समर्पण चाहती है। इसी प्रकार कविता की पूर्व शर्त है एक नेक इन्सान पहले होना। बाद में कवि। सबसे पहले कविता कवि को ही रूपांतरित करती है। अगर किसी कारण से ऐसा नहीं हो पा रहा है तो समझो कविता हसमे दूर है।

किसी भी कवि को अपने प्राचीन (Classics) का गहरा ज्ञान बहुत जरूरी है। इससे उसकी कविता में नवीनता और मौलिकता आएगी। वह समृद्ध होगी। इस में गहन अर्थ गौरव होगा। कविता में इन्द्रिय-बोध बहुत ही प्रमुख तत्व है। कुछ लोग तो कविता को इन्द्रियों की भाषा कहते हैं। कवि के पास एक वैज्ञानिक समझ के लिए कोई वैज्ञानिक विचारधारा होना जरूरी है। इस से वह निरी भावुकता और दिशाहीनता से बचेगा। इसी से कविता में गहन चिंतन सृजित होगा। बिना गहन चिंतन के बड़ी और विषय-बन्ध कविता संभव नहीं है। लेकिन कविता में ऐसा न लगे कि कोई विचारधारा ऊपर से थोपी गई है। कविता में विचार भावों की भट्टी में पक कर ही व्यक्त होता है।

कविता में जीवनानुभव जरूरी है। प्रत्यक्ष और

परोक्ष दोनों प्रकार के अनुभव कवि को जरूरी है। कवित का जितना विशाल, विविध, बहु-आयामी अनुभव होगा उसकी कविता उतनी ही समृद्ध होगी, कवि को हर जोखिम उठाने को अपने लिए तैयार करना पड़ता है। विषय में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेंगे जहाँ तानाशाहों ने क्रांतिकारी कवियों को मृत्यु दंड दिया था। उन्हें देश द्रोही कहकर कारावास में डाल दिया गया था। तुर्की के महान क्रान्तिकारी कवि नाजिम हिकमत एक उदाहरण है। अफ्रीकी कवि बेंजामिन मोलायस को भी मृत्यु दंड दिया गया था। तानाशाह और फासिस्ट कविता के बड़े शत्रु होते हैं। अतः कविता एक जोखिम भरा सृजन कर्म है, दूसरे इसे प्रारंभ करना सरल है। पर अंत तक इसका सार्थक निर्वाह हो सके यह कठिन है। मेरा अनुभव कहता है कविता लिखने वाला हर व्यक्ति कवि नहीं होता। कविता तो सैकड़ों लिखते हैं। पर हर समय में गिनती के चार-छः कविता ही रह जाते हैं, यह भी कवि के साथ कवि व्यक्तित्व और कवि की 'बनक' सबसे अलग दिखाई देनी चाहिए। हम कवि होकर तुच्छताओं, प्रलोभनों और स्वार्थ के लिए अवसर तलाशने की जोड़-तोड़ से कितना बच पाते हैं? हम कवि होकर यह प्रमाणित भी करें की कवि कर्म एक साधना है। दुनियादारी निभाने के लिए कोई मनोरंजन कर्म नहीं, जो कविता के साथ अपनी अलग, 'बनक' बनके अनुकरणीय कवि होते हैं इतिहास उन्हीं को याद करता है। शेष सूखी पत्तियों की तरह हवा जाने कहां उड़ा ले जाती है।

मैं

कहाँ आ गया
कहाँ आ गया यहाँ
चूने की चट्टानों में
दोआवा की उर्वर मिट्टी
यहाँ कहाँ
फिर घिरा रहा

मरु की तंबई

स्थल आकृतियों के बीच
शायद मेरे विरोध ने
उन्हें मेरे विरुद्ध किया
मुझे भय लगता रहा
हालांकि यह काल्पनिक था
भूमि जल सतर गिर रहा है

क्या यह भी जीवन की
गिरावट का लक्षण है
क्या में उपेक्षित और वहिष्कृत
होने के लिए ही जन्मा था
हर दिन जीवन मूल्य
गिर रहे हैं
चूने का पत्थर
क्या बता पायेगा
मेरे दर्द की सघनता
भूखे आदमी की आँच
मनुष्य की त्रासदी के अनेक रूप हैं
ओ! उत्तर-पूर्व के मेघालय
चेरापूँजी बैठा तेरी गोंद में
भींगता है पत्थर सफ़ेद
अपनी पहचानी छायाओं के बीच
वसंत में श्वेत सुगंध के साथ
भींगते हैं वन, पर्वत, और मैदान
छितराती बेलें इधर-उधर
मनुष्य ने खोजी हैं
बस्तर की कुटुम्बसर गुफाएँ
विशाखापट्टनम के आस-पास
बुर्रा गुफाएँ बेतरतीब
ओ! हर चीज घटित होने में
कुछ लगता है भिन्न
और बदला-बदला
मेरे प्रिय पाठक
मुझे क्षमा करें
मुझमें सब एक हो जाते हैं
खरपत, गुलाब, चांदनी और कीच
मैं यहीं का वाशिंदा हूँ
लेकिन अपने प्रिय शहर से
विवश विस्थापित
देखता हूँ चित्रोपम स्थालाकृतियाँ गड्ढों दार
पञ्च-मढ़ी के पास दीखता है

पूरा दृश्य...धचका स्थल
नहीं है यहाँ जलवायु एक सी
शैल लक्षण बताते हैं
भीतर का स्थापत्य
मनुष्य की धड़कन से भी रिश्ता है इसका
मेरा उष्ण-कटिबंध
भिन्न है शीत कटिबंध से
भिन्न और अलग
यहाँ के कड़ियल किसान
करते हैं संघर्ष अटल
मेरे क्षुब्ध मन में
होती रहती है
घुलन क्रिया
सतह के नीचे जैसे
घुलन-धील चट्टानें
जिप्सम, चूने का पत्थर
चट्टानी नमक की परतों-पर परतें
चट्टानों के छेद-उनके रोयों में
नरम-नरम
पानी पीते बूंद-बूंद
पत्तियाँ जैसे पीती हैं
किरणों से
ज्योतिरस ।

नदी

नदी मेरी प्रेमिका
उसे नहीं पता कैसे वह जन्मी
पर्वत शृंखलाये उसे करती रहीं बाधित
वह नहीं रुकी
मैदानों में आकार हुई
उसकी मंद गति
वह अपना गीत गुनगुनाती रही
काली चट्टान और उजड़े हुए पर्वत
हर तरफ खरपत के झुण्ड

ओह! कितना मार्मिक है
उसे अब देखना
अंतिम सांसें लेते हुए
नहीं तुम अपना अवसाद त्यागो
मेरी आत्मा की सहोदर
त्यागो निराशा के भीगे वस्त्र
तुम्हारी नियति है
किसी बड़ी नदी में
अपने को मिटा देना
या सहसा रेत में लुप्त हो जाना
लेकिन तुम सदा रहोगी जीवित
मेरे आत्म-शिल्प में अनाहूत
वे नदियां धन्य हैं जो
गले मिलती है सागर के
अपना अस्तित्व समर्पित कर
फिर वह नदी नहीं रहती
कठोरता में जीकर तुम
देती हो अपने को कोई नाम
कितने खनिज घुल कर
तुम्हारे जल में होते निष्कांत
नदिया मेरे देश की
रक्त-वाहिकाएं हैं
किस ने किया है उन्हें गन्दला, अपवित्र
वे मनुष्यता के शत्रु हैं
महा-नगरों की सारी गंदगी
तुम अपने में पचाती हो
अनचाहे भी तुम रहती हो शांत
वर्षा तुम्हें देती उफनने को
नया जीवन
तुम में निहित है
चट्टानों की वनस्पतियों का स्पर्श
अनाम फूलों का मकरंद
अजानी गंध
सूर्य की किरणों का तेज

जिन पर्वतों से
ज्वालामुखी उगलते हैं अगिनी
उसकी लहक तुम में है घुली हुई
ओह! नियति...
कैसी विडम्बना है
जो जीवन देती है असंख्य जन को
वे ही करते है तेरी मृत्यु का
अवलोकन अनाहत और हृदयहीन
मैं कब तक बीनता रहूँगा
धूल से रजत कण
तुझे पुनः जीवित करने को।

लहरें

लहरें हैं जीवन की असंख्य, लहरें
टकराती हैं चित्त-भूमि के तट से
ध्वनियां हैं उनमें विगत की
वर्तमान की
और भविष्य की भी
अनगिनत मर्म आघातों की
लहरें, लहरें, लहरें
ओह! इनको सुनने में
हर चीज छूटती है पीछे
गर्त में गिरते देखता हूँ अपने 'स्व' को
उनका क्षुब्ध गान
विष-बुझे आह्वान
सुनता हूँ रौद्र ताल
रुदन अंधेरी तंग गलियों का
साथ ही अवसाद की कुहासी चीख
तट पर टकराती
चट्टानों पर सर पटक ढहती
हृदय-तटों पर
होती है जाने कितनी टूट-फूट
वर्षा, ताप, हिम की
घनी-भूत बौछारों से

जैसे रचे जाते हों भू-दृश्य नित नवीन
कैसे नाप सकूंगा गहराई समुद्र की
बिना जाने लहरों की जलवायु
उनके रौद्र रौरव के
ओह! कैसी विडंबना है
गहरे-से-गहरा समुद्र भी
नहीं बता पाया
गहराइयाँ चित्त की
विचलित लहरें
उथल-पुथल जल राशि
जल-कणों में वसी हुई वृत्ताकार गतियाँ हृदय की
ओ! मेरे प्यार
ऋतु का पहला खिला फूल
बढ़ता जाता है जल
जीवन को देता चुनौतियाँ आगे-आगे
ओ! बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों वाली बसंतिका
तुझे नहीं पता
उस रंग का
जो होता है मेरे सामने तेरा
प्यार-इसका कोई दूसरा नाम नहीं
खोज पाया आज तक

तुझे बुलाने को
तेरी छुअन को
भूलता हूँ दुःख औरों का भी
तेरी याद से
पर रोटी का कोई और
विकल्प नहीं मिला
भूखे को आज तक
हर चट्टानी प्रहार सहने की ताकत
होती है जीवन की लहरों में
जो टकराती रहती है
बार-बार तटों से।

विषाद-गान

विषाद गान वसंत के पहले का
कोई वाक्य मेरी कविता का
प्रेमोन्मादी गूँजती ध्वनि
नभ में अनायास
कहाँ हो तुम
जीवन की तीखी धार को सहती हुई
खुशी का झोंका कभी-कभी
पंख फड़फड़ा कर
मुझे भिगो जाता है
तुम्हें नहीं है एहसास
उस जीवन का जहाँ प्रेम
एक बासी रोटी का टुकड़ा भर है
ओह! काल
अग्नि की विकराल लपटें मुझे डराती है
उनमें निहित मृत्यु के स्वर
अब मुझे उसका डर नहीं है
वह बहुत शिथिल है
यह यात्रा भी कैसी
जहाँ देखने को खण्डहर-ही खण्डहर हों
दूब का सिहरता एक हरा तिनका भी नहीं
उम्र ने थका दिया
पर वह मेरा क्रिया-उत्साह
नहीं छीन पाई
यह मंद-मंद हवा
मेरे शोक गीत को
और तीखा बनाती है
देखता हूँ आस-पास
पुराने बरगद के जटाधारी वृक्ष हैं
घनी छाया में
कुछ क्षण मुझे सुस्ताने भी दे
पास के तालाब में
काली दरारों की आँखें फटी-फटी

पशुओं के खुरों के सूखे गह्वे
अपना मुंह छिपाने को
बेचैन हैं
पक्षी दिनभर की उड़ान तय कर
बसेरे की तलाश में
वृक्षों की टहनियों में
इधर-उधर फुदकते हैं
जहां भी जाता हूँ
दर्द पीछा नहीं छोड़ता
इतना भी सन्नाटा क्या
जो सिर्फ अपनी ही धड़कने

सुनकर अवाक श्रुति-अनाहूत
पथरीली रात का स्वागत करूं।

पानी के किनारे

पानी के किनारे खड़ा हूँ
अलविदा! अभी नहीं
प्यार के वे मेहराव
अभी अधूरे हैं
जिन से आती है आशा की
रौशनी नई
आदमी अभी दासता से मुक्त नहीं हो पाया
भूख सिर्फ रोटी से ही मिटती है
भूखे मनुष्य का वही स्वर्ग है
उसका अभाव नरक
पौष्टिक भोजन के अभाव में
बच्चे बे मौत मरते हैं
ओह! निराशा तुम लौट जाओ
खण्डहरों के बीच सूखने को
अभी तो मैं पानी के किनारे खड़ा हूँ
बीचियों में देखता हूँ

हिलती परछाइयां अपनी
वे पानी को अपनी ही तरह
रच लेती हैं
जैसे आर्टिस्ट अपने रंग संयोजन को
नाव के एक छोर पर
खड़ा है आदमी
दूसरे छोर पर औरत
खींचती है रस्सी
ओह! अलविदा लौट जाओ
तुम निर्जन उजाड़ वन में
लौट जाओ रिक्त होते चित्त में
लौट जाओ अपनी ज्वलित छवि के साथ
किसी लुप्त होती नदी-तट पर
मल्लाहों के अधनंग बच्चे
कुत्ते के साथ खेलते हैं
वह उनका घर है
पानी उनका मनोरंजन
वे रोटी का इंतजार करते हैं
में जब धुआं उठता है
तब उन्हें उम्मीद होती है चूल्हें
कभी वे काले छेदों में
हो जाते हैं लुप्त
देखता हूँ किनारे पर बने हैं
भव्य भवन-अट्टलकायें
ऊपर खुली हैं खिड़कियां
हवा आने को ताजा
धूप की किरणों के थिरकने को
कितना अच्छा शिल्प है भवनों का
पानी के किनारे छप्पर है फूस के
जिन हाथों ने रचा है
जो भव्य स्थापत्य
वे उसे छोड़ कर चले गए
उनके हाथों के निशान भी
अब नहीं हैं वहाँ।

मो. - 9910562258

सेकेंड सेक्स

सरोज खान 'बातिश'

और फिर ये हुआ कि देखते ही देखते पेड़ के पत्ते झर गये। सरो के बाल कम हो गये या गायब। खूबसूरत चेहरे सूख कर छोहारे की तरह हो गये। चिकने चाकलेटी कपोलों पर झुर्रियाँ छा गई। सामने का वर्तमान इतिहास में तब्दील होता दिख रहा था। कितनी नदियाँ सूख गई थी। कुंए नाले-तालाब सिमट गये थे। कितने हूकूमतें बदल गई थी। एक मामूली से व्यक्ति के हाथ में विश्व की अपार शक्ति आ गई थी। इससे दुनिया की एक खास कौम गर्व व खुशी महसूस कर रही थी।

हां, डॉ. राम शरण गुप्त भी अपनी शैक्षिक सेवा से निवृत्त हो गये। ये सारा संघर्ष जैसे थम सा गया। उनके न जाने कितने साथी-संगी यूँ ही छिटपुट नौकरियाँ करते हुए आयु की सीमा लांघ गये थे। सारे द्वेष, ईर्ष्या, छल-कपट बेमानी हो गये थे। कौन किस प्रकार नौकरी में आया था किसने किससे सिफारिश की थी, पैरवी की थी, वो मंदोदरी भट्टाचार्य का शोध तो उसके गाइड के सहयोग से सप्ताह भर में ही लिखा गया था। सभी जानते हैं कि उसका खूबसूरत जिस्म कई पदधारी पुलिंग में कस चुका था। अब तो वह भी बासी-उबासी हो कर रिटायर्ड हो गई है पर किसको याद रहता है। विगत का वह बदनाम झेंपू पल झुक कर, गिर कर, पसर कर यदि दीर्घकालीन खुशियाँ मिल जाये तो फिर क्या है? थोड़े किसी के माथे पर लिखे होते हैं फिसलन, पसरन, बिखराव...वैसे मंदोदरी जीवन भर रावणों के चंगुल में ही रही।

लेकिन राम शरण गुप्त को अभी तक याद है, सुदिप्त सेन की लंगीमार चाल। उस सरकारी कॉलेज में डॉ. गुप्त की नियुक्ति होते होते रह गई थी। पता नहीं कैसे क्या हुआ कि वे लिस्ट से बाहर हो गये और उनकी जगह सुदिप्त नियुक्त हो गया था। फिर कहीं सार-भर के बाद इस कॉलेज के मार्निंग सेक्शन में, वे बहाल हो पाये थे। थ्रो आउट फर्स्टक्लास फर्स्ट थे। गोल्ड मेडलिस्ट थे। लेकिन इन डिग्रियों पर

कभी दंभ नहीं किया उन्होंने। हां सुदिप्त सेन जब भी कभी सभा-गोष्ठी में मिलता तो नजरें जरूर चुराता।

डॉ. गुप्त अध्यापन काल के समय से ही अपनी सोच और आग से परेशान रहे। स्नातक के कच्चे मन मस्तिष्क वाले विद्यार्थियों पर अपनी भड़ास उतारते उन्हें आंदोलित करते...हिंदी कक्षाओं में रवीन्द्र, नजरूल, गोर्की, कामू, सात्र आदि विश्व विख्यात लेखकों के संदर्भ से अपनी बात की पुष्टि करते। कहानियां लिखते। कभी-कभार समीक्षाएं करते। लेकिन विश्वविद्यालयी लेखक समाज की जोड़-तोड़ वाली नीति न अपनाने के कारण शहर की मुख्य धारा के लेखकों में कभी शामिल नहीं किये गये। वे बहुत कुछ कहना चाहते थे। बहुत कुछ लिखना चाहते थे। लेकिन बौद्धिक राजनीति ने उन्हें हाशिए पर रखा। उनका कोई मंच नहीं था न कोई खेमा। न शिष्यमंडली...अब अवकाश के बाद समय के आवारा क्षणों को बांधने की चेष्ट कर रहे थे वक्त का बदलाव-संबंधों का बिखराव। विश्व में हो रही उथल-पुथल...अमरीका में ओबामा का जोश। बाजारीकरण... मारकाट... ग्लोबलाइजेशन... हर पल डॉ. राम शरण गुप्त को तोड़ रहा था... कहीं किसी सभा गोष्ठी में यदि बोलने का अवसर मिलता तो घण्टों इन विषयों पर बोल जाते...कई-कई मुद्दों को तो ऐसे-ऐसे बिंदुओं से प्रस्तुत करते कि श्रोता आवाक रह जाते। उन्हें अब समझ आ रहा था कि जो काम उन्होंने विगत पच्चीस-तीस वर्षों में नहीं किया वह वे अब कर रहे हैं। शाही इमामबाड़ा में आयोजित नवाब वाजिद अली शाह मेमोरियल व्याख्यानमाल के तहत उन्होंने अपनी बात रखते हुए सब को चौंका दिया। उन्होंने ऐसे समय में उस संवेदनशील मुद्दे को उठाकर घोर हिन्दू पंथियों को झकझोर दिया था। तनाव का माहौल था, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के रिश्ते खराब हो रहे थे। पर उन्होंने इसकी चिंता नहीं की 'मित्रों हमें याद रखना चाहिए कि देश की प्रकृति बड़ी समन्वयवादी है। इसका ढाँचा ही विविधतापूर्ण है और जो इससे छेड़-छाड़

करता है। इतिहास उसकी मिट्टी पलीद कर देता है। जवाहर लाल नेहरू ने 'सारे जहां से अच्छा' के रचयिता डॉ. इकबाल की मृत्यु पर कहा था कि जमाना याद करेगा कि कोई जवाहर भी इकबाल के समय में हुआ करता था। ये युग चेता पुरुष समय के धरोहर हैं और अपने होने मात्र से ही युग की पहचान कराते हैं...और आज हम शत्रुता मोले बैठे हैं। जहर बो रहे हैं। इस गुलाब के बगीचे में कांटे शेष रह गये हैं। राम शरण महसूस कर रहे थे कि वे जितना जागृत हो रहे हैं उनकी पीड़ा...दुःख और बढ़ता जा रहा है। अखबारों की सुर्खिया उन्हें परेशान करती हैं...घर समाज के लोगों से वे दुःखी रहते हैं...अपनी संतानों की सोच से वे कुण्ठित थे। वे कहते कि नीत्से दिन में लालटेन लेकर दौड़ता था और कहता था कि अँधेरा छाया हुआ है। लोग उस पर हंसते थे। लेकिन नहीं, वह कितना सच था। कितनी चिंता थी, उसे दुनिया की और आज तो अंधेरा ही अंधेरा चारों ओर छाया हुआ है...“अखबार देखिये। टी. वी. देखिये सब जगह झूठा आकर्षण छाया हुआ है। ..लोभ का बाजार है। नग्नता का जादू है। कपड़े उतारती संस्कृति है। सूट-बूट पहने पुरुष के बीच दो-दो इंच के लत्तों में स्त्री बाजार में खड़ी है। दुनिया में इससे अधिक और क्या स्त्रियों का दोहन होगा। यह तो अति हो गई है। पुरुष कपड़े में है और औरत नंगी। कबीर की पगलाहट यही थी। अब तो लगता है कि मैं भी पगला जाऊंगा...।”

उस रोज स्त्री विमर्श के परिसंवाद संगोष्ठी में डॉ. गुप्त अंतिम पंक्ति में बैठे थे। वे बस एक श्रोता के रूप में बुलाये गये थे। मंच पर पिछलगू-चापलूस किस्म के तथाकथित विद्वान बैठे थे। सुदिप्त भी विराजमान था। महामहिम राज्यपाल की पत्नी श्री गोष्ठी की अध्यक्षता कर रही थी। कई प्रकार से स्त्रियों के हित में विचार रखे जा रहे थे। शहरों-नगरों-गांवों में स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार को बुद्धिजीवी उजागर कर अपनी-अपनी संवेदना व्यक्त कर रहे थे। किसी ने कहा कि आज

स्त्रियां बाजार में सबसे महत्वपूर्ण उपक्रम हैं। इस प्रकार के बाजारी-करण से हमारा समाज बिखर रहा है... इस पर अंकुश लगाना आज की सबसे बड़ी प्राथमिकता है... संचालक महोदय पास बैठी स्त्री से कुछ रसात्मक संवाद करते हुए जैसे जी उठे थे। उन्होंने माइक पर कोई भोंड़ा सा शेर सुना कर दूसरे वक्ता को बोलने का निमंत्रण दिया। वह कोई नारीवादी फेमिनिस्ट बुजुर्ग थे। उनके स्वागत में हाल तालियों से गूंज उठा। महोदय मझे हुए वक्ता थे। बड़े रंगीले अंदाज में अपनी बात कहने वाले फेमिनिस्ट बुजुर्ग ने कई चुभते हुए मुद्दे उठाये। राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर आसीन महिला के युग में आम महिलाओं के जीवन की दुर्दशा पर खेद व्यक्त किया। फिर एक यारी-दोस्ती, लिव-टूगेदर-‘नो मैरेज, नो रिलीजीयन, हमोसेक्सुअल फ्रीडम, नो फैमिली, नो चाइल्ड म्यूजिम’ आदि स्लोगन में विश्वास रखने वाली चाकलेटी आकर्षण की महिला आई, उन्होंने पतिदेव, पतिव्रता आदि भारतीय संबोधनों पर उपहास करते हुए कहा कि सदियों से स्त्रियां जैसे पुरुषों की गुलामी से अब आजाद होना चाहती हैं। हद तो तब हो गई जब उन्होंने औरत के द्वारा गर्भ धारण को प्रकृति की साजिश और पुरुषवादी समाज का अत्याचार कह दिया। उनके वक्तव्य का आशय यह था कि केवल स्त्रियां ही क्यों गर्भ धारण करें...यह उनके साथ अन्याय है...

मंच पर बैठी कुछ विभूतियों ने करताल किया तो हॉल कीर्तनियां भाव में झूम उठा।

मगर पीछे बैठे डॉ. राम शरण गुप्त के होंठ फड़फड़ा उठे। उनकी आग धधक उठी। वे बेचैन हो उठे। आजू-बाजू देखने लगे कि किस प्रकार मंच तक पहुंचा जाये। तभी उस बेचैनी को महसूस कर नाटककर्मी उमापति जो उनका शिष्य भी था, ने खड़े हो कर डॉ. गुप्त को माइक पर बुलाने का आग्रह किया... गंभीर बने गद्देदार कुर्सीया पर बैठे महानुभाव कुछ क्षण के लिए अचकचाए पर सभा में डॉ. गुप्त के आगमन की

मुहर गूंजने लगी। फिर क्या था। डॉ. राम शरण गुप्त देखते ही देखते माइक पर थे—उन्होंने मंच पर बैठे विद्वानों पर एक ओछी सी नजर डाली और अपने विषय पर आ गये—‘सज्जनों यह बड़ा दुखद समय है और इस दुखद समय में यह दुखांत विषय। यह मुद्दा आज का ही नहीं, कल का भी रहा है। जरा हम साहिर को याद करें जला दो, जला दो। मिटा दो यह दुनिया या जिन्हें हिंद पर नाज है वे कहाँ है?...‘औरत ने जनम दिया मरदों को, मर्दों ने उसे बाजार दिया’...

भाइयों आप कहाँ है? किस महापाप के भागीदार बन रहे हैं? औरत के सतीत्व पर कोई बात ही नहीं करना चाह रहा है, धर्म ने औरत को सबसे अधिक कष्ट दिया है। युद्ध में जीते हुए अन्य वस्तुओं की भांति औरत भी ‘माले गनीमत’ हुआ करती थी। द्रौपदी का दुःख जैसे आज भी हमारे माथे पर कलंक सा टंगा है। बहुपति विवाह के संदर्भ में युधिष्ठिर ने तर्क दिया कि यह कोई नई बात नहीं है जो वे कर रहे हैं—जटिला ब्रह्मणी सातऋषियों से अकेली ब्याही गई थी। वारक्षी दस प्रचेता भाइयों की पत्नी थी।

...मां ने कहा बाट लो, और वे भोगी अबोध एक अबला को बाट लिए। यह ऐसी मूखर्तापूर्ण कहानी है कि आज केवल क्रोध ही नहीं आता है। समस्त आख्यानों-अध्यायों को जला देने का मन करता है। भरी सभा के समक्ष जुए में हारी हुई पाँच पतियों की पत्नी पांचाली अर्ध नग्न कर दी जाती है, यह सिलसिला आज भी जारी है। महाभारत अभी समाप्त नहीं हुआ है। औरतें आज दूसरे रूप में नंगी हो रही हैं। हर नारी में एक द्रौपदी का चीत्कार छिपा है। यह दूसरी बात है कि औरत हमारे देश की प्रधानमंत्री बन गई राष्ट्रपति बन गई। हमें इस का गर्व तो है पर अमरीका जैसे तथाकथित आधुनिक प्रगतिशील राष्ट्र में तो आज तक कोई महिला सर्वोच्च पद पर नहीं हुई। फिर भी वह हमारा आदर्श है, हमारे पिछड़े पन पर हमें लताड़ता है, आश्चर्य है...! किसी ने यह आरोप लगाया कि औरत

ही क्यों गर्भ धारण करे? यह औरत के साथ अत्याचार है... यह विद्रोह समय से नहीं, प्रकृति से है, कि क्यों-चाँदनी में शीतलता है, सूर्य में क्यों उष्णिमा है...स्त्री के प्रति पुरुष का आकर्षण प्रकृति का नियम है। यह पितृसत्तात्मक समाज ने नारी को अपना सहयात्री नहीं, भोग सामग्री ही समझा और आज भी भरे-पूरे कपड़ों वाले पुरुष के बीच वह दो दंज के चिथड़े में सीना तान कर गर्व से खड़ी होती है। इस पर पुरुष शर्माता नहीं और ना ही उसे ढकने के लिए आंदोलित होता है। स्त्री का यह चीरहरण नहीं तो क्या है...?

मित्रों औरत के ममत्व को प्रयोगवादी कवि की इन चार पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त कर अपनी बात समाप्त करता हूँ—

“ईश्वर एक बार का कल्पित
सारा जीवन आक्रांता है
मां एक बार की जननी
जीवन भर ममता मयी है।”

डॉ. राम शरण गुप्त के इस वक्तव्य से गजब हो गया। सारा परिवृश्य ही बदल गया। मंच पर बैठे छद्म बुद्धिजीवी गिर भहरा गये। शाम के चार बज रहे थे। शनि महाराज का वार था। महानगर आधा-आधा हो गया था। महामहिम की भार्या श्री बहुत कुछ कहने के लिए उत्साहित थी। अतः सभा समापन की ओर कर दी गई। माइक पर उदीप्त तेजस्वमुखी महोदया श्रीमती राज्यपाल सभा से सम्मुख हुई। सभा के स्वयं शासित वातावरण में अचानक आई नीरवता में श्रीमती राज्यपाल की आवाज का गाम्भीर्य गूंजा—“बधाई हो आदरणीय डॉ. गुप्त जी। आपने तो मुझे स्तंभित कर दिया। आज यह नारी विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण दिन है। आप ने थोड़े शब्दों में पूरी दुनिया में हो रहे बिखराव को समेटने की चेष्टा की है। विगत की सारी धारणाएं ही आपने बदल दी। मैं तो स्वयं नारी के इस खुले प्रदर्शन से व्यथित हूँ। मैं तो स्वागत स्वरूप भारतीय महिलाओं द्वारा पुरुषों को फूल मालाएं अर्पित करने, पहनाने की

घोर विरोधी हूँ। पर क्या करूँ हमारी भी सीमा है! आप की तरह स्वतंत्र नहीं हूँ... आश्चर्य है कि नारी विमर्श के इस परिसंवाद सभा में औरतें कम, पुरुष अधिक हैं.. मैं चाहती हूँ कि यह पुष्प गुच्छ डॉ. राम शरण गुप्त जी को उपहार स्वरूप दूं, न जाने क्यों ऐसे विद्वान इस मंच पर आज नहीं थे...

और महोदया सामने रखे बड़े से बुके डॉ. गुप्त को देते हुए हाल से बाहर हो गई। उनके पीछे गार्ड्स, सेक्यूरिटी और सरकारी अमला निकल आया। एक हलचल के साथ पूरा हाल कुछ देर बाद सन्नाटे में डूब गया।

जीवन के इस उत्तर काल में डॉ. गुप्त को यह सम्मान उन्हें अतिरंजित कर रहा था। कई-कई तरह से उनके अंदर विचारों का मंथन चलने लगा। यह सम्मान दरअसल केवल उनका ही नहीं था। उन सारे आहत उपेक्षित विद्वानों का था। जिन्हें आज का यह मौकापरस्त शिक्षाविद समाज ने हाशिए पर डाल दिया था। कंधे पर बद्धमान विश्वविद्यालय के वार्षिक सम्मेलन का झोला था। झोले में कुछेक पत्रिकाएं थे। एक डायरी और आज का वह कीमती पुष्प गुच्छ... मन में उल्लास था। हौसले में बुलंदी... टहलते-टहलते वे तारा मंडल के करीब आ गये। सोचा कि आज आर्ट्स गैलरी में चित्र पेंटिंग्स देखी जाए... नंदन के रंग में जरा डूबा जाये, वहाँ उनके कई मित्र, शिष्य प्रायः आते हैं, अड्डा लगाते हैं। आखिर यह भी तो जीवन का हिस्सा है। जिम्मेदारियां तो जिंदगी भर निभाई। बच्चे हिंदी माध्यम स्कूल में ही पढ़कर ऊंची-ऊंची जगहों पर पहुंच गये थे और अपनी-अपनी जिंदगी में खुश थे। अब उनके हिस्से में पेंशन थी, उनके विचार थे। दिल में न बुझने वाली आग थी। दुनिया को बदलने का सपना था। घर पर विचारहीन सीधी-साधी गंवई पत्नी थी।

...झोले से फूलों का गुलदस्ता झांक रहा था। युग अपनी रंगीनियों में डूम रहा था। युवा प्रेम में डूबे अपने पार्टनर्स के साथ दुनिया से बेखबर सीटिजन पार्क की

ओर बढ़ रहे थे... वहाँ इस समय कितना गुलजार रहता है। मानों सरकार ने युवकों के लिए अय्याशी का अड्डा बना दिया है। लगता है महानगर की पूरी पीढ़ी यौन ग्रंथी से पीड़ित है अकादमी ऑफ फाइन आर्ट्स आ गया था। बड़ी चहल-पहल थी। बहुत कुछ बदला-बदला सा लग रहा था। बहुत दिनों बाद वे इधर आये थे। वह बड़ा सा पेड़ गिर गया था। सामने सड़क से सटा मुक्त स्वच्छंद मंच बन गया था जिस पर बैठे कुछ बंगाली लवर्स सटे बतिया रहे थे। इधर काउंटर के पास नाटकों के पोस्टर बैनर लगे थे। डॉ. राम शरण गुप्त एक हिंदी नाटक के पोस्टर को पढ़ने लगे नजर उठाई तो एक सुलझी हुई शिक्षित सी दिखने वाली महिला मुस्कराते हुए संबोधित हुई-कैसे हैं? अरे! दिनों बाद! मजे में हैं तो...? डॉ. गुप्त अचकचाकर आजू-बाजू देखने लगे.. . पर वह उसी मुद्रा में मुस्कराते हुए उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ी रही। डॉ. गुप्त संभलते, थोड़ा हिचकिचाते और संकोच करते हुए बोले—“हां-हां ठीक हूँ। लेकिन आप कौन...?” वह अति सहज होते हुए। एक निकट सहकर्मी, साथी, मित्र-याद-दोस्त की भांति बोली—“मैं तो कभी-कभी ही इधर आती हूँ। आपको अकेला देखते हुए सोची कि कुछ पल बात कर थोड़ी शाम रंगीन की जाए। क्या आप को अच्छा नहीं लगता कि रोज की जिंदगी से कुछ इतर स्वच्छंद गुप-चुप जीया जाये...आइए न इधर बैठा जाए... महिला मित्र से बात कर इस उम्र में मन कुछ हल्का हो जाता है। उफ! घर-परिवार में कितना तनाव रहता है?

डॉ. गुप्त सब कुछ समझ गये थे। सुने थे इस प्रकार की स्वतंत्र यौन कर्मियों के विषय में, पर आज उनका गंवारु मन-शरीर खुद गिरफ्त में था। उर्दू के मित्र प्रोफेसर काज़मी द्वारा सुनाया गया डॉ. इकबाल का यह शेर मन में गूँजने लगा—

‘लाजिम है दिल के पास रहे पासवाने अक्ल-लेकिन कभी-कभी इसे तंहा भी छोड़ दे’

वे नारी विमर्श के परिसंवाद सभा से निकल कर

शायद वास्तविक रूप से नारी विमर्श के रूबरू थे। बोले-‘तो क्या करना होगा...? चलिए आज इसका भी अनुभव किया जाए’...इसी बहाने इस बिखरे अछूते संदर्भ से भी परिचित होना चाहते थे। वे पीजी से तारा मंडल तक फैले उस उद्यान-सीटिजन पार्क के जवान वातावरण की ओर चल पड़े थे। उस अभ्यस्त, मझी, भरी-पूरी सी दिखने वाली महिला को डॉ. गुप्त ने काँखियों से देखते हुए पूछा-‘क्या नाम है आपका?’

उसने उसी रौब में उलटते हुए पूछा-‘आप का नाम...?’

डॉ. गुप्त चित्त हो गये। उन्होंने तीस वर्षों तक वयस्क लड़के-लड़कियों को पढ़ाया था। पर ऐसी ठीठ महिला से सामना नहीं हुआ था। कुछ पल के लिए मन ने धिक्कारा कि-‘यह किस गुफा में जा रहे हो राम! क्या देह की माया, केलि-क्रिड़ा, रीतिवास, सहवास तुम्हारे लिए कोई कौतुहल का विषय है? नहीं-नहीं... तो फिर शरीर में यह झुरझुरी सी क्यों हो रही है। मनुष्य को शायद यह एक आदिम वृत्ति है। और बुद्धिजीवी तो उम्र के आखिरी पड़ाव तक इस क्षुद्रता के फेरे में पड़े रहते हैं। रवीन्द्र, गालिब, सात्र, देव, कामू सब इस फेरे में गिरे पड़े रहे...!

उन्होंने अपना नाम सलीम बता दिया, साथ ही साथ थोड़ा लड़खड़ाते हुए उसने भी अपना नाम बताया-‘सलमा’। पर वे दोनों समझ रहे थे कि वे एक दूसरे से झूठ बोल रहे हैं। यही नहीं, पते भी झूठे ही बताये गये...

शाम के उस धुंधलके में बड़ी रंगीनी थी। उदण्ड लहरें आ-जा रही थी। जहां तक नजर जा रही थी। जोड़े चिपके-सटे गुथे हुए बैठे थे। कुछ अंधेरों और झुरमुटों में परछाई की भांति प्रेत छाया सी दिख रहे थे। कुछ थके मांदे अपने घर-परिवार से दूर देहाती लोग, उस विषयी-विलासी दृश्यों को देख कर उत्तेजित हो, आत्मरति-मुक्तरति हो रहे थे...

वह भी चाह रही थी कि वे उस ओर अंधेरे में जा

बैठकर अपने काम यानी मौखिक यौन क्रियाओं से झट मुक्त हो जाए। पर डॉ. गुप्त ने कोई उत्सुकता नहीं दिखलाई। अब उन्हें अपने पॉकेट, मोबाइल और पर्स को सहेज कर रखने की चिंता होने लगी थी। उन्हें लगने लगा था कि वे एक दलदल में फंसते जा रहे हैं। अब डॉ. गुप्त उसकी गिरफ्त से निकल भागना चाह रहे थे। लेकिन मुफ्त में मुक्ति संभव नहीं थी। उन्होंने शिष्टवत् स्पष्ट करना चाहा कि वह आखिर उन से कितने पैसे की अपेक्षा कर रही है। उसने भी उसी आदर स्वभाव में प्रेमपूर्वक बताया कि कोई मित्र समझ कर जितना दे देता है वह रख लेती है। डॉ. गुप्त को अब बड़ा अजीब लग रहा था। उन्हें महसूस हो रहा था कि महिला का पूरा वजूद ही झूठ पर टिका है। उसने अपना दमदम का पता भी गलत बताया है। उन्होंने उस नीम अंधेरे में उस चलायामान वारांगना को आपादमस्तक देखा। पैरों में मजबूत किस्म का चप्पल, हल्के गुलाबी रंग का सूट कंधे से लटका बैग, आंखें पर अपर्णा सेन की भांति रूमानी चश्मा, बड़ा भव्य रूप था उसका। यूँ सहज रूप से बात करने में कोई भी घबरा सकता था उससे। वर्षों पहले पढ़ी शंकर की 'चौरंगी' की याद हो आई। ऐसे तो आते जाते रास्ते और रोड किनारे यौन कर्मियों को बहुतेरे देखे थे। कालीघाट की पवित्र सरणी से गुजरते वक्त पुल के रेलिंग पर बैठी उन्मुक्त सस्ती रेट यौन कर्मियों को बसों से आते-जाते प्रायः देखते ही थे। नीचे हुगली के नाले का गंदा बदबूदार पानी और ऊपर गंदगी को थोड़े कपड़ों में ढकी खड़ी जैसे मां का प्रसाद वे चंडालिकाएं, नगर बधुएं। ऐसे दृश्यों से शहर की आबादी एक प्रकार से आदी हो गई है। शायद कहीं किसी को असहज नहीं लगता...ये टी. वी. चैनलों की नंगई तो बहुत बाद में आई है।

डॉ. गुप्त ने फिर कुछ जिज्ञासा व्यक्त की-‘क्या पैसे के बिना तुम्हारा प्यार संभव नहीं, और फिर सेक्स के नाम पर तुम क्या-क्या करती हो...?’

अब शायद उसे भी समझ में आ ही गया था कि इस खूसट, नीरस को व्यर्थ ही उसने जाल में फांसा है, यह तो एक दम घोंघा-केकड़ा निकला और घाघ भी, उसने इस बार रुखाई से जवाब दिया—‘अई री! बाबा पैसा के बिना क्या कुछ भी संभव हुआ है...घरनी भी तो साथ नहीं देती...और मैं तो पढ़ी-लिखी हूँ। गिन चुनकर ही दोस्ती के लिए हाथ बढ़ाती हूँ। मैं समझी की आपको मेरे जैसे सेकेण्ड सेक्स की अवश्य ही जरूरत होगी। प्रायः आप जैसे लोग एक अलग पार्टनर ढूँढ़ते हैं। ऐसे डाक्टर, वकील, नेता, कॉलेज-यूनिवर्सिटी के कई मित्र हैं जो सप्ताह-महीना में मुझे फोन कर बुला लेते हैं...हल्का-फुल्का ऐश-मौज करते हैं। टीप-टाप कर उठते समय पर्स में बिना मांगे नोटों के बंडल डाल देते हैं। फिर उनका भी मान-सम्मान बना रहता है और मेरा भी घर संसार चल जाता है। डाक्टरों का तो सेक्स ही नहीं होता है। शरीर का हर अंग उनके लिए रोगग्रस्त लगता है। चूँकि आज खाली थी सो इधर आ गई। वैसे मैं रोज थोड़े ही यहाँ आती हूँ। अब तो यह भी जगह कचड़ा हो गया है। सस्ती मांगी लोगों ने रेट गिरा दिया है। वे जिस-तिस को पाँच-दस रुपये में जहाँ तहाँ लेकर बैठ जाती हैं। इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि उसे सेकेण्ड सेक्स की कभी जरूरत नहीं पड़ी। कभी -न-कभी जरूर जरूरत पड़ी है...अच्छा तो अब मेरा भी समय बर्बाद हो रहा है। मुझे छोड़ दीजिए, मुझे कम से कम इंगेजमेंट फीस पचास रुपये तो दीजिए...अभी चार घण्टे बाकी हैं। दूसरे क्लाइंट को पकड़ना होगा। नहीं तो आज का समय व्यर्थ हो जायेगा। फ्लैट का मेंटेनेंस कल देना है। अखबार वाले को देना है। इलेक्ट्रिक बिल जमा करना है। टेलीफोन का बिल जमा करना है। मोबाइल रिचार्ज करवाना है। क्या एक निर्बल बेसहारा औरत के लिए आप कुछ नहीं कर सकते। अरे! मित्र सखा समझ कर ही कुछ दे दीजिए...।’

डॉ. गुप्त को उस तृषा से घृणा सी हो गई। पहले-पहल मन में हुई गुदगुदी, सिहरन न जाने कहां

गुम हो गई। इस प्रकार के यौनाचार से होने वाले रोगों और अपराधों का उन्हें भान हो आया। वे कुछ अधिक सर्तक-दृढ़ हो कर खड़े हो गये और पाकेट से कुछ चेंज निकाल कर उसकी हथेली पर रख दिये। उस पर चतुर सयान कुलटा ने उस नीम अंधेरे में उन सिक्कों को गिनते हुए बुरा सा मुंह बना कर हां- ये तो कुल मिलाकर मात्र पंद्रह रुपये ही हैं। दो-पाँच के और एक-एक के पाँच छी! ऐसा मित्र आज तक मैंने कभी नहीं देखा, अब उसके व्यवहार में दिखावटी निकटता, अपनत्व नहीं था, वह जल्द से जल्द निकल जाना चाह रही थी, चलते-चलते गुप्त ने फिर एक सवाल किया-‘तो, तुम कब से यह धंधा कर रही हो...?’

वह कुछ चौंक कर खीझते हुए बोली-‘क्या धंधा! नहीं-नहीं, सारी मैं कोई धंधा नहीं करती। मैं तो उदास-थके हारे घर गृहस्थी से दुःखी आहत लोगों को खुश करती हूँ... कोई कहानी लिखता है, कविता लिखता है, गाना-बजना करता है, यू कैन से आई एम एन इन्टरटेनर, हमें बुरी नजर से नहीं देखना चाहिए। फिल्म की औरतों से भी अधिक बुरी हूँ क्या...? आज कल तो टी.वी. अखबार में हम जैसे इन्टरटेनर्स के विज्ञापन आते हैं। मोबाइल पर मैसेज आता है। ‘मीट न न्यू फ्रेंड एण्ड बी हैप्पी...’, हम उदास लोगों को खुशी बांटते हैं। मुर्दा लोगों को जिंदगी देते हैं...।’

वह क्षणिक प्रेयसी जा चुकी थी। डॉ. गुप्त बुद्ध बने देर तक इधर-उधर उस बाजार में खड़े रहे। सामने कला केन्द्र परिसर का विराट परिसर पसरा था। यौन कर्मी चूजे चहक रहे थे। विश्व कवि रवीन्द्र की श्यामल मूर्ति जैसे भालो वाशा, आमार आशा का पाठ कर रही हो...!

उन्होंने कलाई पर नजर दौड़ा कर देखा तो अभी सात नहीं बजे थे। वे अकादमी परिसर की ओर बढ़ गये। सोचा आज एक नाटक ही देखा जाए। मन तो व्यथित हो गया था। नारी विमर्श की सारी परिकल्पनाएं जैसे व्यर्थ हो रही थीं। उन्हें लगा रहा था कि वे औरत

के साथ छल करके आ रहे हैं-‘क्या था? उसे उसका मूल्य देना चाहिए था। उसने एक नया अनुभव तो दिया। यह नाटक देखना क्या समय और पैसा खोना नहीं है। रस-रोमांस तो अब कला का हर मंच परोसने में लगा है...बेचारी...! पता नहीं और कोई पार्टी उसे मिली होगी की नहीं...’

डॉ. गुप्त के मन में इस तरह के कई द्वंद्व चल रहे थे। आज की सभा का गौरव सम्मान, स्त्री विमर्श न जाने कहां छूट गया था, मन बहुत खिन्न हो गया था।

वे आर्ट गैलरी की ओर आ गये। बगल में कंधे से लटकता झोला और उसमें कई फूलों का झांकना गुलदस्ता अब अच्छा नहीं लग रहा था। उन्हें लगता जैसे बौद्धिकता रूपी मुझाये फूल कंधे पर लिए घूम रहे हैं।

डॉ. राम शरण गुप्त कला की श्रेणियों से परिचित थे। वे हुसैन को बड़ा कलाकार तो मानते थे तथा उनके घोड़ों की प्रशंसा करते थे। मगर मंजित बावे की पेंटिंग के मुरीद थे। उनका मानना था कि बावे के पास भारतीय मानस की अथाह ऊचाइयां हैं। मिथकीय फलक बहुत विराट है। उनके चित्र ग्रामीण और प्रकृति मोहक होते हैं और जमीन व हरियाली से जोड़ते हैं। इसी कारण बावे के रंगों की अपनी एक अलग पहचान हैं।

...वे एक बड़े से पेंटिंग के पास खड़े हैं। उसके रंगों और उस में व्यक्त भावों को पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। लेकिन उन्हें लग रहा है कि जोगेन चौधरी के इन चित्रों में कुछ अधिक ही विषयी संदर्भ में बेहूदे ढंग से आये हैं। जोगन इसी प्रकार योनि, लिंग, कटिप्रदेश पेंट करते हैं, अब इसमें इतनी वीभत्स ढंग से सेक्स को प्रदर्शित करने की क्या आवश्यकता थी? कला तो संकेतों के माध्यम से अपनी गूढ़ता व्यक्त करती है। यहाँ जो योनि के माध्यम से प्रकृति के सृजन संसार को प्रदर्शित क्या गया है कि उसका युवा वर्ग पर गलत प्रभाव पड़ेगा, वे मूर्त रूप को ही देख-देख रोमांचित कामोत्तेजित होंगे...

कई ऐसी तस्वीरें थीं जिसमें औरत की बहुअयामी मुद्रा चित्रित की गई थी। एक चित्र में भरी मांग औरत बस यूं ही उदास खड़ी थी। लगा जैसे पार्क की औरत यहाँ कैद कर दी गई है। बलात उसे घर गृहस्थी से बांध दिया गया है। वह भौंचक हो उस औरत को आस-पास देखने लगते हैं। दीर्घा में अलग-अलग चित्रों पर दृष्टि जमाये बारीक, गझिन लोग गूढ़ार्थ ढूँढ रहे थे। अन्य चित्रों को सरसरी तौर पर निहारते हुए वे बाहर निकल आये।

चिंतक अरविंदों घोष की भांति दिखने वाला वाउल बाहर गा रहा था। लड़कों के झुण्ड में एक मोटी सी लड़की बेझिझक फव्वारे के पास सिगरेट पी रही थी। डॉ. गुप्त के लिए नारी विमर्श का यह कोई नमूना नहीं था। उनके ही कालेज की इंगलिश अध्यापिका स्टाफ कैबिन में बेटोक सिगरेट पीती थी... पर डॉ. गुप्त को आज यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। शायद उनके अंदर का गांव, संस्कारों का जंगल अभी समाप्त नहीं हुआ था। कुछ लोग इसको पीछड़ापन भी कहते थे। वर्षों कालेज में पढ़ाए, विश्वविद्यालय में भी कुछ दिन पार्ट टाइम रहें, सिगरेट नहीं पी-शराब छुए नहीं, सेकेंड सेक्स के विषय में कभी सोचे नहीं...ऐसा भी भला कोई बौद्धिक होता है? फिर सेकेण्ड सेक्स के मारे चाँद मुहम्मद और फिज़ा को दुनिया कोसती है तो कोसे, सिमोन बोउवार ने तो इस सेकेण्ड सेक्स पर एक मोटी पुस्तक ही लिख डाली है...और अपने हिंदी पट्टी में मटुक नाथों की कमी है क्या? और 'अन्या से अनन्या' की आलोचना, समीक्षा, परिचर्चा से हिंदी बाजार गरमाया हुआ है। लेकिन डॉ. गुप्त की सोच इन सबसे अलग है।

उन्होंने एक बार सीटिजन पार्क की ओर नज़र उठाकर देखा, वहाँ चहल-पहल कुछ और बढ़ गई थी। रंगीन फव्वारे के पास युवक जोड़े बैठे म्यूजिक फूलों की तालों की मजा ले रहे थे। विक्टोरिया का गुम्बद हेलोजिन रौशनी में दूर से ही महानगर के माथे सा

चमक रहा था। उस के ऊपर बिगुल फूंकती 17 फीट मिथकीय काली परी, कौवे की तरह दिख रही थी। रवीन्द्र सदन में शायद कोई सर्व-भाषी कवि सम्मेलन था। बड़ा रेला-पेला था, पर अब डॉ. गुप्त दिन भर के इस बौद्धिक आवारगी से ऊब गए थे और घर जाना चाह रहे थे।

बसों में बड़ी भीड़ है, पता नहीं कहां से इतने लोग आते हैं? ये सारे लोग क्या करते हैं। कहां रहते हैं? दिन भर उत्सव के शहर का चेहरा अब थका-थका सा लग रहा था।

डॉ. गुप्त ने झोले से झांकते पारदर्शी पन्नियों में लिपटे गुलदस्ते को एक बार हसरत से देखा। जिस प्रकार कोई खिलाड़ी जीते हुए ट्राफी को देखना है... फिर बेहाला की उनकी बस आ गई। भीड़ कम थी, फिर भी खड़े होने में दिक्कत थी। बदन से बदन रगड़ रहे थे।

इस प्रकार की भीड़ में अजनबीयत का और एहसास हो जाता है। लेकिन ऐसी ही भीड़ भरे अजनबीयत में गुप्त को तरह-तरह की बातें सूझती हैं। वे चिंता मग्न थे कि उनके मानस पटल पर डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र के 'अराजक उल्लास' का लालित्य, बिम्ब, छन्द, व्यंग्य भाषा शैली उसकी शास्त्रीयता कौंध गई। डॉ. मिश्र की विनम्रता, वैदुष्य एवं वाक्य पटुता पता नहीं क्यों आकर्षित करने लगी। डॉ. गुप्त की दृष्टि में मिश्र जी इस महानगर में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपजीव लगते हैं। उनके भी आचार-व्यवहार व संस्कार का देहाती जंगल आज तक हरा भरा है। उनके तो दर्शन मात्र से भारतीय संस्कृति मुखर हो उठती है। दुनिया ने तकनीकीय कितनी उन्नति की। मोबाइल की कितनी मॉडल बाजार में आ गई। सुनते हैं 'ओबामा और 'ब्लैक बेरी' एक दूसरे के पूरक हैं। कंप्यूटर से लिखा जाने लगा है। बैठे-बैठे ही प्रकाशनार्थ सामग्री मिन्टों में भेज दी जा रही है। कलम और डाक का काम खत्म होता जा रहा है...तो हो, मिश्र जी अपने उल्लास

में रहते हैं...अब भी हस्त लिखित लंबे-लंबे आलेख पत्र-पत्रिकाओं को भेजते हैं। वे कहते हैं कि जिस दिन ये हाथ-डाक के माध्यम खत्म हो जाएंगे उस दिन लिखना पढ़ना छोड़ देंगे...‘फिर डॉ. गुप्त दमदम और बेहाला की विपरीत दिशा के विषय में सोचने लगे। दमदम उत्तर दिशा में है, तो बेहाल दक्षिण में...कितनी दूरी होगी इस उत्तर से दक्षिण की... कभी ये प्रापर शहर में नहीं आते थे। पर आज सब नगर में शामिल हो गया है...ग्रेटर, मेघा सिटी का फैलाव बढ़ रहा है। गांव की हरियाली खत्म होती जा रही है...

बस कुछ दूर ही गई होगी कि अंदर एक तरह से शोर हुआ कोई महिला थी जो किसी पुरुष को ठीक

से खड़े रहने के लिए कह रही थी। अच्छी भली महिलाओं के पीछे लोग पड़ जाते हैं, यह भी कोई बात हुई। औरत का खड़ा होना मुश्किल है। भीड़ में ऐसी बेहूदगी होती है... डॉ. गुप्त के बगल में खड़ा व्यक्ति अपने आप में बुदबुदाने लगा। तभी उस औरत ने तेज गति से बोलते हुए प्रतिवाद किया-“क्यों बदन पर गिर रहे हैं भाई...कब से आप परेशान कर रहे हैं घर में मां-बहन नहीं है क्या...?”

फिर आजू-बाजू के लोग उस ओर देखने लगे। डॉ. राम शरण गुप्त ने भी एक उचटती निगाह उधर डाली-तो देखा कि वही पार्क वाली औरत थी जो एक भद्र से दिखने वाले भरे-पूरे व्यक्ति को लताड़ रही थी।

संपर्क : 3-बी, बंगाली शाह वारसी लेन, दूसरा तल, फ्लैट न. 4, खिदिरपुर, कोलकाता-700023, मो. 9339847198

“कोई नाम दे दो”

डॉ. कृष्णा श्रीवास्तव

रिपोर्टर माइक लेकर सामने खड़ा था—“सर आपकी उम्र”?

“क्या मुझे देख कर भी उम्र का अन्दाजा आप नहीं लगा सकते हैं?”

“आप बेहद स्मार्ट हैं किन्तु ‘डाई’ किये बालों के कारण आपकी उम्र का अन्दाजा नहीं लग रहा, हाँ इतना तय है कि वृद्धों की श्रेणी के हैं।” रिपोर्टर ने शोखी से कहा था।

“ठीक! मैं तिहत्तर वर्ष का हूँ, आप उम्र किस लिये पूछ रहे हैं।”

“आप बिल्कुल इतनी उम्र के नहीं लगते, ऐसे ही हमेशा बने रहिये।”

सामने खड़े लोगों के चेहरे पर मुस्कान उभर आई थी। दिनेश बाबू ने उसकी परवाह न करते हुये रिपोर्टर से स्वयं पूछ लिया—

“और कुछ जानकारी चाहिये कि बस, मैं जाऊँ? इस समय थोड़ा व्यस्त हूँ।”

दिनेश जैसे वृद्ध का साहस, उसे कमजोर कर गया, चेहरों की मुस्कान थम गई थीं।

“हाँ। बस एक प्रश्न और! यदि आप चाहें तो उत्तर दे दें।”

‘पूछिये’।

‘आपने इस अवस्था में ऐसा निर्णय क्यों लिया?’

“क्योंकि मैंने जीवन चुना। मैं इस स्वतंत्र देश का स्वतंत्र नागरिक हूँ। जिन निर्णयों से किसी के हितों को नुकसान न पहुँचे जैसे निर्णय लेने हेतु अपने अधिकार क्षेत्र में स्वतंत्र हूँ। रहा उम्र का प्रश्न तो मैं आज भी अपने पैरो पर खड़ा, आत्मनिर्भर और अपने निर्णय लेने में समर्थ हूँ भाई। ठीक है आप को कोई एतराज?”

“नहीं सर! कोई एतराज नहीं।”

“तो हमारे उत्सव में भी शामिल हो जाइये। हमे खुशी होगी।”

“जी नहीं। हम चलते हैं, हमारा काम पूरा हो गया, धन्यवाद सर।”

“ऐसा करो, थोड़ा कुछ तो लेना होगा, जरा दो कोल्ड ड्रिंक्स लाना भाई।”

रिपोर्टर्स जा चुके थे उत्सव भी समाप्त हो चुका था।

यह उत्सव क्या सच ही उत्सव था अथवा मात्र खाना पूर्ति जिसमें एक संतोष मात्र था। दिनेश की आज की रात्रि तो एकान्तमय न थी अमृता भी थी कमरे में। वह सोई या जागी थी उसे पता नहीं, उसकी आंखें बन्द थी, समाज के प्रश्नों के तीर तरकश से निकल निरंतर निशाना बना रहे थे। समाज के ठेकेदार किसी को सीधे रहने नहीं देते, ये निर्णय क्यों वह निर्णय क्यों? हूँ हः। क्या करना है उन्हें हमारे निर्णय से, किसी के व्यक्तिगत निर्णयों उसके जीवन में हस्तक्षेप करने का प्रयास क्यों किया जाता है यदि उनका कुछ नहीं बिगड़ता तो ठेकेदारी क्यों की जाती है?

सोचते-सोचते करवट बदली नींद कोसों दूर अतीत सजग था चार-चार पुत्रों के पिता जैसे राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न क्या दिन थे। उनकी बात लीलाओं से दिन गुलजार थे और रातें शान्त। शारदा से कहते-हम-तुम तो राजा दशरथ और कौशल्या हो गये हैं। लेकिन मैं किसी से वचन बद्ध नहीं होऊँगा, हम इन्हें कोई तकलीफ नहीं होने देंगे।

बिलकुल सच कहते है आप। ये बच्चे हम दोनों की आँखों के तारे है-दो-दो चार आँखों के तारे। उसने प्यार से लिपट कर कहा था-लो भई। तुमने भी तो दो बार में ही चार की सौगात दे दी-और क्या चाहिये मुझे-फिर चुम्बन ले पूछा था तुम तो हिसाब में बड़ी माहिर हो यह भी तो बता दो कौन से दो मेरे और कौन से दो तुम्हारे है? ‘ओफ। क्या एक-एक आँख में चार-चार तारे नहीं चमक सकते?’

‘क्यों नहीं, क्यों नहीं। शारदा का दुलार भरा चेहरा एकदम सजीव था। उन्होंने पुनः करवट बदली सोने की कोशिश की, लेकिन कहाँ सफल हुये। जुड़वाँ बच्चों को उन्होंने राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न ही घर में

बुलाने के नाम रख दिये थे। राम-लक्ष्मण इनजीनियर हो कम्पनी में लग गये थे तथा भरत-शत्रुघ्न, अंग्रजी एवं संस्कृत के लेक्चरर हो कालेज में पढ़ा रहें थे। औलादों के जल्दी होने, योग्य हो नौकरी में लग जाने पर, उन्होंने सेवा निवृत्ति से पहले ही दो-दो का एक साथ विवाह कर अपनी जिम्मेदारियों से छुट्टी पा ली थी। पोते-पोतियों के साथ सुख आनन्द का अनुभव करते जब भी वे घर आते अथवा वे स्वयं बच्चों के पास जाते। बाहर शहरों में रहने वाले बच्चों का एक एक कर आना जाना लगा था इधर वे महसूस कर रहे थे कि जब सब इकट्ठा होते हो अपना-अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिये बहुयें रईसी का दिखावा, मजाक-मजाक में व्यंग्य कसने, एक दूसरे से श्रेष्ठ साबित करने में तथा अपने-अपने बच्चों की योग्यता का गुनगान करने के साथ-साथ पीठ-पीछे बुराइयाँ अधिक करने लगी थी। कभी फैशन को लेकर कभी काम को लेकर, महिलाओं के बीच चलने वाली तकरार से शारदा अधिक परेशान रहने लगी, वह बहुत चाहती थी कि सबको मिला कर रखे, किन्तु चार अलग-अलग परिवेश से आई लड़कियाँ दिखावे के लिये आमने-सामने अलग मुखौटे लगाये रहतीं और पीछे उनके असली चेहरे सामने आते। महिलाओं के बीच की तकरार में वे बीच में न पड़ते थे। बहुत बार समझाने पर भी शारदा अन्दर ही अन्दर टूटती गई और अट्ठावन वर्ष की उम्र में हृदयघात से उन्हें अकेला छोड़ गई थी।

सहधर्मिणी की कमी से थोड़े ही समय में उनकी सेहत पर गहरा असर हुआ था। बच्चों को चिन्ता हुई उन्होंने कहा था-पापा आप अकेले नहीं रहेंगे इस सबके साथ ही आपको रहना होगा, आजकल पैंसठ वर्ष की उम्र भी कोई उम्र होती है आप जैसा ऊर्जावान आदमी अकेले रहने में इतना गल गया, आपकी इच्छा जिसके पास रहने की हो वहाँ चलिये। काम की व्यस्तता के बावजूद बेटों के निरन्तर आग्रह पर उन्होंने बेटों के साथ रहने का निर्णय लिया था। वे स्वयं भी इस

एकान्त से घबरा से गये थे—उन्होंने बच्चों से कहा था मेरे लिये हो चारों बेटे एक से हैं, मैं तुम चारों के यहाँ कुछ-कुछ महीने रुककर अपने पोते-पोतियों के साथ ही मन बहलाऊंगा तुम लोग तो व्यस्त रहते हो। एक बात और कहनी है तुम सब इस बात का बुरा नहीं मानोगे, मैं जहाँ भी रहूँगा खर्च में हाथ बटाऊँगा, जिन्दगी भर आत्म निर्भर रहा हूँ अब भी किसी पर बोझ नहीं बनूँगा, यदि तुम लोग इस शर्त पर तैयार हो तो सबसे पहले राम के घर जाऊँगा, तुम्हारी व्यस्तता का ध्यान रख मैं ही सब के यहाँ आता रहूँगा, हाँ यदि कोई दिक्कत हो तो कह सकते हो, जिसे अधिक आवश्यकता हो उसके पास मदद के लिये भी आगे-पीछे आ सकता हूँ।

बच्चों ने बड़ा विरोध किया, पापा ऐसा आप क्यों कहते हैं, आप हमारी जिम्मेदारी हैं आपने इतना त्याग किया है, हमें लायक बनाया है, आप हमें सेवा का अवसर भी नहीं देना चाहते।

“अरे भाई। मैं सेवा का तो पूरा-पूरा मौका दे रहा हूँ। मैं तो केवल खर्च की बात कर रहा हूँ। देखो जो मेरे पास है वह सब तो मेरे बाद तुम सबका ही होगा, फिर मैं क्यों न खर्च करूँ। जब मेरे पास खुले हाथों खर्च करने की सुविधा मौजूद है तुम सब सोचे क्या पापा का हाथ फैलाना तुम्हें अच्छा लगेगा? और यदि खुदा न खास्ता कुछ जरूरत आ पड़ी तो तुम्हीं लोग मदद करोगे, है न? बहुत ना नुकुर के बाद बेटे अन्ततः पापा की बात से सहमत हो गये थे।

शत्रुधन ने अपना अधिकार जमाया था—देखिये राम भइया, मैं सबसे छोटा हूँ तो पापा को साथ ले जाने का हक पहले मुझे मिलना चाहिये आपके लव-कुश तों थोड़े बड़े है मेरी निक्की अभी छोटी है तो पापा का संग उसे अच्छा लगेगा। राम ने स्वीकृति दी थी भाई मुझे कोई दिक्कत नहीं बस मैं चाहता हूँ पापा अकेले न रहें, हमें से किसी न किसी का साथ उन्हें मिलते रहना चाहिये। दिनेश जी के चार वर्ष यों ही चारों बच्चों के

पास रहते खुशी-खुशी बीत गये—बच्चों के साथ घूमते, पढ़ते। एक के पास रहते तो दूसरों की याद करते, हर जगह हमउम्रों की मंडली भी बन गई प्रातः भ्रमण विचार विमर्श राजनीति पर चर्चा चलती। कभी-कभी पत्नी की याद बहुत बेचैन करती कितनी सरल-सहज थी, पर कोई इलाज न था सिवा अपना मन बटायें रखने के। इन दिनों वे शत्रुधन के पास थे सांझ की बेला में धूम कर लौटे थे, प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य को निहारा था। अस्ताचल गामी सूर्य अपना स्वर्णिम थाल लिये सागर तट की अतल गहराइयों में छिप गया था, चम्पई उजास आकाश में फैल चुकी थी। उसी में खोये थे कि उनकी छः वर्षीय निक्की बाबाजी कहती गोद में आकर बैठ गई, दिनेश जी ने प्यार में भर उसे चूम लिया।

“बाबाजी। आप कोई कहानी सुनाइये न। हम कहानी सुनने आये हैं।”

“अच्छा। कौन सी कहानी सुननी है बताइये तो?”

‘वो जंगल में शेर वाली, जिसमें बच्चा पूछता है आप भगवान हो?’

‘अच्छा-अच्छा ‘घुव’ की कहानी सुननी है बाबाजी ने कहानी शुरू ही की थी कि निक्की का पुनः प्रश्न बीच में आ गया—

“अच्छा बाबा जी। आप कब मरेंगे?”

दिनेश आश्चर्य चकित थे, इतनी सी बच्ची और ऐसा सवाल?

‘निक्की। भला बताओ तो, किसने तुमसे कहा कि मैं मरने वाला हूँ।’

‘नहीं बाबा जी। यह तो किसी ने नहीं कहा कि आप मरने वाले हो परन्तु मम्मी-पम्मी आन्टी से कर रही थीं कि हर थोड़े दिन में आप आ धमकते हैं मुश्किल में डाल देते हो न जाने कब मरोगे तो छुट्टी मिलेगी। आप बता दो तो मैं मम्मी को बता दूँगी।’

‘निक्की तुम छोड़ो इस बात को कहानी सुनो मैं ही बता दूँगा तुम्हारी मम्मी को।’

निक्की को तसल्ली हो गई कि बाबाजी मम्मी की मुश्किल खत्म कर देंगे। वह कहानी सुनने को तैयार हो गई—“फिर क्या हुआ बाबाजी। जंगल में शेर मिला तो फिर...?”

दिनेश तो विचारों के जंगल में भटक गये थे उन्हें लग रहा था कि अनजाने ही अपने मीठे सपनों और खुशनुमा यादों पर उनका पांव पड़ गया है। बेटे बहुओं के सम्मान का भ्रम चकनाचूर हो गया जिसका आजीवन सालता रहेगा। वृद्धावस्था का अपना दर्द होता है कितना अवांछित हो जाता है व्यक्ति। क्यों वे पुत्रों के मोह में बंधे चले आये। उन्होंने मन ही मन निर्णय लिया था मन अन्दर तक दरक गया था। बदलते समय की तीव्र गति को पहचानने में असफल रह गये थे।

निक्की ने इस बीच कई बार पूछा—“आगे क्या हुआ बाबाजी बाबा को विचारों में डूबा देख वह कहती हुई उठकर भाग गई थी—‘नहीं। सुननी अब कहानी।’”

अगले दिन ही उन्होंने अपना सामान बांध अपने घर आने की तैयारी कर ली थी। शत्रुधन ने बहुत पूछा परन्तु उन्होंने केवल इतना ही कहा था बेटे! घर की याद शिद्दत से आ रही है अब मैं सीधे घर ही जाऊंगा किसी बेटे के पास अभी नहीं जाना है मेरा घर मुझे पुकार रहा है सभी भाइयों का आश्चर्य भी हुआ कि आखिर पापा जो चार वर्षों से सबके पास खुशी-खुशी रह रहे थे, उन्हें अचानक वापस जाने की क्या सूझी? किसी के पास समय भी कहाँ था। जो ज्यादा जांच पड़ताल करता, अन्तर तक उनके झांक सकता?

दिनेश जी को लौटा देख उनकी किरायेदार आश्चर्य चकित हुई थीं। उन्होंने तीन कमरों के मकान में से दो कमरों में नर्सरी स्कूल खोल दिया था, तीसरे में स्वयं अकेले रहती थीं। अमित-अमृता एक समय अपना एकमात्र घर बँच कर पुत्र के जोर देने पर उसके साथ सेवानिवृत्ति बाद चले गये थे। कुछ समय बाद ही पुत्र को विदेश की नौकरी मिल गई और वह माता-पिता को छोड़ वहीं जाकर बस गया था। अमित की सरकारी

नौकरी की पेशन थी इसलिए वह पुनः अपने शहर लौट कर दिनेश के एक हिस्से में किरायेदार बन गये थे। दिनेश के बच्चों के साथ जाने के निर्णय पर उनके घर की देख रेख का जिम्मा भी उन्होंने स्वयं उठा लिया था किन्तु दो वर्ष पूर्व अमित भी अमृता का साथ छोड़ गये थे, तो अमृता ने एकान्त से घबरा नर्सरी डाल ली थी। छोटे-छोटे बच्चों की तोतली प्यारी बातों से मन को वे बहलाये रखती थीं।

अमृता शाम को नर्सरी से छुट्टी पाकर दिनेश से मिली श्वेत वस्त्र विधवा वेश-दिनेश ने दुःख प्रकट किया, हाल चाल जाने थे अमृता ने पूछा था—“आप अचानक क्यों इस तरह लौट आये? पहले से खबर कर देते तो खाने पीने का इन्तजाम कर रखती थीं।”

अन्तर तक दुःखी दिनेश ने अपने घर और पत्नी की यादों का वास्ता दिया तो अमृता ने भी उनके कहे को ही सत्यमान खोदा नहीं था। जीवन की आपा-धापी में असहनशीलता, लिहाज की कमी पैसे के मोह को उन्होंने स्वयं भी झेला था। समदुख कातर थे दोनों।

दिनेश से अमृता ने कह दिया था आपको खाना नहीं बनाना होगा, मिसरानी आती ही है दोनों का खाना बना दिया करेगी, बदले में दिनेश ने अमृता के स्कूल आफिस का काम देखना शुरू कर दिया था स्कूल व्यवस्थित रूप से चलने लगा। कई बार दोनों ने विचार किया कि स्कूल को आगे बढ़ाया जाय किन्तु उम्र का तकाजा था जितना सम्भल सके उतना ही करें।

दिन बीत रहे थे, अपने-अपने अतीत की खुशियों-दुख-आनन्द के अवसरों को दोनों फुरसत के समय बच्चे जब भी उनसे मिलने आते साथ चलने पर जोर देते लेकिन दिनेश स्कूल का वास्ता दे उनके साथ चलने को नकारते रहते थे। एक तरह से संतुष्ट भी थे वे कि पापा उदास नहीं हैं काम में व्यस्त है। अमृता का बेटा तो विदेश में जो बसा तो काम का बहाना बना कभी वापस आया नहीं परन्तु आर्थिक मदद करता रहा था अमृता के लाख मना करने पर भी। पिता की मृत्यु पर

भी पुत्र के न आने का दुख उनकी पलकों को बार-बार भिगों जाता तो, निक्की द्वारा छोटी बहू का कथन दिनेश के दिल को मसोस देता था।

उन दोनों के बीच बने संवेदनशील सरल संबंध को शंका की दृष्टि से आस-पास देखा जाने लगा, समाज की नजरे तंग तीखी थीं। बेटे तो आते हैं पर बूढ़ा अब जाता ही नहीं, भला कौन सा आकर्षण है, मिसरानी और काम करने वाले नौकरों से भी जानकारी ली जाने लगी थी। दोनों इस उम्र में कौन सी रास लीला रच रहे हैं मिसरानी को रोक कर पड़ोसन ने पूछ ही लिया था वहाँ तो वह कुछ न बोली किन्तु खाना बनाते-बनाते उसने अमृता से सारी बातें कह डालीं थीं। अमृता सुनकर हैरान थी जो बात उसके मन में भी नहीं आई उसे लोगों ने कैसे सोच डाला-यह तो बिना धुयें की आग थी। दिनेश को पता चलेगा तो वे क्या सोचेंगे? अमृता का मन भारी हो गया एक बार मन में आया यह घर छोड़ कहीं और तुरन्त ही चली जाये लेकिन यह स्कूल, बच्चे कामवाले, शिक्षिका इन सबको अचानक इस तरह छोड़ कर नहीं भाग सकती थी कभी भी अपनी जिम्मेदारियों से यों पीछे नहीं हटी थी वो।

मन बहुत बेचैन था वह अपने कमरे में जाकर लेट गई थी। दिनेश घर लौटे तो मिसरानी ने ही खबर दी थी मैडम की तबियत ठीक नहीं है सो रही हैं। क्या हो गया उन्हें उत्तर में उसने कह दिया कुछ बताया नहीं।

अमृता अन्दर ही अन्दर व्यथित थी इतने लंबे जीवन में कभी किसी ने उनपर उंगली नहीं उठाई और अब ऐसे जीवन से तो जीवन ही न रहे मन ही मन मन्थन चलता रहा अन्ततः मन की कायरता पर काबू पा वे बाहर आई तो दिनेश को इन्तजार करते पाया था। वह अपने आप को रोक नहीं पाई और दिनेश से मोहल्ले वालों की विकृत मानसिकता की कहानी कह डाली थी दिनेश ने उसे समझाया जब हम लोगों के मन में ऐसी कोई भावना ही नहीं तो भय किस बात का है। उम्र के इस अन्तिम पड़ाव में स्त्री हो या पुरुष उसे एक

सहारे की आवश्यकता होती है वह मेरे बच्चे हो रिस्तेदार अथवा पड़ोसी जो उनकी आवश्यकताओं और भावनाओं को समझें जाने, सुख-दुख साझा करे बस इतना ही। हम पड़ोसी एक दूसरे सुख-दुख के साथी फिर चिन्ता की क्या बात है। यदि आप दुनिया की इतनी चिन्ता करेगी तो अपनी फिकर नहीं कर पायेंगी, हम ही मजबूत न रहे तो दुनिया तो तमाशाबीन है वह हम पर आक्षेप लगायेगी हँसेगी।’

‘लेकिन हम भी इसी समाज के अंग है न’

‘हाँ बिलकुल है इसमें क्या शक है?’

लेकिन

‘लेकिन क्या अमृता?’

‘देखिये दिनेश जी। हमें रहना इसी समाज के बीच है। आप पुरुष है, ऐसा सोच सकते हैं-इस उम्र में बदनामी-उसकी आंखें नम हो गई कहीं और रह लूंगी, लोगों का मुंह बन्द हो जायगा-बदनामी सहकर जी नहीं पाऊंगी।’

‘हूँ हः समाज। स्वयं के महत्त्व के प्रति अत्यन्त गंभीर होता है। जहाँ सुई न जाय डन्डा डाल देने में माहिर। इस तथ्य को अनदेखा करता है कि समय की एक लहर किनारे लिखे नामों को मिटा देता है घरोंदे नष्ट हो जाते हैं कदमों के निशान मिट जाते हैं फिर भी अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए ठेकेदार बना रहता है मैं परवाह नहीं करता, उम्र का लिहाज भी नहीं क्या लिवइन लोगों को? यह वह समाज है, जहाँ लिवइन रिलेशनशिप मान्य है वहाँ हम दोनों जैसे उम्र दराज लोगों के रहने में भला क्या एतराज? यदि कोई हाथ चलाये तो उस हाथ को पकड़ कर रोका जा सकता है पर यदि कोई टका भर की जबान चलाये और मुंह के अन्दर बन्द कर ले तो उसका कोई क्या करे? यदि तुम चाहो तो इस रिस्ते को कोई नाम दे देंगे। लेकिन रहेंगे वही एक दूसरे के शुभचिन्तक। जानती हो मैंने एकबार शारदा से कहा था चार पुत्रों का पिता मैं राजा दशरथ और तुम कौशल्या तो उसने हँस कर कहा था-“ओह

हो! तो आपको सुमित्र और कैकई की और अभिलाषा होगी है न?

तब मैंने दृढ़ स्वर में कहा था 'नहीं शारदा। मैं आधुनिक दशरथ हूँ और तुम चारों पुत्रों की एक मात्र मां। कभी पुत्रों के अहित हेतु कैकई बन कर वर मत माँगना मैं भी बहुपत्नीत्व स्वीकार नहीं करूँगा।'

'अरे। हम कहां की बात कहां ले आये। हमारे बच्चे आज्ञाकारी रहेंगे। हर माता-पिता की यही इच्छा होती है न? सोचते सोचते न जाने कब नींद के आगोश में चल गये थे।

सुबह नींद खुली तो देखा अमृता बाजू के पलंग पर अंगड़ाई ले उठने की कोशिश कर रही थी—

दिनेश ने कहा—'गुड मॉर्निंग अमृता।'

'वेरी गुड मॉर्निंग'।

उसके चेहरे में आज कोई परेशानी के चिन्ह न थे पिछली रात ही उन्होंने शुभ-चिन्तक जीवन साथी बनने की कसमें खाई थी एक छोटे समारोह में। प्रथायें तो समानुसार बदलती रहती है, उन्होंने भी नई प्रथा की स्थापना की थी।

उसने कहा-उठिये दिनेश मैं चाय बनवा कर लाती हूँ।

संपर्क : सिन्धी गुरु संगत के पीछे, सदर नागपुर-440001, मो. 09881271009

‘नेपथ्य’

डॉ. शुभ्रा उपाध्याय

आसमान बादलों से भर गया।

काले-काले बादल चहुँओर से भागे मानो उसकी छत पर ही जमा हो रहे थे।
दमकता सूर्य देखते ही देखते न जाने कहाँ खो गया। घर आंगन में शाम का सांवला झुटपुटा सा पुत गया।

वह रसोई की खिड़की से दौड़ते भागते बादलों की बनती बिगड़ती अद्भुत आकृतियों में खोई कुछ देर यूँ ही खड़ी रही।

अचानक ठंडी हवाओं के शीतल स्पर्श ने उसे छुआ।

उसे बड़ा अच्छा लग रहा था। भरी दोपहर में शाम के मौसम की ऐसी रूमानियत उसे अन्दर तक स्पर्श कर रही थी।

उसने हाथ बाहर निकाल कर यूँ ही फैला दिए।

पट्-पट्-पट् की आवाज के साथ औचक बारिश की मोटी बूँदे उसे ललक कर छूने लगीं।

गैस पर रखी चाय उफन रही थी। अदरक और तेजपत्ते की गुनगुनी खुशबू के साथ भीगती दीवारों की सोंधी महक उसमें एक अजीब से एहसास का सृजन कर रही थी।

एक लम्बी सांस खींच वह मुड़ने ही वाली थी कि आंखें सामने दीवार की दरों में से झाँकते दो बड़ी-हरी बिन्दी जैसे नन्हें पत्तों पर टिक गईं। जिसका हरा रंग बारिश की फुहारों से और भी कात्तिमय हो गया था।

उसे याद आया ऐसे ही दो नन्हें पत्तों को हाथ उठाये देख वह नया मंदिर के संगमरमरी फर्श पर मार्निंग वॉक करते अचानक ही ठिठक गई थी। किनारे-किनारे के बड़े जतन से रख-रखाव वाले पौधों और बीच की रंग-विरंगे फूलों की तरतीब

क्यारियों से बिल्कुल छिटके पड़े अदम्य जिजीविषा की महागाथा गुनगुनाते वे दो हरी बिन्दीनुमा पत्ते उसे बुला रहे थे।

वह अकेली नहीं थी। पच्चासों लोग थे जो वहां टहलने आते थे। उस दिन जबतक वह टहल रही थी, उसका पूरा ध्यान इसी पर था कि वे शिशु पत्ते किसी के पैरों तले कुचले न जायें। वह तो स्वयं उन्हें बचाकर चल ही रही थी, दूसरे जब वहां से गुजरते तो देखती रहती कि वे बचे रहें। और हर बार जितनी बार भी लोग उसे सुरक्षित छोड़ गुजर जाते वह राहत की सांस लेती। और तभी उसने सोचा था कि जीवन कितनी कठिन परिस्थितियों में भी कितनी सहजता से मुस्कुरा सकता है! जीने की शर्तें कितनी कम हैं! और यह भी कि कैसे कोई किसी को कुचल सकता है? एक नन्हें से पौधे को भी?

जीवन के न जाने कितने रागों-धागों से भरा सबका मन!

वह थोड़ी देर निगाहों से उस हरी नर्मकाया को सहलाती रही थी उसने दूर से ही देखा। सामने दीवार पर असंख्य ऐसी हरी बिन्दियां बारिश की फुहारों के बीच झिलमिला रही थीं।

* * *

उसका प्रेम विवाह नहीं हुआ था।

लेकिन कायदे से अरेंज भी तो नहीं था।

यह सच था कि विवाह तय होने से पूर्व वे दोनों एक दूसरे को जानते-पहचानते न थे। लेकिन जान पहचान होने के बाद प्रेम की रस्मों-रिवाज के मुताबिक उनमें भी मान-अभिमान और तकरार के कुछ कम गोल गप्पे नहीं फूटे थे।

तब उसे कहां भान था कि वही आदतें जिन पर वह रीझ रही है भावी जीवन में प्यार के धागों की अपरिमित शक्ति का भरोसा ले सबकुछ समेट मन की गठरी में बांध लेने का संकल्प जोड़ रही है वह सबकुछ कितना भुरभुरा और बेमानी निकलेगा।

संकल्प तो दूर अब तो उसका मन भी नहीं चाहता।

नहीं ! शायद यह सत्य नहीं है।

मन चाहता है, और खूब चाहता है!

लेकिन शायद वह थक चुकी है! हार चुकी है!

शायद उसने यह मान लिया है कि मन की दुनिया मनभावन भावों से रची-बसी हो यह कतई जरूरी नहीं। जीवन को ढर्रे पर चलाये रखना अभावों को भी उतनी ही खूबसूरती से आता है! खासकर उस दुनिया में जहाँ अभाव मन की खोह में नहीं लोगों की दृष्टियों से मापे जाते हों।

किसी का होना ही क्या काफी नहीं?

* * *

वह दिन भी तो उसके मन की तरह भारी-भारी और भरा-भरा ही था।

सुबह से वर्षा हो रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे पूरे मौसम में रजत-तारों की झालरें फैली हों रह-रहकर भयानक गर्जन और विद्युत की तीखी चमक मन में अजीब सी दहशत भरे दे रही थी। उसने महेश को फोन किया। अभी वह 'हैलो' बोलने जा ही रही थी कि महेश ने कहा—

‘अरे यार! कितनी बार कहा है कि ऑफिस में रहा करूँ तो डिस्टर्ब मत किया करो। तुम्हारी समझ में इतनी सी बात आती क्यों नहीं?’

वह फोन काट चुका था।

लेकिन वह अभी भी सहमी सी फोन कान से लगाये खड़ी थी।

सारे दिन वह इसी उधेड़बुन में परेशान थी

‘फोन करना चाहिए था या नहीं’

और कुछ कर ही नहीं सकी। न अपने लिए कुछ खाने को पका सकी। न ‘क्राइम पेट्रोल का एक भी एपीसोड देखा! न ‘स्त्रीमन की कहानियां’ पढ़ी।

कई बार चाय खौलाती रही। पीती रही। और जब तब मुसलाधार बारिशों के तेज झूलों पर आरुढ़ मन के

आर्तनाद को पेंग मारती रही।

शाम महेश देर से ही लौटा था।

आते ही चाय की फरमाइश की थी। वह फिर किचन में चाय का पानी चढ़ा खिड़की से बाहर झांक रही थी।

बारिश थम चुकी थी। नहाया-धोया आकाश आगोश में चांद की कोमल काया थामे शीतलता से मंद-मंद मुस्कुरा रहा था।

उसने तय कर लिया था।

अब वह महेश को कभी भी ऑफिस में फोन नहीं करेगी। सिर्फ ऑफिस में ही क्यों अब वह फोन ही नहीं करेगी। अगर उसे कोई जरूरत होगी तो वह खुद करेगा ही।

महेश के लिए चाय छानते-छानते वह दृढ़ हो रही थी

अभी महेश कहेगा कि तुम अपने लिए भी चाय लाओ। लेकिन वह वहां एक पल को रुकेगी नहीं। जैसे कि कुछ सुना ही नहीं। सुना भी, तो सुनना नहीं चाहती। वह वहाँ बैठेगी भी नहीं। यदि वह हाथ पकड़ कर बैठाना चाहे तो? तो-तो वह कुछ बहाना बना लेगी।

महेश फ्रेश होकर आ चुका था।

म्यूट मोड़ में टी.वी. का स्क्रीन लगातार दृश्य परिवर्तन कर आंखों को चुंधिया रहा था। वह सेंद्रल टेबल पर लैब टॉप रख काम में व्यस्त था। बगल ही उसके तीनों मोबाइल सेट साइलेंट मोड़ में जुगनू की तरह रह-रहकर चमक रहे थे।

मधु अपलक निहारे जा रही थी

कई घण्टों के अन्तराल में फैले मान-अभिमान के रंग-बिरंगे रेशमी धागे स्वतः धीरे-धीरे सिकुड़ते जा रहे थे।

चाय लेकर वह महेश के ठीक बगल में जाकर बैठ गई।

एकदम सटकर।

मन में कितने सारे उलाहने पंक्तिबद्ध फुदक रहे थे। मानों किसी नाटक के मंचन से ठीक पहले सारे कलाकार नेपथ्य से मंच पर अपनी उपस्थिति हेतु समुत्सुक कतारबद्ध झांक रहे हों।

‘थोड़ा दूर बैठो ना।’ महेश ने असहज होते हुए कहा।

‘क्यों बैठूँ दूर? दिन भर तो दूर हूँ।’

आंखें चमक रही थीं।

मन में कोई उद्घोषणा कर रहा था-

‘लाइट...कैमरा...एक्शन....!’

‘तुम्हारी तरह मैं दिन भर घर में आराम नहीं करता। मैं थकता हूँ, काम करता हूँ! थोड़ा चैन से बैठने तो दो।’ महेश ने कहा।

चमकती आँखों के तारे अचानक बुझ गये।

मंच तिमिराच्छादित हो गया।

महेश की पीठ से सरकती कंधे तक पहुँची मुलामय हथेली निढाल हो नीचे गिर पड़ी।

नेपथ्य के चमकते जुगनू ठंडे पड़ गये।

मधु को याद आया...

वे कुछ दिन भी तो थे...

ऑफिस जाते समय महेश उसी से मनुहार करता था—

‘कहो तो आज रुक जाऊँ?’

और वह लाड़ से उसे धकेलते हुए दरवाजे तक ले जाती थी।

ऑफिस पहुँचते ही उसका फोन—

‘क्या कर रही हो?’

‘कुछ करने दोगे तभी तो कुछ कर पाऊँगी!’ वह मंजीरे सी खनकती हंसी में कहती।

‘मैं आ जाऊँ, करवा दूँ? तुम थक जाओगी!’

शहद सा टपक जाता उसके कानों में।

‘चुपचाप मन लगाकर काम करो।’—कहकर वह फोन काट देती।

कपास की काया में सुगंध सा मन बौरा जाता।
गुनगुनाते मुस्कुराते दिन कब कपूर की तरह उड़
जाते पता ही नहीं चलता था।

महेश शाम को घर लौटता तो पूरा घर महकने
लगता।

दरवाजे पर छोटे-छोटे सैकड़ों फूल बिखर जाते!
बालकनी खिले-खिले पीताभ और कमला गेंदा फूलों से
महमहा उठती! खिड़कियों पर जूही फूलों की महीन
झालरें झूलने लगतीं।

वह खुद भी तो गाढ़े गुलाब सी महक उठती।
दिनभर दूर-दूर रहकर भी लगता था जैसे दोनों
एक ही स्क्रिप्ट के संवाद बोल रहे हों।

मधु को जोरों की रूलाई आई।
अंदर कमरे में जाकर वह फूट-फूट कर रोई थी।
तभी उसने सोचा था कि वह महेश से सीधे-सीधे
बात करेगी। वह तुरंत महेश के पास गई।

महेश सोफे पर आंखें बंद किए निढाल पड़ा था।
‘मुझे तुमसे कुछ बात करनी है।’—मधु ने सीधे ही
कहा।

‘हां...हां बोलो’ कहते हुए महेश उठ बैठा
मधु महेश की आंखों में देखते हुए क्षण भर भरी
बैठी रही।

होंठ हल्के से कम्पन के बाद एक दूसरे को पकड़े
थरथरा रहे थे।

महेश की दृष्टि उसके चेहरे से होती हुई फिसल
गई।

काली-काली तनी भौंहों के नीचे बड़ी-बड़ी डबडबाई
आंखें! हल्की ललछौंह पतली नासिका! चुटकी भर
केशर मिले मक्खन की लोई जैसे गाल! दहकते थरथराते
होंठ! कंधे पर पड़ा धानी रंग का बेतरतीब रेशमी
आंचल!

‘क्या हुआ? तुम रो रही हो?’—महेश असहज हो
गया।

मधु की पलकें हिलीं। आंखों की महीन कोर में

फंसी अश्रुबंदू गालों पर गिर पड़ी।

‘यार! मेरी किसी बात का बुरा लगा हो तो सॉरी!
मुझे माफ कर दो।’

महेश ने मधु की दोनों हथेलियों को पकड़ कर चूम
लिया।

मन आंगन में झरे सारे सूखे पत्ते क्षणभर में फुर
हो गये।

शिकायतों की जगह मोह की कोपलें फूटने लगीं.
..उनमें स्नेह के दिपदिपाते फूल टंक रहे थे।

* * *

दिन ताबड़तोड़ बारिश के थपेड़ों से थक चुका
था।

आसमान साफ हो गया। धुला पुंछा आकाश
नीली चादर बिछाये निहार रहा था। पश्चिमी कोने की
ललाई सूर्यास्त का आभास करा मुड़ गई थी।

इक्के-दुक्के घन धुनी कपास की टोपी पहने
इधर-उधर टहल रहे थे।

मधु ने चाय का प्याला टेबल पर रखा।

थोड़ी देर यूँ ही महेश को देखती खड़ी रही। महेश
के सर के बाल कितने विरल हो गये हैं। एक समय ये
कितने गड़िन थे। ऊँगलियाँ फंस जाया करती थीं। अब
तो लगता है कि कंधी की जरूरत ही नहीं। ऐसे ही
सहला दो संवर जायेंगे। उसका मन किया उन रूखे
बेतरतीब बालों को सहला दे।

‘क्या हुआ? मधु? कुछ कहना है क्या?’—महेश ने
ऊपर देखते हुए पूछा

‘नहीं’ उसने हड़बड़ा कर रिमोट उठा लिया। म्यूट
टी. वी. को स्विच ऑफ कर रिमोट उसके बगल में रख
दिया। वहाँ से जाने लगी।

न मालुम कैसे दोनों आंखें कूदकर दोनों कर्ण कुहरों
में बैठ गई। उस अबोल वातावरण में उसे अपने दिल
की धक् धक् ध्वनि के साथ महेश का लैबटॉप पर
झुका सिर दिखने लगा। आंखें लैबटॉप-स्क्रीन पर ऊपर
नीचे फिसल रही थीं और उसके हाथ बारम्बार चाय का

मग उठा रहे थे, रख रहे थे।

मौसम का भी कैसा मिजाज होता है!

कभी-कभी तो दिनों दिन तमतमाये रहेंगे।

और कभी, अभी रुके और अभी फिर पटपटाने लगेंगे।

वह लपक कर बालकनी में पहुंच गई। वे कपड़े जिन्हें अभी फैला कर गई थी फिर से समेटने लगी। इस अचानक तेज बारिश की बौछारें पूरी बालकनी को भिगोये दे रही थीं। कपड़े उतारते-उतारते वह भी काफी देर तक भीगती रही।

* * *

‘क्या बात है भई? आज तो पूरी दावत है!’ महेश ने कुर्सी खिसकाते हुए कहा।

मधु पूर्ववत् खड़ी थाली परोस रही थी। आज कितना कुछ बना डाला था उसने। भिंडी की बेसन वाली कुरकुरी भुजिया, लौकी का कोफ्ता, प्याज का पराठा, दो चम्मच घी वाला गोविन्द भोग चावल!

ये सारी चीजें ही तो महेश के पसंद की हैं।

पहली बार जब उसने भिंडी बनाई थी तो महेश कितने ताज्जुब के साथ खा रहा था! भिंडी और इतनी कुरकुरी! तभी उसने बताया था कि उसकी मां भी कितना अच्छा भिंडी बनाती थीं। बिल्कुल हरी-हरी। हां थोड़ा पसीज जाती थी। कोफ्ता तो उसका सदा सर्वदा का फेवरिट है। मां केले और कटहल का क्या लजीज कोफ्ता बनाती थीं। महेश कभी सादा पराठा खाता ही नहीं था। वह हमेशा कहता—‘सादा पराठा से तो घी चुपड़ी रोटी अच्छी है।’

जब भी पराठे खाता, दिल्ली के ‘पराठे वाली गली’ के विविध फ्लेवर महसूस करता रहता।

अब वह मान गया है कि मधु के आने के बाद ‘पराठे वाली गली’ की भांति उसका एक ‘पराठे वाला किचन’ हो सकता है।

‘आज हम लोग यहीं खायेंगे क्या? अन्दर नहीं..!-हाथ के इशारे से बेड़रूम की ओर दिखाते हुए पल

भर को महेश की निगाहें मधु की निगाहों में ठहर गईं। उसे लगा उसके अन्दर अचानक ही एक चक्रवात उठ खड़ा हुआ है जो निमिष मात्र में सबकुछ तहस-नहस कर देने वाला है। अभी वह कुछ कह, सुन, अथवा समझ पाती कि महेश ने कहा—

‘चलो कोई बात नहीं। आज यहीं सही। वैसे भी वहाँ खाने से बर्तन उठाने में तुम्हें तकलीफ होती है। मेरा क्या? तुम जिसमें खुश, मैं तो उसी में खुश’

सामने कुर्सी पर बैठी मधु के हाथ कौर थामे होठों के पास ठिठक गये।

वह देख रही थी।

महेश मगन मन, चटखारे ले लेकर खा रहा था।

कितना सुन्दर और प्यारा लग रहा था वह।

बिल्कुल मासूम बच्चे सा।

मन पसंद खाना पाकर, इतना खुश!

मन किया कि हाथ में थमे कौर को महेश के मुंह में डाल दे और बलैयां ले ले कि किसी की नजर न लगे।

‘अरे! खाओ ना! देख क्या रही हो? जल्दी-जल्दी खाओ नहीं तो सारा खाना मैं ही चट कर जाऊँगा। फिर पीछे तुम बरतन खुरचती रहना।’

महेश ने तृप्ति के साथ एक लम्बी डकार ली। फिर उठते हुए कहा—

‘आज बहुत थक गया हूँ! ऑफिस में बहुत काम रहता है! अभी भी वही कर रहा था। अब इतना खाने के बाद नींद भी तो आ रही है।

अच्छा, तुम जल्दी सब समेट कर आओ मैं चलता हूँ।’

महेश चला गया।

वह उसे जाते देखती रही।

सोने के कमरे में जाकर महेश ने दरवाजा बंद कर लिया। वह जानती है कि खिड़की दरवाजे सभी बंद होंगे। सिर्फ इसी कमरे के नहीं, पूरे घर के। पर रात की मद्धिम रोशनी में वह बंद दरवाजा उसे आंख मार रहा था। जिसे देखकर टेबल के सारे बर्तन मुंह दबाकर हंस

रहे थे। मन के भीतर धंसा चक्रवात आंखों की पुतलियों पर नाचने लगा।

* * *

रात का अंधेरा लैंप पोस्ट की पीली रोशनी के इर्द-गिर्द बिखरा हुआ था। लैंप पोस्ट के नीचे ही दो तीन कुत्ते गुड़ी-मुड़ी मारे सो रहे थे। सामने मकान की छत पर रखे गमलों में खिले नन्हें सफेद फूल टिमटिमाते तारों की भांति चमक रहे थे।

मधु ने चेहरे को थोड़ा ऊँचाकर खिड़की में लगे ग्रिल पर टिका लिया। हवा का एक संक्षिप्त झोंका उसके गालों को सहला कर चला गया।

मधु ने देखा। आसमान बिल्कुल साफ था। लग ही नहीं रहा था कि अभी कुछ घण्टों पहले तक वह मेघ खण्डों का गर्जन-तर्जन युक्त अखाड़ा बना था। हल्के नीले रंग की महीन चादर पर सैकड़ों रेशमी फूल टंके थे। आसपास के घरों के रोशनदानों पर तिमिर-सेना तैनात हो चुकी थी। सम्पूर्ण संसार दिवा के कोलाहल से थका मांदा निशा के जादुई चंदोवे तले विश्राम ले रहा था।

मधु ने एक लम्बी सांस ली।

शायद महेश सो गया हो।

शायद नहीं भी।

वह कितना चाहती है कि महेश थोड़ी देर उसके साथ बैठे। उससे बातें करे। उससे पूछे बार-बार मना करने के बाद भी वह उसे ऑफिस में फोन क्यों कर देती है? घर आकर भी तो कभी नहीं पूछा! फोन की बात जाने भी दो...दिन भर के कामों में भूल सकता है। लेकिन...

लेकिन वह तो उसकी ओर ठीक से देखता तक नहीं!

देखता तो क्या कुछ भी समझने में उसे देर लगती?

कभी-कभी उसे लगता है कि वह केवल एक नाम भर रह गई है। जो महेश की जरूरतों के अनुरूप बाना धारण करती रहती है। जिसकी अपनी कोई जरूरत है

ही नहीं। जो पूरे घर में वायु की तरह व्याप्त है।

उसे याद आया...

बीस पच्चीस वर्ष पहले की बात होगी...

* * *

तब उसकी शादी तय भर हुई थी।

व्यक्तिगत हथेलियों में मोबाइल तो थे नहीं, लेकिन लैंडलाइन फोन सबके घरों में थे। एकमात्र बातचीत का जरिया।

उस दिन जमकर बारिश हुई थी। और फिर वही हुआ जिसका उसे अंदेशा था। रिसीवर उठाकर उसने चेक किया-फोन डेढ़ था। बड़ी झुंझलाहट हुई, रोना भी तो आया। अब दो-तीन-चार न जाने कितने दिनों में फोन ठीक होगा, तभी उसकी महेश से बात हो पायेगी।

पूरा दिन वह उदास थी। मन ही मन करोड़ों मनौतियां मान रखी थी कि एक बार बारिश का तांता टूटे और वह किसी तरह महेश से बातें कर पाये। शाम होते-होते बादल छंट गये थे। लेकिन मौसम अभी भी गीला और सर्द था। घर से निकलकर पब्लिकबूथ तक जाये भी तो कैसे? किससे कहे? क्या कहे?

मकान के दूसरे तल पर विनीता रहती थी। दोनों एक ही साथ, एक ही कॉलेज में, एक ही वर्ष में पढ़ती थीं। विनीता से 'कुछ काम' का बहाना ले वह बेतहाशा सड़क के उस पार पोस्ट ऑफिस से सटे पब्लिक बूथ की ओर भागी थी। वहाँ भी तो कितनी लम्बी लाइन थी। तब होता ही ऐसा था। जरा सी बारिश में फोन डेढ़। यहाँ तो मुसलाधार बारिश हुई थी। उसकी जान मुंह को आ रही थी। एक तरफ महेश की आवाज भर सुन लेने की तीव्र लालसा और दूसरी ओर घर से दूर यहाँ होने का भय। विनीता उसके साथ ही थी। अपनी बारी पर एक का सिक्का डाल जैसे ही उसने नंबर डायल किया कानों में ट्रिंग-ट्रिंग की प्रतीक्षित धुन बजने लगी। उसने सोचा यदि महेश की जगह कोई और फोन उठाये तो? वह झट से फोन काट देगी। फिर मिलायेगी। उसके पास अभी भी एक रुपये के तीन सिक्के थे।

तभी एक मीठी सी आवाज कानों में पड़ी—

‘हैलो’

‘...’ उसका दिल उछल कर गले में अटक गया।

‘हैलो’—इस बार महेश की ‘हैलो’ के साथ थोड़ी हंसी भी थी।

हंसी की चाशनी उसकी सुध बुध को लपेटे ले रही थी।

बड़ी मेहनत से स्वयं को संयत कर वह बोल पाई—
‘हैलो!’

फिर तो न जाने कितनी देर दोनों कही-अनकही बातों का सिरा थामे सपनों की चोटियां गूंथते रहे थे।

* * *

वह कमरे में आ गई।

महेश की हंसी के वही खनकते तार मन में खिंच रहे थे।

पूरा कमरा नाइट बल्ब के हल्के गुलाबी प्रकाश से भरा हुआ था। महेश दीवार की ओर करवट लिए सो रहा था। आधा बिस्तर खाली था। सिरहाने कोई किताब पड़ी थी। शायद इसमें कोई कागज की छोटी सी चिट हो..

जिस पर लिखा हो—‘मधु आइ एम सॉरी! तुम्हारा प्यारा सा दिल दुखाने के लिए!’

या शायद कुछ भी नहीं!

सिर्फ कोई आधी अधूरी पढ़ी सी किताब ही हो!

जिसके दो चार पन्ने पलटते ही महेश को नींद आ गई हो।

मन किया कि सिरहाने की टेबल लैंप जलाकर देख ले।

वह टेबल लैंप जलाने जा ही रही थी कि महेश ने करवट बदली।

आंखें बंद थीं। मासूम चेहरे पर नींद की विश्रान्ति में भी परिश्रम का मकड़जाल फैला हुआ था।

किताब सिरहाने की टेबल पर रख दिया।

ड्रेसिंग टेबल पर पड़ी कंधी ले अनायास बालों में कंधी फेरने लगी।

महेश ने एक बार फिर करवट बदली।

बिस्तर पर सोये महेश की बेचैनी उसे छूने लगी।

उसे पता है जब तक वह जाकर बगल में लेटेगी नहीं और उसे पकड़ेगी नहीं वह आराम से सो नहीं पायेगा।

कितना अजीब है! उसे कोई छूता रहे या पकड़े रहे तो वह सो ही नहीं सकती और महेश...!

‘तुम जानती हो ना कि जब तक तुम मेरे ऊपर हाथ नहीं रखोगी, मुझे पकड़ोगी नहीं, मैं शांति से सो नहीं पाऊँगा!’

महेश के कहे शब्द उसे खींचने लगे।

उसने बालों का एक ऊंचा जूड़ा बनाया। पास रखे पानी के जग से दो घूँट पानी पी नाइट बल्ब की रोशनी को बुझा कर बिस्तर पर आ गई।

महेश की पीठ से सटते हुए उसने अपना हाथ महेश के ऊपर रख दिया।

संपर्क : डॉ. शुभ्रा उपाध्याय, खुदीराम बोस सेन्ट्रल कॉलेज, मो. - 9830094793

डॉ. पूरन सिंह

शूद्र की गाय

शांतिपुर गांव में सभी जातियों के लोग रहते हैं। परसों ठाकुर रतनसिंह के यहाँ कथा का कार्यक्रम था। पं. सीतारमण जी कथा बांचने आए थे। कथा का सारा सामान तैयार था लेकिन गायमाता का दूध नहीं आ पाया था।

यूं तो ठाकुर साहब के यहां किसी बात की कमी नहीं थी। जमीन जायदाद से लेकर पशुओं तक की कोई कमी नहीं थी। उनके पास गाड़ी भी थी लेकिन गायमाता नहीं थी। कभी ध्यान ही नहीं दिया था इस ओर ठाकुर साहब ने।

कथा का कार्यक्रम गायमाता के पवित्र दूध के बिना रुका हुआ था तभी किसी ने याद दिलाई, 'अरे रामसहाय के घर से मंगवा लो गायमाता का दूध।'

रामसहाय चमार है। उसका परिवार गाय, भैंस, और बकरियां पालता है। इन्हीं का दूध बेचता है। उसी से परिवार की गुजर-बसर होती है।

ठाकुर साहब ने सुना तो ठकुराइट चीखने लगी, 'बिल्कुल ठीक। रमसइया के यहाँ से मंगवा लो।'

रामसहाय का नाम सुनकर पंडित जी के कान खड़े हो गए थे, 'नहीं...नहीं रामसहाय की गाय का दूध कथा में काम नहीं आएगा।'

'क्यों।' ठाकुर साहब गुर्गए थे।

'क्योंकि रामसहाय शूद्र है और शूद्र की गाय भी शूद्र ही हुई। तब उसका दूध भी तो शूद्र की तरह ही अपवित्र हुआ न।' पंडितजी की बातें सुनकर ठाकुर साहब परेशान थे। कथा का कार्यक्रम रुका हुआ था।

जानवर

बनवारी ईमानदार और नेकदिल होने के साथ-साथ मेहनती भी है। वह मेहनत मजदूरी करता है और अपनी दोनों बेटियों को पढ़ाता भी है। उसकी पत्नी घर गृहस्थी का काम करती है। उसने कुछ बकरे-बकरियां भी पाल ली हैं जिन्हें रोज चराने जाती है जब घर परिवार के कार्यों से मुक्त होती है। बनवारी के घर से कुछ घरों को छोड़कर ही पं. ब्रह्मदत्त रहते हैं। पंडित जी बड़े ही ज्ञानी पुरुष हैं। धर्म-कर्म में पूरा विश्वास है। तिलक-चंदन लगाए रहते हैं।

उस दिन बनवारी की पत्नी घर गृहस्थी का काम निपटाकर अपने बकरे बकरियों को चराने ले जा रही थी कि...कि...उसकी एक बकरी पंडित जी के घर में घुस गई। वैसे तो बनवारी की पत्नी ध्यान रखती है लेकिन चूक हो गई। बेचारी से। बस गजब हो गया था। पंडित जी आग बबूला हो गए थे, “नीच...हरामियों शर्म नहीं है। बकरी घुसेड़ दी मेरे घर में। पूरा घर अपवित्र कर दिया। अब कैसे करें। अकल नहीं है बिल्कुल। कुछ तो ऊँच-नीच का ध्यान रखो, कुत्तों।

“पंडित जी ऊँच-नीच का ध्यान तो रखते हैं लेकिन...लेकिन क्या करें जानवर ऊँच-नीच नहीं जानते..वे हमारे आपकी तरह इंसान थोड़े ही हैं।” कहकर बनवारी की पत्नी अपनी बकरी को पंडित जी के घर से बाहर लाने की कोशिश करने लगी थी।

सिलसिला

शमशेरसिंह सेना का सबसे जाबाज सिपाही था। सेना के आला अफसर उसकी बहादुरी की कसमें खाते थे तो दुश्मन उसके नाम से थरथर कांपते थे लेकिन रणक्षेत्र तो रणक्षेत्र ठहरा। एक दिन एक गोली उसके सीने में लगी और वह हमेशा-हमेशा के लिए शांत हो गया था। देश ने एक बहादुर सैनिक खो दिया था। जब

उसका पार्थिव शरीर उसके घर लाया गया तो घर परिवार में कोहराम मच गया। परिजनों के साथ आए सेना के आला अफसरों ने उसे परिवार को सांत्वना बधाई दी, “शमशेर का बलिदान खाली नहीं जाएगा..हम खून का बदला खून से लेंगे।” इतना कहकर वे सभी चले गए थे।

सांझ-सवेरे मां का रोना, अकेले में पिता की आंखों का सूनापन और रात में पत्नी का सिसकना, बच्चों का पापा को याद कर-करके अपनी मां से प्रश्न करना ही रह गया था। अब तभी एक दिन कुछ अफसर आए थे शमशेर सिंह के घर।

“हमने शमशेर के बलिदान का बदला ले लिया। हमने उसके बदले में दुश्मन सेना के चार सैनिकों को मार गिराया।” और सांत्वना बंधाकर चलने लगे तो शमशेर की मां ने पूछ लिया था, “साब मेरा तो चला गया था अब आपने और चार को मार डाला...ऐसा करने से मेरा शमशेर तो वापस नहीं आ जाएगा...क्या अब दुश्मन सेना चार के बदले में सोलह मारेगी... और फिर आप...और फिर वह। यह सिलसिला कब तक चलेगा साब...आखिर कब तक...”

शमशेर सिंह की मां के प्रश्नों पर सेना के आला अफसर मुंह फाड़े खड़े थे।

नमाज

डॉक्टर अल्ताफ रजा साहब के हाथों में जश है। जिस भी मरीज पर हाथ रख दें तो वह सोना को हो जाता है। इतना ही नहीं वे एक योग्य डाक्टर होने के साथ-साथ अल्लाह में भी पूरा विश्वास रखते हैं। पांचों वक्त की नमाज पढ़ते हैं। सभी के साथ प्यार और अपनत्व से रहते भी हैं।

शनीचर वाले दिन खून में लतपथ एक व्यक्ति उनके पास आया। आया क्या उसे कुछ लोग लेकर आए थे उसमें कहां हिम्मत थी! हां, याद आया, उसे

कोई रहीसजादी कार से टक्कर मारकर भाग गई थी। संयोग की बात, उसी समय डाक्टर साहब का नमाज का समय हो गया था। खून में लतपथ व्यक्ति के साथ आए कुछ लोगों ने डाक्टर साहब से याचना की, ‘... साहब इसकी जान बचा लो, आपका करम होगा।’

‘जुर्रुर-जुर्रुर। पहले नमाज अता कर लें फिर देखते हैं।’ उनकी वाणी रसमिश्रित थी।

‘साब देर न हो जाए कहीं।’ खून में लतपथ व्यक्ति के साथ आए कुछ लोगों ने शंका जताई थी।

‘आप फिक्र न करें।’ डाक्टर साहब चले गए थे नमाज पढ़ने।

खून में लतपथ व्यक्ति फड़फड़ाता रहा था। रक्त निरंतर बह रहा था और...और...कुछ ही पलों में उसने दम तोड़ दिया था। तब तक नमाज पढ़कर डाक्टर साहब भी आ गए थे, ‘लाइए अब देखते हैं...दरअसल नमाज का समय निकल जाता तो...यू नो नमाज पहले।’

उनकी यह बात सुनकर खून में लतपथ व्यक्ति के साथ आए लोगों में से कोई बोल पड़ा था, ‘नहीं...नहीं सर...नमाज का समय निकलता या नहीं...मैं नहीं जानता..लेकिन इसका समय ज़रूर निकल गया।’ इसके आगे वह व्यक्ति न बोल पाया था और जोर-जोर से बिलखने लगा था।

बेदखल

वह उस उम्र में विधवा हुई थी जब आजकल की लड़कियां शादी के बारे में सोचती भी नहीं हैं। पति की मृत्यु के समय पेट से थी। बाद में बेटा पैदा हुआ। पति सरकारी सेवा में था सो उसकी जगह पर नौकरी मिल गई। बुनने लगी जीवन के ताने-बाने। तिनका-तिनका

जोड़ने लगी और बेटे को बड़ा करने में अपना अस्तित्व ही भूल गई।

बेटा बड़ा हुआ तो उसकी शादी कर बहू ले आई। घर की देहरी चूम ली मानो एक बार को लगा कि उसके जीवन में खुशियां आ गई हों।

समय गुजरा और बहू अपने असली रूप में आ गई।...और एक दिन उसी देहरी से जिसे चूमा था उसने, धक्के मारकर निकल दिया। उसने बेटे की ओर कातर निगाहों से देखा तो बेटे ने निगाहें फेर ली या यह कहें कि बेटा बहू के आंचल में मुंह छिपाकर बैठ गया। अब कोई आस नहीं रही।

शिथिल पड़े हाथ-पांव अब सहारा ढूँढते थे और जो सहारा होने चाहिए थे उन्हीं ने बेसहारा कर दिया था। मृत्यु मांगने पर नहीं मिलती। उसे भी मृत्यु नहीं आई।

अपनों से दुत्कार के बाद, उसने जीने की कोशिश की। वह कार्यालय गई और अधिकारी के समक्ष बिखर गई। अधिकारी के स्नेह, ममता और अपनत्व से भीगे स्वर ने उसे हिम्मत दी...जीने का सहारा दिया।

और ठीक अगले ही दिन,

वह वकील से बात कर रही थी। न जाने कौन कह रहा था, “उसने अपने बेटे को अपनी सारी सम्पत्ति से बेदखल कर दिया है।”

मन नहीं माना सो पूछ लिया था, “क्या आपने अपने बेटे को अपनी सारी सम्पत्ति से बेदखल कर दिया है।”

“हां।” वह बोली।

“अपने आप से भी।” मैं फिर पूछ बैठा।

इस बार वह कुछ न बोली। उसकी आंखें बोली थीं जिसमें सदियों की नमी थी।

संपर्क : डॉ. पूरन सिंह, 240, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-110008

मो. - 9868846388

राणा प्रताप

तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक

समाज विज्ञान का कहना है कि जन्म से मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं है। मनुष्य चूँकि परिवार और समाज के साथ रहता है, अतः वह भाषा के जरिए सब कुछ सीखते हुए मनुष्य बनता है। पशुओं के साथ भाषा का 'एक्स्ट्रैक्शन' नहीं होता। अतः वह पशु ही बना रहता है।

बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता है त्यों-त्यों भाषा के जरिए समाज, साहित्य, संस्कृति और सभ्यता के बारे में जानना-समझना शुरू करता है। धर्म के जरिए नैतिकता और अनैतिकता की बातों को भी समझने की कोशिश करता है। साथ ही सामाजिक बंधनों अर्थात् रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों, कर्मकांड की बातों को भी अपनाता रहता है तब वह प्रगतिशीलता और प्रगतिगामिता से परिचित नहीं होता। ज्ञान के नाम पर सब कुछ हासिल करता रहता है।

इसलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि आपके दिमाग में ज्ञान का कचरा जो हर रोज़ इक्कटूठा होता रहता है, उसकी सफ़ाई आप कैसे करते हैं? सफ़ाई करते भी हैं या नहीं?

दरअसल, इस कचरे के बारे में कोई सोचता ही नहीं तो सफ़ाई कैसे होगी?

महेश्वर 'नवजनवादी सांस्कृतिक मोर्चा' का सचिव था। तेलुगु के क्रांतिकारी कवि चेरावंडा राजु की मृत्यु हो चुकी थी। वह उन्हीं से संबंधित एक बयान 'कथांतर' पत्रिका में छपवाना चाहता था। मैंने कहा "लिखकर दे दो।" वह एक पेज पर वक्तव्य लिखकर ले आया।

राजु के स्वर्गीय लिखने पर मैं चौंका! मैंने पूछा, "यह क्या है? हमलोग क्रांतिकारियों के लिए स्वर्गीय शब्द का प्रयोग तो कभी करते नहीं।"

उसने पूछा “क्यों?”

“इसलिए कि यह शब्द हमें भाववाद के साथ खड़ा करता है। स्वर्ग-नरक की धारणा के साथ हम अनायास जा खड़े होते हैं। यह तो गलत है। पुरानी धारणाओं को तो दिमाग से निकालना होगा। दिमाग की खिड़की खोलनी होगी। कचरे को बाहर फेंकना होगा।”

महेश्वर के सहमत होने के बाद लिखा जाता है—“क्रांतिकारी कवि चराबंडा राजु नहीं रहे।”

कहने का आशय यह है कि सचेतना हर समय और हर कहीं बनी रहनी चाहिए। शब्द सार्थक तभी होते हैं जब वे तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक समझ बूझ के साथ प्रयोग में लाए जाते हैं।

लोहे की बेड़ी

बात उन दिनों की है जब ‘जनवाणी’ टीम का नया-नया गठन हुआ था। टीम के कलाकारों को दूसरे गांव में नाटक करने जाना था। इसी बीच एक लड़के का तिलक हो गया। तिलक शादी के पहले की रस्म को कहते हैं। माता-पिता ने लड़के को बरजा। अब तुम्हें नदी-नाले पार नहीं करना है। बड़ी मुश्किल सामने खड़ी हो गई। दूसरे गांव नाटक करने जाना था। बीच में नदी पड़ती थी। नदी पार करे तो कैसे? साथियों ने बहुत समझाया। लेकिन उसका मन नहीं माना। टीम को तो हर हाल में नाटक करना था। उसने आनन-फानन में एक दूसरे लड़के को तैयार किया।

जब मैं हावड़ा में ‘हिरावल’ टीम के कलाकारों का क्लास ले रहा था। इस घटना का जिक्र किरते हुए बताया कि उस लड़के के पांव में अगर लोहे के बेड़ी-होती तो बड़ी आसानी से उसके संगी-साथी किसी लोहार को बुला लाते और उसकी बेड़ी कटवा देते। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। दरअसल, अंधविश्वास भी बेड़ी से ज़्यादा मजबूत होती है। उसे तत्काल नहीं काटा जा सकता। लेकिन समझदारी विकसित करके उसे भी काटा जा

सकता है।

तभी वह लड़का जो मीटिंग में मौजूद था। बोल पड़ा—“वह लड़का मैं ही हूं सर।”

मैंने पूछा—“क्या तुम अब भी वहीं खड़े हो?”

“नहीं सर! अब मैं दिमागी गुलामी से मुक्त हो चुका हूं।” उसका जवाब था।

कहने का आशय यह है कि यह जो अंधविश्वास की बेड़ी है अथवा दिमागी गुलामी है, उसे तो सचेतन प्रयास के जरिए ही, अपनी समझदारी बढ़ाकर उससे मुक्त हुआ जा सकता है।

रेणु और उनकी नागरिकता

ज़माना 1974 आंदोलन का था। तब मैं ‘प्रगतिशील साहित्य’ नामक पत्रिका के किसी कहानी अंक का संपादन कर रहा था। योजना बनी चौहत्तर आंदोलन को लेकर कुछेक कथाकारों से बात कर ली जाए। कथाकार मदन मिलन हमारे साथ थे।

सर्वप्रथम, हमलोग हिमांशु श्रीवास्तव के पास गए। उन्होंने एक वाक्य में मन्दा कर दिया, “आई डाँट लाइक अड्डेबाजी।” जबकि उसके ‘लोहे के पंख’ उपन्यास की बड़ी तारीफ सुन रखी थी। यशपालजी को यह उपन्यास ‘गोदान’ से आगे का लगा था। लेकिन एक जीवंत सामाजिक आंदोलन से दूरी, यह बात हमें अच्छी नहीं लगी।

इसके बाद मैं फणीश्वर नाथ रेणु के पास पहुंचा और सीधा सवाल किया, “आप इस आंदोलन में एक नागरिक की हैसियत से शामिल हैं या एक साहित्यकार की हैसियत से?”

उन्होंने तत्काल कहा, “देखिए, पहले मैं एक नागरिक हूं और नागरिक का कर्तव्य देश के लिए सर्वोपरि होता है। अतः इस आंदोलन में मैं एक नागरिक के रूप में शामिल हूं।

साहित्यकार तो बाद में हूं।”

“इस आंदोलन से समाज में क्या कोई जागरूकता आई है?” मेरा दूसरा सवाल था।

“आप जागरूकता की बात पूछ रहे हैं। मैं तो देख रहा हूँ कि एक रिक्शावाला भी एक माचिस के लिए अधिक पैसे नहीं देना चाहता। इसे कम समझते हैं?”

कहने का आशय यह है कि आज हम अपनी नागरिकता की बात ही भूल गए हैं। हम कवि, कहानीकार और उपन्यासकार बन बैठे हैं। आंदोलन को मजदूरों-किसानों और नौजवानों के लिए छोड़ रखा है। फिर ऐसी नागरिकता का क्या मतलब?

काले दिनों की उजली याद

सन् 1974 की बात है। छात्रों का आंदोलन तब ज़ोरों पर था। जयप्रकाश नारायण बेगूसराय से पटना आ रहे थे। स्टेशन पर कुछ छात्रों ने छोती और जनेऊ भेंट किया।

जेपी ने तत्काल कहा, “मैं इस योग्य नहीं हूँ। मैं शुद्र हूँ। मुझे जनेऊ धारण करने का अधिकार नहीं है।”

अपने नेता की ऐसी बातें सुनी तो सभी छात्र सकते में आ गए। उन छात्रों ने जेपी को बिना बताए अपना-अपना जनेऊ तोड़कर स्टेशन पर ही फेंकना शुरू किया।

इस तरह अपने-आप छात्र-आंदोलन के साथ जनेऊ तोड़ो आंदोलन भी जुड़ गया। वहाँ मनुवाद या ब्राह्मणवाद की कोई चर्चा नहीं थी। सवाल सिर्फ यह था कि जिस निर्जीव चीज़ को हमारे नेता धारण नहीं कर सकते, उसे हमलोग धारण कैसे करें?

कहने का आशय यह है कि आप मनुवाद या ब्राह्मणवाद को जितनी गालियाँ दे लो इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। जब तक आप जन-वैज्ञानिक शिक्षा के साथ पुनर्संस्कार आंदोलन नहीं चलाते, कुछ भी परिवर्तन नहीं होने वाला।

काले दिनों की यह उजली याद है।

ईश्वर और किताबें

वर्जिनिया वुल्फ की जुबानी एक बहुत ही दिलचस्प कहानी सुनने को मिली। इसे जरा आप भी सुनिए—

यह कयामत के दिन की बात है। ईश्वर पृथ्वी से आए लोगों को धरती पर किए गए उनके कर्मों के अनुसार पुरस्कार बांट रहे हैं, किसको क्या देना है, वे पीटर से पूछते हैं? पीटर बताता जाता है और ईश्वर पुरस्कार देते रहते हैं। फिर कुछ लोग अपने हाथ में पुस्तक लिए आते हैं। ईश्वर पीटर से पूछते हैं, “इनको क्या देना है?”

पीटर चुप रहता है। थोड़ी देर सोचता है। ईश्वर कुछ देर के लिए हैरान हो जाता है! फिर पीटर कहता है, “हम इनको कुछ नहीं दे सकते। ये लोग धरती पर किताबें पढ़ते रहते हैं। इनको सब कुछ मिल गया है। इन्होंने हर चीज़ का अनुभव उठा लिया है। अब, इनकी कोई लालसा नहीं बची है। अब, इनका कोई सपना अधूरा नहीं है।”

ईश्वर हैरान-परेशान सोचता रह जाता है कि ईश्वर से भी ज्यादा महत्वपूर्ण चीज़ दुनिया में मौजूद है!

कहने का आशय यह है कि पुस्तकें हैं तो उजाला है! हमें तो उजाले के साथ ही चलना होगा ताकि आने वाली नई पीढ़ी उजाले का अनुशरण कर सके।

कविता और किसान

चाणक्य ने कवियों को गांव में न घुसने देने के लिए कहा था। क्यों भाई, क्यों?

इसलिए कि कवि लोग गांव में जाएंगे तो वे अपनी कविताओं के जरिए किसानों को भड़का देंगे। फिर वे लोग टैक्स देने में आना-कानी करेंगे।

दूसरी जनश्रुति। गांव में अगर किसी का बेटा कवि हो गया तो समझिए नकारा हो गया। वह किसी काम का नहीं रहा। आलोक धन्वा के साथ भी ऐसी ही बात थी। बड़ा भाई डॉक्टर और छोटा भाई नकारा यानी कवि।

कौन जानता था कि दिनकर के प्रभाव में एक दिन नित्यानंद सिंह आलोक धन्वा बन जाएगा। दिनकर की कविता 'आलोकधन्वा' तब इंटर के कोर्स में लगी थी। मैं उसे बड़े मनोयोगपूर्वक पढ़ाया करता था। बाद में आलोक भी मित्र बने और उनकी कविताएं भी। हमारे सांस्कृतिक मंच के तो तब वे अभिन्न अंग थे।

जन संस्कृति मंच, बिहार का सम्मेलन पटना वि. वि. पुस्तकालय के ऊपर हॉल में था। बाहर के सभी बड़े संस्कृतिकर्मी पधार चुके थे। आलोक को आने में देरी हो रही थी। मैंने अपना स्कूटर उठाया और भिखना पहाड़ी वाले डेरे में पहुंच गया। देखा, उनके पिता भी वहीं बैठे हैं

मैंने आलोक से कहा, “जल्दी चलो, देर हो रही है।”

“अभी तो मुझको 100 डिग्री बुखार है। मुझसे जाना न होगा।”

“अरे, आप चीफ गेस्ट हो। नहीं जाएंगे तो कैसे होगा?”

हम दोनों की बातचीत उनके पिता भी सुन रहे थे। उन्होंने आलोक से कहा, “आलोक, तुम्हें वहां जाना चाहिए। सभी लोग वहां तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।”

आलोक मेरे साथ नीचे उतरे। मैंने उन्हें स्कूटर पर बिठाया और फुर्र..

दूसरे दिन आलोक का टाइम्स ऑफ इंडिया में बड़ा-सा फोटो छपा। फोटो देखकर पिता का हृदय जुड़ा गया।

कहने का आशय यह है कि पिता की नज़रों में कवि अब नकारा नहीं, सलेब्रेटी पर्सन बन चुका था। उनका स्वागत तो होना ही चाहिए।

मो. - 9955814269

ओ दुनिया के रखवाले, सुन दर्द भरे मेरे “नाले”

कैलाश मण्डलेकर

एक बड़ा सा नाला है जो शहर के बीचों बीच बहता है। पुराना नाला है। कितना पुराना है यह जानने के लिए हमें नाले में घुसने की जरूरत नहीं है, इसका पता तो उसके इतिहास में घुसकर भी लगाया जा सकता है। यद्यपि नाले में न घुसकर उसके इतिहास में घुसा जाए तो पता लगता है कि वह शहर से भी पुराना है। नाले का इतिहास बताने के लिए आदमी का इतिहासकार होना जरूरी नहीं है। यही कारण है कि लोग बिना इतिहासकार हुए ही बताने लगते हैं कि यहाँ कुछ नहीं था, सिर्फ नाला था, और तीन चार कच्चे मकान थे जो नाले के किनारे पर बने थे। जबकि यह शहर बहुत बाद में बसा है। ये लोग चूँकि इतिहासकार नहीं हैं इसलिए उनकी जानकारी पुख्ता है। वे नहीं जानते कि एक मामूली से नाले में ऐसा क्या आकर्षण रहा होगा कि धीरे-धीरे यहाँ एक बहुत बड़ा शहर बस गया। कुछ लोगों की मान्यता है कि यदि नाले के किनारे पर खुदाई की जाए तो भीतर से किसी किले आदि के अवशेष भी मिल सकते हैं। हो सकता है कोई पुराना नगर भी बरामद हो जाए। एक बुजुर्ग ने बताया कि पौराणिक काल में, पांडव तथा महाभारत के कुछ अन्य पात्र अपनी फेमिली सहित इस नगर में ठहरे थे। हालांकि महाभारत के पात्रों का इस नाले से सीधा कोई संबंध नजर नहीं आता। सरकार खुद भी ऐसे प्रसंगों पर यकीन नहीं करती। यही कारण है कि वह नाले की खुदाई नहीं करना चाहती। खुदाई के दौरान खुदा न खास्ता यहाँ एक और शहर निकल आया तो उसकी व्यवस्था कौन देखेगा। खुदाई तो बहुत दूर की बात है पुरावशेषों के डर से वह नाले की गाद भी नहीं निकालना चाहती। जबकि कुछ विघ्नसंतोषियों का मानना है कि गाद निकालने का सम्बन्ध पुरातत्व से नहीं है, बल्कि बजट से है जो या तो रिलीज नहीं हुआ या फिर किसी दूसरी मद में खर्च हो गया। लोग चाहे तो इस मामले में आर. टी. आई. या जनहित याचिका लगाकर सही जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

यदि हम इतिहास में न उलझें और विशुद्ध वर्तमान की बात करें तो तो फिलहाल इस नाले का सबसे बड़ा आकर्षण यह है कि इसमें बाढ़ आई हुई है। बाढ़ देखने का अपना मजा होता है। जिन शहरों में नदी नहीं होती वहाँ के नागरिक नाले की बाढ़ देखकर ही संतुष्ट हो लेते हैं। पिछली दफे स्थानीय प्रशासन ने नाले की गाद निकाल दी थी उस साल नाले में बाढ़ नहीं आई और कई लोगों की उम्मीदों पर पानी फिर गया। नाले में बाढ़ आती है तब पानी उफनकर लोगों के घरों में घुस जाता है और खटिया, बिस्तर आदि बहने लगते हैं। बाढ़ देखने वालों को ऐसे दृश्य मनोरम लगते हैं। जिस नाले को गर्मियों में क्षुद्र समझकर मच्छर आदि के लिए कोसा जाता है, वही नाला बरसात में विशाल जलनद बनकर लोगों का मनोरंजन करने लगता है। इस नाले के नाना रूप हैं। तुलसी ने कहा है 'क्षुद्र नदी भरी चली उतराई? जिमि थोरेऊ धन खल इतराई।' लेकिन यह नाला तो क्षुद्रातिक्षुद्र है पर इतराने के मामले में बड़ी-बड़ी नदियों को मात करता है। जो भी हो, सरकार लोगों को निराश नहीं करना चाहती इसलिए उसने कई वर्षों से इस नाले की गाद नहीं निकलवाई।

इधर पिछले तीन चार दिनों से लगातार बरसात हो रही है। बाढ़ देखने वालों के लिए यह अच्छी खबर है। उन्हें पता रहता है कि कितनी बरसात में नाला पूरा आयेगा। बाढ़ का उत्साह उन्हें रात भर सोने नहीं देता।

गूँजता है नाला ए महताब आधी रात को

टूट जाते हैं सुहाने ख्वाब आधी रात को।।

शेर में प्रयुक्त नाला ए महताब का अर्थ भले ही इस बरसाती नाले से न हो पर किनारे पर बसे लोगों के ख्वाब तोड़ने के मामले में यह भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बाढ़ का सर्वाधिक रोमांचक दृश्य वह होता है जब कोई मनुष्य या मवेशी डूबते हुए अपनी जान बचाने को व्याकुल दिखाई दे। लोग ऐसे दृश्यों के इन्तजार में घंटों खड़े रहते हैं। मौत से संघर्ष

और बचाव के दृश्य अब मनोरंजक होते जा रहे हैं। सड़क पर पीट-पीट कर मार डालने और आत्महत्याओं के वीडियो से साइबर समाज गुलज़ार है। कुछ तो इस बात की प्रतीक्षा में भी खड़े रहते हैं कि नाले के किनारे वाली देशी शराब की दूकान डूब जाए और शराब की बोतलें बहने लगे। एक बूढ़े आदमी ने बताया कि सन् 64 की बाढ़ में यह कलाली बह गई थी। तब वे जवान थे और सिर्फ एक बोतल के पीछे उन्होंने अपनी जवानी तक को दाँव पर लगा दिया था। यानि बोतल पकड़ने के लिए नाले की बाढ़ में कूद गए थे।

‘ऐसा बरसा टूट के बादल डूब चला मयखाना भी।’

नालों, रपटों की ऐसी मनभावन छवियाँ गांवों अंचलों को भी बहुत लुभाती हैं। बरसात में गांवों के नाले तो लोगों को उस फिल्मी गाने की तरह अपनी ओर खींचते हैं जिस में कहा गया है कि-“मुझे डोर कोई खींचे तेरी ओर लिए जाए।” तेरी ओर मतलब नाले की तरफ। लोग मोटर बाइक से रपटा पार करते हुए कई बार बीच नाले में विलुप्त हो जाते हैं। सुबह जब तलैया में उनकी देह तैरती हुई नजर आती है तब घर वालों को यकीन होता है कि भइया साब, दरअसल रात को नाला पार करने के एडवंचर में मुब्तिला थे।

बाढ़ देखने वाले प्रायः सुबह से ही पुलिया पर इकट्ठे होने लगते हैं। छतरी लगाए हुए, रेनकोट पहने हुए। अबाल वृद्ध स्त्री पुरुषों का एक आकुल जत्था प्रायः सड़क के ट्रैफिक को रोक लेता है। टी. वी. की खबरिया चैनलों से ऊबे हुए लोग पानी को उसके विकराल रूप में देखना चाहते हैं फिर वह नाले का गंदा पानी ही क्यों न हो? बाढ़ में नाले के किनारे के लोगों की गृहस्थी बहती है। कई बार अपनी खटिया और मवेशियों के साथ किनारे पर रहने वाले लोग भी बह जाते हैं। बहते हुए लोग बाढ़ देखने वालों का काफी मनोरंजन करते हैं। पिछले दिनों नाले की बाढ़ में लोगों को एक सी वस्तु नजर आई जिसका चेहरा भले न

दिखाई दिया हो पर सींग जरूर नजर आये। वह वस्तु गधा हरगिज नहीं थी क्योंकि उसके सिर पर सींग नहीं होते। हाँ, वह मोटर साइकिल का हैंडिल भले ही हो सकता है जो सींग की तरह दिखाई पड़ा हो। इस बारे में अभी प्रामाणिक तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि बहने वाली चीज एक क्षण में विलुप्त हो गई। इस चीज पर लोगों के अलग अलग तबसरे हैं। किसी ने कहा कि वह बकरी थी जो कान हिला रही थी, जब कि एक बरमूडा पहने सज्जन ने लोवर पहने हुए आदमी को कहा कि वह वास्तव में एक मोटर साइकिल थी जो नाले के किनारे खड़ी थी। मोटर साइकिल पर कोई बैठा था या नहीं इस बात का फैसला होना अभी बाकी है।

बरसात के बीतते ही इन नालों का बहाव थम जाता है। ये बिन बुलाये मेहमान की तरह शहर के बीचों बीच डेरा डाले रहते हैं। नाले के नजदीक रहने वाले लोग बताते हैं कि इन थमे हुए नालों से नगर का

सौन्दर्य बढ़ जाता है जबकि कुछ लोग यह भी कहते हैं कि नाले के किनारे मच्छर भी उसी तादाद में बढ़ते हैं जिस तादाद में सौन्दर्य बढ़ता है। जो भी हो, कबीरदास जी ने कहा है कि जो लोग नाले की बाढ़ में डूबते हैं वे वास्तव में भवसागर को पार कर जाते हैं लेकिन जो डरकर किनारे पर बैठे रहते हैं वे इस मोक्ष से वंचित रह जाते हैं। “मै बपुरा डूबन डरा रहा किनारे बैठ”। लेकिन कबीरदास जी को पूरी जानकारी नहीं है, हकीकत यह है कि जो बाढ़ में डूबने से बच जाते हैं वे बाद में डेङ्गू के मच्छरों के काटने से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ये शहरी नाले किसी को निराश नहीं करते। उधर देखिये कतिपय बुजुर्ग लोग थमे हुए पानी में मछलियों को दाना चुगा रहे हैं जबकि दूसरी तरफ शाम की तरकारी के लिये चंद नवयुवक काँटा डालकर उन्हीं मछलियों को पकड़ रहे हैं। कांटे वालों और दाने डालने वालों के बीच इस नाले ने प्रेम और सौहार्द का ऐसा सेतु निर्मित कर दिया है जो वर्णनातीत है।

संपर्क : कैलाश मंडलेकर 38 जसवाड़ी रोड बैंक ऑफ इंडिया के पास, खंडवा म. प्र. 450001

मोबाइल : 9425085085

हँसने वाले दिमागी लोग

गिरीश पंकज

लोग उनको हँसने वाले शख्स के रूप में पहचानते हैं। हँसी का पूरा गोदाम है उनके पास। नगर सेठ हैं वह लेकिन बंदे की खासियत यही है कि वह बिल्कुल सुबह-सुबह ही हँस पाता है, वो भी हास्य-क्लब में। आजकल केवल बगीचों में चलने वाले हास्य क्लबों में जा कर हँसने का रिवाज़-सा चल पड़ा है। क्योंकि इन दिनों किसी के पास हँसने की फुरसत ही नहीं। वैसे देखा जाए तो कुछ लोगों के पास मरने की भी फुरसत नहीं रहती। यह और बात है कि ऐसा कहने वाले एक दिन अचानक न जाने कैसे फुरसत निकाल कर निकल लेते हैं दुनिया से। कुछ बंदे तरह-तरह के घोटालें, साजिशों और आगे बढ़ने के लिए किस्म-किस्म के खटाराग करने के चक्कर में ही जीवन भर लगे रहते हैं इसलिए बेचारे दिनभर हँस नहीं पाते। मजबूरी में उन्हें एकदम अर्ली मॉर्निंग, बोले तो सुबह-सुबह, किसी हास्य-क्लब जा कर हँसना पड़ता है। वे जितनी देर हँसते हैं, उतने घंटे की ऊर्जा उनमें बनी रहती है।

हँसने वाले जिस शख्स के बारे में बता रहा हूँ, उनका बड़ा नाम था। उसके दर्शन के लिए मैं एक दिन हास्य क्लब जा पहुँचा। देखा, महाशय हे..हे...हो..हो करते हुए हँस रहे हैं। व्यायाम भी किए जा रहे थे। सेहत उनकी ठीक-ठाक थी। हँसने के कारण उनकी सेहत भी ठीक रहती है, ऐसा लोगों ने बताया था। हास्य क्लब के हँसने का कार्यक्रम खत्म हुआ, तो मैं उनके पास पहुँचा।

उन्होंने मुझे घूर कर देखा। लगभग गुस्से में। मैं घबरा गया। सोचने लगा कि क्या ये वही शख्स है जो कुछ देर पहले हँस रहा था।

मैंने कहा, “नमस्कार।”

उन्होंने बहुत महान किस्म के लोगों की तरह केवल सिर हिला दिया।

मैंने कहा, “आपसे कुछ बात करनी है।”

उन्होंने रुखे स्वर में कहा, “अगर चंदा-फंदा माँगने आए हों, तो बता दूँ कि वो मैं नहीं दूँगा।”

मैं हँस पड़ा। वे मुझे चौंक कर देखने लगे।

मैंने कहा, “मैंने आपकी बड़ी तारीफ सुनी थी कि आप कमाल का हँसते हैं और लोगों को हास्य-व्यायाम भी सिखाते हैं। हँसने वाले लोग निर्मल हृदय के हो जाते हैं इसलिए सोचा दर्शन कर लूँ।”

मैंने कुछ बड़ी-सी बात कह दी थी। सामने वाले को फँसना ही था। निर्मल हृदय वाला जो कह दिया था। अब वे हल्की-सी मुस्कान बिखरते हुए बोले, “बस, ऐसे ही। मगर आपको किसने बता दिया?”

मैंने कहा, “सुना था किसी से। दरअसल मैं भी हँसना चाहता हूँ लेकिन जीवन की आपाधापी में हँसने का अवकाश ही नहीं मिलता। जैसे ही हँसने की कोशिश करता हूँ, तो बीमार पिता का चेहरा सामने आ जाता है। उससे उबरता हूँ, तो बेटी की शादी की चिंता सताने लगती है। घर बनाने का सपना तैरने लगता है। कुल मिला कर बात यह है कि जैसे ही हँसने की सोचता हूँ, आर्थिक चिंताएँ आ कर डरा देती हैं। इसीलिए आपसे पूछने आया था। हँसी और स्वास्थ्य के कुछ टिप्स तो बताइए न।”

हँसी सिखाने वाले ने गंभीर हो कर कहा, “हँसने को ले कर ज्यादा तनाव नहीं पालने का। दिन भर तो मैं भी नहीं हँसता। गंभीर रहता हूँ। मेरे कारण लोग रोते हैं। मैं तो सुबह-सुबह हास्य क्लब में आ कर हँस लेता हूँ। उछल-कूद भी कर लेता हूँ। इससे मेरी सेहत बनी रहती है। फिर दिन भर मुझे जो करना होता है, करता हूँ। तब हँसने की जरूरत ही महसूस नहीं होती।”

तभी किसी का फोन आ गया, तो सज्जन गुप्ते में बोले, “निबटा दो साले को। मानता है तो ठीक वरना जैसे हम करते हैं, वैसा करो। मैं अपने रास्ते के हर रोड़े को हटा देने वाला हूँ। समझे न?”

इतना कह कर उसने फोन काट दिया। पता नहीं, ये किसको निबटाना चाहता है। उसकी बात सुनकर

मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम होने लगी। मैं खिसकने की मुद्रा में आ गया।

उसने मेरा हाथ पकड़ा और कहने लगा, “हँसना कठिन काम नहीं है। आप यहाँ हास्य क्लब में आइए। मैं कुछ टिप्स दूँगा। बाकी दिन भर अपना काम कीजिए। जो भी करते हों। सही-गलत। जैसा भी काम हो। किसी का मर्दर भी करवाना हो, तो टेंशन नहीं होगी। किसी को गाली भी देनी हो तो तनाव से नहीं गुजरना होगा। रिश्तत लेनी या देनी हो तो भी बिंदास-भाव से यह कर्म किया जा सकता है। सुबह-सुबह की हँसी बड़े काम की चीज है। मेरा वर्षों का यही अनुभव है। हँसना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। बस, एक बात का ध्यान रखना कि हँसी को दिल से नहीं, दिमाग से जोड़ कर चलो। दिल से हँसोगे, तो तुम भी आदमी बन जाओगे, तब जीवन जीने में बड़ी तकलीफ होगी। हर वक्त नैतिकता, आदर्श, चरित्र और मूल्य आदि बेकार की बातें दिमाग में हावी रहेंगी। इसलिए हँसी को केवल दिमाग तक सीमित रखो, तब तुम सारे खुराफात करके सफल आदमी बन सकते हो। जीवन दिल से नहीं, दिमाग से चलता है। मैं दिमाग से चलता हूँ, दिल से नहीं। हास्य क्लब में आने वाले लोग दिमाग वाले हैं। दिल वाले एक-दो लोग हमी हैं, मगर उनसे अपनी नहीं बनती। ये टुच्चे लोग होते हैं। आदर्शवादी। पाखंडी। हिप्पोक्रेट। इसीलिए कंगाल हैं। हम लोग मालामाल हैं क्योंकि दिल का यहाँ कोई लफड़ा ही नहीं। तुम भी दिल नहीं, दिमाग से काम लो। यहाँ आओ, और खूब हँसो। और दिन में वे सारे काम करो, जो तुम्हें नहीं करने चाहिए। तब देखना तुम पिताजी की बीमारी से घबराआगे नहीं, उसके लिए पैसों को इंतजाम भी कर लोगे। बेटी की शादी की चिंता भी नहीं रहेगी। क्योंकि इतनी दौलत कमा लोग कि टेंशन फ्री हो जाओगे। मैं टेंशन फ्री हूँ। भ्रष्टाचार को शिष्टाचार समझो और क्रूरता को जीवन की जरूरत। अच्छा, चलता हूँ। कल से हमें ज्वाइन करो और जिंदगी को फाइन करो।”

वे लम्बा ज्ञान दे कर चले गये।

फिर बगीचे में एक-दो और लोगों से मिला। ये सब हँसने की कला में पारंगत थे। उनका भी यही फंडा था कि हँसने के कारोबार को बगीचे तक ही सीमित रखो क्योंकि कहा जाता है कि निरंतर हँसनेवाला धीरे-धीरे निर्मल मन वाला होने लगता है। निर्मल मन वाला पाप से बचता है। ...गाली देने से बचता है। ...गलत काम से डरता है। मतलब यह कि वह नैतिकता के साथ जीवन जीना चाहता है। इसलिए ध्यान रखो कि हँसना एक क्रिया है और जीवन जीना बिल्कुल दूसरी प्रक्रिया।

लोगों के भयंकर किस्म के व्यावहारिक विचार सुन कर मैं घबरा गया। जीवन में हँसी की तलाश में आया था और उदास हो कर लौट गया। अब तक भटक रहा हूँ कि जीवन में हँसी का वर्चस्व कैसे बढ़े।

कुछ दिन बाद एक समाचार पढ़ा कि हास्य-क्लब में हँसने वाले सज्जन किसी के साथ गाली-गलौज और मारपीट के आरोप में गिरफ्तार हो गए हैं। मुझे लगा

कि ऐसा हँसना तो अपने से बिल्कुल भी न हो पाएगा। लेकिन हँसना तो पड़ेगा। जीवन को लम्बा खींचना है, तो हँसी जरूरी है, मगर लफड़ा यहीच्च है कि हँसने का सीधा असर मेरे दिल पर होने लगता है। मैं दिल को ठीक-ठाक रखना चाहता हूँ, लेकिन अनुभव यही बताते हैं कि दिल दुरुस्त रहे तो आदमी भला हो जाता है लेकिन उसे तरह-तरह की तकलीफें भी भोगनी पड़ती है। दिलविहीन आदमी दिमागदार होते हैं और सदा सुखी रहते हैं।

इन दिनों इसी उहापोह में हूँ कि करूँ क्या?

हास्य क्लब ज्वाइन कर लूँ?

एक बार सुबह-सुबह हँस कर देखूँ तो सही कि मुझ में कैसे परिवर्तन होते हैं। नकारात्मक या सकारात्मक। नकारात्मक हुए तो फलानेजी जैसा बन जाऊँगा और सकारात्मक हुए तो कोई बात नहीं, मनुष्य बन कर तकलीफें झेलता रहूँगा, और क्या। अब जिसकी जैसी किस्मत।

संपर्क : सैक्टर-3 , एचआईजी-2, घर नंबर-2, दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर- 492010

मो. 09425212720

डागी का फिटनेश ट्रेकर

राजशेखर चौबे

अमीर खुसरो ने कहा था कुछ अमीर ऐसे होते हैं जो हमें पैसे से घृणा करना सिखाते हैं। इसी तरह कुछ कुत्तों (जानवर), घोड़ों आदि की लाईफ स्टाइल देखकर लखपतियों को भी अपने मनुष्य होने पर घृणा हो सकती है और वे सोच सकते हैं कि काश मैं कुत्ता होता। मनुष्य और जानवर का चोली दामन का साथ है। मनुष्य की तुलना जानवर से की जाती है। मसलन वह गाय जैसी सीधी है। वह बहुत कुत्ती चीज है। उसमें कुतत्व कूट-कूट कर भरा हुआ है। वह में पुरुष और महिला दोनों शामिल है। अमेरिका में गधे को मूर्ख नहीं माना जाता परन्तु हमारे यहाँ मूर्ख व्यक्ति को गधा कहा जाता है, बेचारा गधा। नेता की तुलना लोमड़ी से की जाती है, बेचारी लोमड़ी। पता नहीं जानवर भी ऐसी कोई तुलना करते हैं या नहीं।

खैर अभी यह सब चर्चा क्यों? मैंने अखबारों में पढ़ा-अब आपके डाग की हेल्थ के लिए फिटनेस ट्रेकर उपलब्ध है। अमेरिका में ह्यूमन सोसायटी वेटनरी मेडिकल एसोसिएशन के वी. एम. डी. बेरी केलाग कहते हैं—“जब आप दफ्तर में होंगे, तब भी आप यह जान सकते हैं कि आपका डाग मोटापे का शिकार है या नहीं। उसकी पल्स रेट क्या है। उसकी गतिविधियाँ सामान्य है या नहीं। ये फिटनेस ट्रेकर बियरेबल डिवाइस है जो विशेष तौर पर श्वान(कुत्ता) के लिए तैयार किया गया है। श्वान कहने पर कुत्ता प्रसन्न होगा या नाराज यह भी पता नहीं है। इस खबर को पढ़ने के बाद मेरी तरह बहुत से लोग सोच रहे होंगे-वाह री उन कुत्तों की किस्मत और मेरी कुत्ते जैसी किस्मत। इस खबर से ही पता चला कि कुत्ते भी मोटापे के शिकार होते हैं। मोटापे से बचने के लिए क्या कुत्ते भी जिम जाते हैं या मार्निंग वाक करते हैं। आवारा कुत्ते दिन भर वाक करते हैं उन्हें चलने, दौड़ने या काटने के अलावा और कोई काम नहीं है। एक विज्ञापन में अवश्य ही कुत्ते को कार चलाते दिखाया गया है।

इस डिवाइस से आपके कुत्ते की सांस संबंधी परेशानी भी पता चलेगी। स्वाभाविक रूप से इस डिवाइस की सुविधा सेलेब्रेटी कुत्ते को ही उपलब्ध होगी। गली के कुत्तों को मोटापा या अन्य बीमारी नजर नहीं आती। उन्हें किसी चीज से डर नहीं लगता सिवाय म्युनिस्पल के रसगुल्लों के। ये सभी बीमारी “सुखियार” कुत्तों को ही होगी। इस संबंध में मुझे एक वाक्या याद आता है। रेलवे स्टेशन में एक फैशनेबल महिला का अलशेसियन कुत्ता ट्रेन और प्लेटफार्म के बीच फंस गया। वह महिला चीख-चीख कर रोने लगी। ट्रेन की सीटी भी बज गई थी। अलशेसियन को बचाने के प्रयास में कई लोग लगे थे। कुत्ता “सुखियार” था। उसकी तोंद की तुलना थानेदार के तोंद से की जा सकती थी। कुत्ता टस से मस नहीं हो रहा था। कुछ जोशीले नौजवानों ने ट्रेन की होज पाईप भी काट दी थी। बड़ी मशक्कत के बाद ही कुत्ते को बाहर निकाला जा सका। महिला कुत्ते के छूटते ही अत्यन्त प्रसन्न हो गई। शायद अपने पति की आफिस से घर वापसी पर भी इतनी प्रसन्न नहीं होती होगी। मैं सोच रहा था कि

हमारी गली का कुत्ता एक तो ऐसी जगह पर फंसेगा नहीं और फंस भी गया तो एक ब्रेड का टुकड़ा दिखाने पर तुरन्त निकल आएगा।

भगवान ने जानवरों को जुबान व दिमाग नहीं दिया। कल्पना कीजिए उनके पास जुबान व दिमाग दोनों होते तो क्या स्थिति होगी? कुत्ते धर्मेन्द्र पर मुकदमा कर मांग करते कि इस व्यक्ति ने उन्हें उनका खून पीने की धमकी दी है अतः हमें उनका खून पीने की इजाजत दी जाए। सियार मुकदमा करते कि उनकी तुलना नेताओं से कर उनकी बेइज्जती न की जाए। गली के कुत्ते “सुखियार” कुत्तों से बराबरी का हक मांगते। गधा भी अपने बच्चों को डांटकर कहता “इतना भी नहीं समझता आदमी कहीं का।” सभी पशु-पक्षी व अन्य जीव-जन्तु एक अखिल विश्व सम्मेलन बुलाते और मांग करते कि उन्हें समानता, रोजी-रोटी और कश्मीर में बसने का अधिकार नहीं चाहिए। उन्हें केवल एक ही मौलिक अधिकार चाहिए और वह है जीने का अधिकार, ताकि वे मनुष्यों के साथ मिल-जुलकर पृथ्वी की रक्षा कर सकें।

संपर्क : 295/ए रोहिणीपुरम, रायपुर, मो 9425596643

कबीरा गरब न कीजिए

डॉ. पंकज साहा

एक शहर से गुजरते हुए जब एक उजड़े हुए सिनेमा हॉल पर दृष्टि पड़ी, तो मन बड़ा उदास हो गया। उसकी दीवारें बदरंग हो गयी थी, अनेक स्थानों से प्लास्टर झड़ गये थे, जगह-जगह झाड़-झंखाड़ उग आये थे। कभी इस शहर में इस सिनेमा हॉल की तूती बोलती थी। चारों ओर गहमा-गहमी, टिकटों की ब्लैक मेलिंग। ब्लैक में टिकट पाने वाला भी स्वयं को खुशनसीब समझता था। पर आज वही कुछ कुत्तों का शरण सह क्रीड़ा-स्थल बना हुआ था।

मनुष्य का जीवन भी तो इसी प्रकार का है।

जब-तक शरीर में प्राण है, तब-तक खूब पूछ होती है, खूब प्रेम होता है। शरीर चाहे नेता का हो चाहे अभिनेता का, चाहे भारतीय आदर्श नारी का हो चाहे मीटू वाली दिलेर महिलाओं का, प्राण निकलते ही सब उस शरीर से घृणा करने लगते हैं। महाकवि सूरदास ने निश्चित रूप से मन की आँखों से देखा होगा तभी तो उन्होंने कहा—

“जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।

ता दिन तेरे तन तरुवर के सवै पात झरि जैहैं।”

मेरे मन के किसी कोने में सिमटा वैराग्य का

पैराशूट अचानक खुलकर फैल गया।

पहले सिनेमा हॉल किसी भी शहर, कस्बे का स्टेटस सिंबल हुआ करता था। मेरे एक स्कूली सहपाठी के पिता जी का स्थानांतरण दूसरे शहर में हो गया। उसने वहाँ से जो पहला पत्र लिखा था, उसका पहला वाक्य था—‘इस शहर में पाँच सिनेमा हॉल हैं।’

मेरे छोटे-से शहर में मात्र एक सिनेमाघर था। मैंने अनुमान लगा लिया था कि पाँच सिनेमाघरों वाला शहर कितना बड़ा होगा।

आज बड़े-बड़े शहरों के अंबर रूपी पनघट में सिनेमाघर रूपी घट एक-एककर डूबते जा रहे हैं। इतना भर होता तो गनीमत थी। कई जगहों में सिनेमाघरों को तोड़कर होटल, हाउसिंग कॉम्प्लेक्स या शॉपिंग मॉल बनाये जा रहे हैं। आज शॉपिंग मॉल शहरों के स्टेटस सिंबल बन गये हैं। 'दीवार' फिल्म में बड़ा भाई (अमिताभ बच्चन) अपने छोटे भाई (शशिकपूर) को अपनी समृद्धि का ब्यौरा देते हुए कहता है, 'मेरे पास कार है, बंगला है, बैंक बैलेंस है। तुम्हारे पास क्या है? छोटा भाई अत्यंत गर्व से उत्तर देता है, 'मेरे पास माँ है।' आज

आम शहरी गर्व से कहता मिलता है, 'हमारे शहर में इतने मॉल हैं।' शहर के गर्व का आयतन शॉपिंग मॉल की संख्या के अनुसार फैलता जा रहा है, लेकिन आज जिस तरह ऑन लाइन बाजार अपने पैर पसार रहा है, उससे लगता है कि आने वाले दिनों में शॉपिंग मॉलों का गर्व भी चूर-चूर हो जायेगा।

चाहे मॉल की संस्कृति हो चाहे ऑन लाइन बाजार की, यह आज की बाजारवादी संस्कृति है। इसने हमारी मूल बाजार, हाट, मेला की संस्कृति को काफी नुकसान पहुँचाया है। ये झूठी संस्कृतियाँ हैं। एक दिन इसका गर्व भी चूर होगा और हमारी संस्कृति वापस आयेगी। कबीरदास ने कहा है, 'झूठे तन को का गरबावै...'। अभी हम कह सकते हैं, 'झूठे मॉल को का गरबावै...'।

संपर्क : डॉ. पंकज साहा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर-721305.
(प. बंगाल) मोबाइल सं. 943489419

रवीन्द्रनाथ व प्रतीची(पश्चिम)

बुद्धदेव बोस

अनु. श्री नारायण पाण्डे

“रवीन्द्रनाथ ने बाँगला भाषा में प्रथम यूरोपीय साहित्य लिखा।” सुधीन्द्रनाथ दत्त की इस उक्ति में अतिरंजना हो सकती है किन्तु यह अतिरंजना ठीक उसी प्रकार है, जो विद्युत की तरह सत्य को उद्भाषित कर हमारी स्वाधीन चिन्ता को उद्बुद्ध कर देती है। रवीन्द्रनाथ के भक्तों में जिन्हें आदिसमाज युक्त कहा जाय, वे इस बात को पसन्द न करेंगे, और जो तरुण दल आज घर ‘वापसी’ को तैयार हैं, जो कि बाँगला मंगल काव्य में बाँगला उपन्यास का उत्स खोजे बैठे हैं, उन्हें भी हमारा कथन नामंजूर होगा। इसके विरुद्ध स्वयं रवीन्द्रनाथ को ही गवाह बनाकर लाना होगा क्योंकि प्रतीची में उनका परिचय प्राच्य के ऋषि रूप में था। पाश्चात्य गतिशीलता के उत्तर में शान्ति की वाणी उनका अवदान है, सत्य शिव सुन्दर उनका जपमंत्र है। हमलोगों को मानना ही पड़ेगा कि उनके विषय में इस पश्चिमी धारणा का रवीन्द्रनाथ ने विरोध नहीं किया है बल्कि हर तरह से उसकी पुष्टि की है। फिर भी यूरोपीय साहित्य के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी होने पर भी यह साफ होता है कि सुधीन्द्रनाथ दत्त के उपर्युक्त मन्तव्य में एक सत्य का बीज प्रच्छन्न है।

विश्वविद्यालयीय इलाके में ‘प्रभाव’ शब्द एक यान्त्रिक अर्थ में व्यवहृत होता है, इब्सन के प्रेत नाटक को पढ़कर वर्नाड शा ने ‘विधुरो का घर’ लिखा, इलियट ने भगवद्गीता का भावानुवाद व भाष्य रचना कर हिन्दू मानस के सामने ऋण स्वीकार किया इस तरह का प्रत्यक्ष प्रभाव का ऋण स्वीकृति साहित्य के इतिहास में बराबर देखा जाता है, एवं जो विधिवत् गवेषणा करते हैं उनके लिये यह समन्वय ही मूल्यवान है। किन्तु एकता और प्रभाव है जो गोपन है, जिसके विषय में कवि स्वयं भी स्पष्टतः सतर्क नहीं है, जो रचनाक्रिया के अर्धलोक से कभी भी बाहर नहीं झाँकती, या झाँकती है तो, डॉक्टर उपाधि प्रार्थियों की परिश्रमी पकड़ को भी दगा दे जाती है। ये गोपन प्रभाव ही सबसे स्थायी व गंभीर है। रवीन्द्रनाथ का वही गोपन

मनोलोक-जो उनकी कवि सत्ता की आधारभूमि है-हम कहना चाहते हैं उसका एक बड़ा अंश यूरोपीय है।

जानता हूँ, तथ्य द्वारा इस बात को सिद्ध करना कठिन है, वस्तुतः रवीन्द्रनाथ की तथ्य-निर्भर समालोचना अभीसंभव नहीं है। गो कि के आधुनिक युग के कवि हैं, कहा जाये तो हमलोगों के ही समकालीन, किन्तु उनकी जीवनी संबंधी साहित्यिक उपादान इतने दिन बाद भी प्रायः कुछ भी इकट्ठा नहीं हो सका है। हम यह भी नहीं जानते कि इतनी बड़ी आयु तक उन्होंने कौनसी किन-किन विषयों पर एवं कौन सी कितनी पुस्तकें पढ़ी, किसी किसी पुस्तक का केवल पन्ना ही उलटे हैं, कौन उन्हें अच्छी लगी है, और किसे उन्होंने आत्मसात कर लिया है। उनकी आत्मजीवन संबंधी व अन्यान्य गद्य रचनाओं की संख्या विपुल है, किन्तु उनमें दूसरे की पुस्तकों का उल्लेख हम कम ही पाते हैं, जो हैं वे साधारणतः संस्कृत या पूर्व-रवीन्द्र बंगला साहित्य तक ही सीमित हैं। वर्डस्वर्थ, शैली, कीट्स, टेनिसन जैसे रोमान्टिक अंग्रेज कवि उनकी रचनाओं में बीच बीच में दिखाई पड़ते हैं—प्राचीन साहित्य व भारतीय साहित्य के बाद प्रधानतः केवल यही, यूरोपीय कविता की जो एक पंक्ति उन्होंने बराबर उद्धृत की है आश्चर्य की बात है वह कीट्स की-'Beauty is truth, Truth is beauty' है, और यह भी काव्य के लिये नहीं, सौन्दर्य शास्त्र के एक सूत्र रूप में उद्धृत है। 'शेपेर' कविता में चार अध्याय में जान डॉन वाइब्सन का उल्लेख है, किन्तु वह अधिक सम्भव है कि तत्कालीन तरुण-गोष्ठी के प्रति रवीन्द्रनाथ के किंचित पसन्द का निदर्शन है। प्रायः एक ही समय 'आधुनिक काव्य' नाम के प्रबन्ध को पढ़ने से ही जाना जा सकता है कि, टेनिसन, व ब्राउनिंग के प्रति सदय होकर भी पश्चिमी नव्यसाधकों को ओर उन्होंने ज्यादा ध्यान नहीं दिया-अर्थात् इस योग्य समझा नहीं। रवीन्द्रनाथ की जिन कविताओं में प्रत्यक्ष आहरणा उल्लेखनीय है, उनमें उन्नीसवीं सदी के अंग्रेज लेखक ही स्मर्तव्य है, वर्ष शेपेर' के साथ 'Ode

to the West Wind' 'मानसी सुन्दरी' के साथ 'Epipsychidion' की तुलना की निरर्थक नहीं कहा जा सकता; 'मानसी' की 'नारी उक्ति', 'पुरुषे उक्ति' 'व्यक्त प्रेम' व गुप्तप्रेम, को पढ़ने से ब्राउनिंग की 'Dramatic Lyrics' की याद आना स्वाभाविक है। किन्तु पहले ही कहे हैं, प्रत्यक्ष आहरणा व गहरा प्रभाव एक नहीं, पाश्चात्य कवियों में रवीन्द्रनाथ के वास्तविक महाजन कौन हैं, यह कौतूहलोदीपक प्रश्न आज भी आविष्कार सापेक्ष है।

किन्तु ऐसा हो ही नहीं सकता कि रवीन्द्रनाथ का अध्ययन क्षेत्र में केवल यही कुछ लेखक और ग्रन्थ थे, निश्चय ही उन्होंने तरह तरह की असंख्य पुस्तकें पढ़ी थी, किन्तु आधुनिक पश्चिमी कवि साधारणतः जो करते हैं, वह आत्मभिव्यक्ति उनके स्वभाव के बाहर थी इसी से उनके आहरणा का सही इतिहास प्रच्छन्न रह गया है। पत्र लिखने में अमितव्ययी होने पर भी किसी विशेष काव्य के विशेष प्रेरणा उत्स के सम्बन्ध में आश्चर्य ढंग से चुप हैं। हम लोग जानते हैं कि उपनिवेशिक राजनीति इस तरह परस्पर विच्छिन्न विविध विषयों में उनकी रुचि थी, 'एमियेलस जर्नाल' नामक अधुना प्रायः अपठित पुस्तक के वे प्रेमी थे; गोतिये के 'मादमयोजेल्समोप्यॉ', को वे वरदास्त न कर सके, 'अन्नाकेरीना' पढ़कर व्यथित हुये थे, गो कि जार्ज इलियट के उपन्यास उन्हें पसन्द थे। जीवन के उत्तर काल में एजराउन्ड व एमिलोयले पर व्यंग्य करते हुये स्टार्ज मूर को सामने रखे थे। अगर रवीन्द्रनाथ की अपनी उक्तियों का पम्परा माना जाये तो यहाँ तक कि उनकी साहित्यिक रुचि के संबंध में भी निश्चित नहीं हुआ जा सकता। उनके समकालीन व सन्निकट अग्रज व अनुजों में पाश्चात्य जगत में जो वास्तविक कवि का वास्तविक नये कवि थे, जो संसार के सामने प्रतीची की वाशीमूर्ति थे, हम व्यथित विस्मय से देखते हैं कि उनके विषय में रवीन्द्रनाथ ने कभी उल्लेख नहीं किया। वोदलेपर या स्विनवर्न, मरेलेन या मालार्मे-रिलके या

मालेरि-कोई भी उनके कृपा पात्र न बने उन्नीसवीं सदी के रूसी उपन्यास, फ्रांसीसी चित्रकला, जर्मन संगीत, पश्चिमी सभ्यता के इन प्रोज्वल स्तम्भों की निःसंकोच उपेक्षा कर गये। ईट्स पर एक बार जो लघु निबंध लिखा, उसमें ईट्स के कविता की सच्ची गुणग्राहिता का कोई परिचय नहीं है। यह निबंध जिस प्रकार है मित्रधर्मों है, उसी तरह 'Jorny of the Magi' का अनुवाद भी कर्तव्य बोध या घटनाचक्र की रचना है। और इन्हीं रवीन्द्रनाथ प्रतीची के साथ निरंतर प्रत्यक्ष संयोग बना हुआ था वे विदेश-भ्रमण के अथक यायावर थे, यूरोप के श्रेष्ठ लेखकों में कोई-कोई उनके साथ अनुवाद, सम्पादन व मैत्री सूत्र में आबद्ध थे।

आश्चर्यजनक स्वतो विरोध, प्रायः अविश्वसनीय। संवेदनीयता में अतुलनीय यह कवि-रवीन्द्रनाथ ठाकुर-किस प्रकार अपने समकालीनों प्रधान साहित्यिक धारा के प्रति इस प्रकार उदासीन रह सके थे? अगर कहा जाए कि आरूह में वे यूरोपीय थे या अंग्रेजी के अनुसार रोमान्टिक विक्टोरिय कवि, वर्ड्सवर्थ टेनिसन के संगोत्री, अतएव रूसी उपन्यास या फ्रांसीसी प्रतीकवादियों के प्रति अनुकम्पा की आशा करना उचित नहीं, तो प्रश्न को केवल टालना होगा, एवं रवीन्द्रनाथ के प्रति भी सुविचार न होगा। यह तो सच है कि वे 1941 तक जीवित थे, और सार्थक रूप में जीवित थे बल्कि उनकी प्रतिमा को उन्मेष व प्रसाद के अध्याय को 1880 से 1930 के बीच रखा जा सकता है-अर्थात् जिस अर्द्धशताब्दि के बीच उनकी प्रतिमा चरम सीमा पर प्रकट हो रही थी, ठीक उसी समय प्रतीची साहित्य नवीन प्रेरणा की ओर उन्मुख था। इस पचास वर्ष में जहाँ पर हाँ पुनरावृत्ति की जगह रचना-धर्मिता दिखाई पड़ी है, गतानुतिकता की जगह मौलिक प्रतिमा दिखी है, हम देखते हैं कि ठीक वही वही अंश कविगुरु को जैसे स्पर्श नहीं कर सके हैं। जीवन के आरम्भ में जिन कवियों ने उन्हें मुग्ध किया था, प्रौढ़ावस्था में भी उन्होंने उनके ही स्मरण किया है। यह कैसे हुआ यह सोचने पर

आश्चर्य का अंत नहीं रहता। यह क्या उनके चरित्र के अनाक्रमणीय अवैकल्य का प्रमाण है, या उनका यह लक्षण हमें यह कहने का अधिकार दे रहा है कि उनकी प्रतिमा की प्रवणता केवल सम्प्रसारण की ओर थी, परिणति की सम्भावना उसमें नहीं थी?

उत्तर देते दुविधा होती है रवीन्द्रनाथ आदतन में इतने सार्वभौम हैं कि उनके संबंध में मनस्थिर करना कठिन है। यही जिसे कि समकालीन पश्चिमी साहित्य के प्रति उनकी निःस्पृहता कह रहा हूँ, हम क्या निःसंशय कह सकते हैं कि यह उनका छद्मवेष नहीं है? अन्ततः इसमें संदेह नहीं है कि पश्चिम के प्रति उनका मनोभाव उमयमुखी था। एक ओर प्रबल आकर्षण, दूसरी ओर अपमानित पाधीन जाति के प्रति तीव्र वेदना। जैसे प्रौढ़ावस्था में विलायती पोषाक पहनते उनका स्वमर्यादा बोध इतनी दूर तक आहत हुआ है कि उसके बदले उन्होंने एक ऐसी पोषाक चुन ली थी, कि, जो आधुनिक युग के किसी देश में प्रचलित नहीं है, जो एक व केवल एक रवीन्द्रनाथ भिन्न और किसी के लिये अव्यवहार्य है—उसी तरह उनकी रचना में भी पश्चिम-प्रेम भी विशेष नहीं प्रकट होता, इसलिये कि भारत के वर्तमान शोषक व उत्पीड़क उसी भूवाद के अधीवासी हैं। उनके कालीन लेखक के पन्ने-पन्ने पर इस सचेतन विमुखता का हमें प्रमाण मिलता है। फ्रांसीसी विप्लव के बाद प्रतीची में जो धर्मीय सहिष्णुता, जनतंत्र व मानव-मन की स्वीकृति दिखाई पड़ी थी, उसके प्रति श्रद्धा न ज्ञापन करना जो उनके लिए असम्भव था, फिर भी इस दैनिक लेखन में उन्होंने पश्चिम की द्रुति एवं वास्तविकता उन्होंने वितृष्णा व्यक्त की है, बार-बार बंगाल के अख्यात विस्तारंग कोने में लौट आने की इच्छा प्रकट किये हैं। 'कितना भला होता है-यदि विदेशी भारत को न जाने पाये होते!' इस तरह एक अद्भुत आकांक्षा भी उन्होंने प्रकट की थी। किन्तु अगर वही होता, यदि विदेशी न आते, तो हमारे बीच रवीन्द्रनाथ का उदय न होता। इसे वे स्वयं न जानते हो ऐसा नहीं।

पर्दा हटाकर देखते हैं कि रवीन्द्रनाथ के मन में एक जीवनव्यापी संग्राम चला है : एक ओर वे कवि, दूसरी ओर नव्यभारतीय जातीयतावाद के मुखपात्र एक ओर शिल्पी व मरमी, दूसरी ओर धर्मों व सामाजिक संस्कारक, एक ओर सौन्दर्य प्रेमिक, दूसरी ओर साम्राज्यवाद के सक्रिय व प्रतिश्रुत शत्रु हैं। भारतीय इतिहास के लिस लग्न में वे पैदा हुये थे, उसमें इस दुहरे दायित्व को स्वीकार करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। इसे ध्यान में रखने पर हम जान पाते हैं कि क्यों उनके जीवन व साहित्य में ऐसा अद्भुत स्वविरोध है। जिसे हम आजकल आर्ट कहते हैं, 19वीं शती के बांगला साहित्य में उसकी धारणा स्पष्ट नहीं थी, उस काल के हमारे मनीषियों ने अंग्रेज-फ्रांसीसी युक्तिवाद व उपयोगितावाद के प्रभाव से, साहित्य का उद्देश्य का अर्थ लोक शिक्षा व सामाजिक उन्नयन समझे थे और रवीन्द्रनाथ का आधा जीवन 19वीं शती अन्तमुख है, उनके लिये वह परम्परा पालन अनिवार्य था। मगर बंकिम जैसे लेखक के चरित्र में हम अखण्डता देखते हैं, अर्थात् मनोरंजक लोक शिखा के सूत्र को उन्होंने सर्वान्तःकारण से स्वीकार किया था; मगर रवीन्द्रनाथ युवा काल में ही एक अन्य आदर्श का पता पाकर सारे जीवन उसका आहसान नहीं भूल पाये। फलस्वरूप, उनका रचना स्रोत दो भिन्न धारा उनमें निःसृत हुआ एक को हम पोशाकी सरकारी, जनसम्मत, दूसरे को निजी, गोपन, व अन्तः ही कह सकते हैं। रवीन्द्रनाथ कह कर जो धारणा लोगों के मन में बनी थी, उसके साथ बाहर से उन्होंने अपने को अक्षिर अर्थों में मिला लिया था वहाँ से सुस्मित करुणाशील ऋषि, उपनिषदक ऐतिह्य से ललित, शिव व शान्ति के प्रवक्ता हैं। किन्तु भीतर वे अस्थिर वहाँ अन्धकार की तरंगे वेदना की हैं, दिगन्त में भी निश्चयवतान नहीं है-अर्थात् दूसरी ओर उन्हें 'यूरोपीय' कहना गलत नहीं, और 19 वीं शती के रोमान्टिकता का एक श्रेष्ठ प्रतिमा कहना भी गलत नहीं। जैसे पूर्ववर्ती बांगला साहित्य के साथ उनका

घनिष्ठ सम्पर्क था उसी प्रकार यह भी सच है कि किसी किसी काव्य का सौन्दर्य बांगला अथवा भारतीय सीमान्त पार गया है। अधिक की आवश्यकता नहीं, केवल मानसी पर विचार करने से ही उनके भारतीय नूतनता का पता लग जाता है। एक काव्य ग्रन्थ उनके समग्र काव्य का बीज है-पूर्व रवीन्द्र समग्र भारतीय साहित्य में खोजने पर समतुल्य कुछ न मिलेगा। इसी ग्रन्थ में, एवं पहले इसी ग्रन्थ में उच्चारित हुआ विश्व-विषद, आकाश वेदना, वेदनामय पुलक, व्यक्तिगत मानसिक आकांक्षा का रहस्य एवं यह सभी हम जानते हैं कि आधुनिक युग के यूरोप में उत्पन्न होकर आज हमारे चैतन्यानतमूक्त हुआ है। किन्तु रवीन्द्रनाथ की यह अन्तरतम सत्ता जिन कविताओं में व्यक्त हुई है कि अनेक बार उनका तात्पर्य ठीक-ठीक समझा नहीं जाता।

एक बार किसी एक अनुष्ठान उपलक्ष में, रवीन्द्रनाथ ने अपने पश्चिमी साहित्य पाठ का एक विवरण दिया था। दान्ते व गेटे को पढ़ने की कोशिश किये थे, किन्तु अनुवाद के प्रति अरुचि, भाषा सीखने की असफलता से, आगे न बढ़ सके। एक जर्मन महिला की सहायता से थोड़ा हाइने पढ़े थे, किन्तु जल्दी ही धैर्य खो बैठे। शेक्सपीयर पढ़कर भी संतुष्ट नहीं हुये। 'जीवनसहित का वही अंश स्मरणीय है, जहाँ ओथेलो का 'ईष्यान्ला व लियर को' अक्षम परिताप का उल्लेख उन्होंने कहा है कि उनके यौवन कालीन बांगाली अंग्रेजी साहित्य से जो पाये थे वह 'खाद्य' नहीं 'मादग' है; बल्कि शेक्सपीयर की तरह मानव स्वभाव के 'तल का कीचड़' मंथन करना 'साहित्य रचना की रीति व लक्ष्य' है किन्हीं, इस पर भी संदेह किये हैं। यूरोपीय साहित्य के जिस अंश में 'संयम-साधना' प्रकट है उस अंश से परिचय का परामर्श देकर वह अंश समाप्त किये हैं। अर्थात् तालिक दृष्टि से रवीन्द्रनाथ उस रोमान्टिकता के विरोधी हैं, जो उनके समकालीन पश्चिमी साहित्य का विशिष्ट धारा है। इस विषय में उनकी निजी घोषणा की हम अपेक्षा नहीं कर सकते, किन्तु देखाजन्म उनकी साहित्यिक

कृति क्या साक्ष्य देती है। उनके प्रथम यौवन के अन्यतम प्रवृत्ता का नाम 'गेरवे उनकी प्रणायिनीगारा' है, एवं हाइने के साथ 'क्षारीका' का सम्पर्क हो तो एक दम काल्पनिक नहीं है। जो चंचलमति पेरीस प्रेमी जर्मन यहूदी एकदम एक भिन्न जन्म का प्राणी लगता है। रवीन्द्रनाथ शेक्सपीरियन कमेडी के बहुतेरे कौशल का व्यवहार किये हैं, एवं 'विसर्जन' व 'चित्रंगदा' के अमित्राक्षर को भी 'शेक्सपीयरीय' कहा जा सकता है; मुझसे कम मिल्टन-मधुसदन के साथ उसका संबंध नहीं। जिस कारण से अंग्रेजी साहित्य उनका खुला समर्थन न पाकर उसी 'हृदयावेग की प्रबलता द्वारा उनकी बहुतेरी विख्यात कवितायें घिरी हैं। अन्तिम दिनों में दाँते जो चित्र बनाये थे, उसमें एक दुबले, म्लान इटालियन सुखाकृत्य में जिसको देख पाते हैं। वह 'नरक' के कवित है, 'धूलोक' के नहीं। एवे अपने जो चित्र वे बना बये हैं उनकी ओर देखने पर आश्चर्य होता है कि, जो रवीन्द्रनाथ हमारे और जनता के परिचित हैं, उसका कोई लक्षणा वहाँ नहीं है, शांति या सौक्यता का कोई चिन्ह नहीं है; वहाँ एक दुखी मनुष्य का चेहरा शंकामय अजानेपन की आभास दे रहा है। हम क्या नहीं कह सकते कि इन चित्रों में रवीन्द्रनाथ 'पकड़' में आ जाते हैं?—हमें याद आता है देवता प्रतिम गेटे की अन्तिम व जोरदार स्वीकोरोक्ति जीवन में एकदनि के लिये भी हम सुखी न हो सके।'

कहा जा सकता है कि रवीन्द्रनाथ को वृद्धावस्था में चित्र बनाना पड़ा, वह इसीलिये; उनके सत्ता के जिस अंश को उनकी लेखनी सम्पूर्ण उद्घाटित न कर सकती उसके लिये अन्तिम दिनों उन्होंने एक रास्ता बना लिया। बुद्धि निर्भर भाषा द्वारा जो न कहा जा सका, उसे इन्द्रियग्राह्य रेखावर्ण विन्यास द्वारा प्रकट किये; जैसे एक कठिन असहनीय ताप निराशा के लिए एक ऐसे शिल्प की शरण लिये, जो तर्क नहीं करता, केवल ताकता रहता है। इसी से लगता है, जब देखता हूँ रवीन्द्रनाथ की कविता जो 'सुन्दर' है, अर्थात् सुषम,

भसृशा है, अमितराय की भाषा में 'गोल वतरंग रेखा की तरह' उनके चित्रों में भीड़ किये है 'कड़ी लाइन, खड़ी लाइन की रचना, खोंचावाला, कोशावाला, काँटा की तरह', अदभुत व विकृत मुखों को मेला वह लग गया है, उतरा चला है प्रागऐतिहासिक काल का जीव, स्वप्न से छान निकाला हुआ अतिप्राकृत मूढश्य, वशीलेपन से जैसे शासित रक्तिमा उफना रही है। अंकन कला में अपटुता के कारण चित्रों में यह विकृति आई है, यह धारणा बनाना असम्भव नहीं; किन्तु पटुता या अपटुता जितनी ही हो, वे किसी विख्यात 'ओरीयन्टल स्कूल' के अनुगामी नहीं हुये, यह प्रश्न वाकी रह जाता है। यह मानने को हम बाध्य हैं कि स्वीश परिवार या गोष्ठीमुक्त अवनीन्द्रनाथ, नन्दलाल बोस की तरह चित्र बनाने की कोई चेष्टा अथवा इच्छा हम रवीन्द्रनाथ में नहीं देखते, एक मात्र यूरोपयी एक्सपेसनिस्टों के साथ ही उनका कुछ मेल मिलता है।

ऐसा भी नहीं कि जिनमें उनका जो अंश व्यक्त हुआ है, कविता में वह एक दम प्रच्छन्न हो। बल्कि कहा जा सकता है कि जिनमें जो प्रत्यक्ष है कविता में वह अनतः प्रवाहित है। उनकी जो कवितायें अनुष्ठान या प्रतिष्ठान में जनप्रिय हैं, उनके बारे में कुछ कहना वाहुल्य होगा किन्तु उनकी कवितायें जहाँ केवल कविता हैं (गीतांजलि को भी अन्तर्मुक्त करना चाहूँगा) वहाँ छन्द, तुक व स्ताविक-विन्यास के मायाल अनतराल से हम अनुभव करते हैं एक विरामहीन द्वन्द्व व वेदना, इन कविताओं को रचना करके रवीन्द्रनाथ को उन पश्चिमी कवियों के पास ही बैठाने की इच्छा होती है, जिनको उन्होंने सरकारी रूप में 'अपसन्द' किया था, अथवा जिनका कभी नाम नहीं लिया। मैं यह नहीं कहना चाहता कि पश्चिमी कवियों के साथ उनका घनिष्ठ परिचय था, इस विषय में उनका ही कथन मानने में कोई आपत्ति नहीं, किन्तु बात यह है कि छात्र या अध्यापक की तरह 'घनिष्ठ' परिचय की कोई आवश्यकता नहीं थी। उनके यौवन की हवा में

रोमान्टिकता थी, वे प्रतिभावान थे, उनकी कवि सत्ता की जड़ तक का वे शोषण कर लिये थे। कहने की आवश्यकता नहीं, कि एक कवि के ऊपर दूसरे कवि का जो प्रभाव पड़ता है। वह अध्ययन का विषय नहीं, अति लघु व परिचय से भी हो सकता है। शेक्सपीयर, केवल जनरल सुनकर पाश्चात्य पुराकाल को आत्मसात कर लिये थे। हमें क्या मालूम कि आधुनिक के विषय में भी रवीन्द्रनाथ के मन में अनुरूप भाव नहीं उठा? उनके व्यक्तित्व गठन व रचना-प्रक्रिया में उनके द्वारा निन्दित व उल्लिखित कवियों ने कोई भाग नहीं लिया, ऐसा हम नहीं कह सकते। हम निश्चित नहीं हो पाते कि उनके यौवन काल में फ्रांसीसी जिन कवियों ने काव्य कला को व्याख्या दिया था उनके साथ रवीन्द्रनाथ का एकदम सम्पर्क नहीं था। क्या उनकी कोई रचना उन्होंने नहीं पढ़ी? हो सकता है अनुवाद आकस्मिक व

विच्छिन्न रूप में नहीं तो किसी समाचारपत्र के उद्धरण रूप में-किन्तु इससे क्या होता है? हम जानते हैं कि प्रतिभा प्रज्वलन के लिये एक चिनगारी काफी होती है। अन्ततः उनकी 'निरुद्देश्य यात्रा दो फ्रांसीसी कविताओं के साथ आत्मीयता रूप में आबद्ध हैं, अगर वे वादेलेयर की 'भ्रमण, या रैखों की 'मदहोश ताजी, न भी पढ़े हो तो भी मानना पड़ेगा कि 'निरुद्देश्य यात्रा में ऐसा कुछ है जिसे उनके द्वारा किसी भारतीय काव्य में नहीं मिलता। बल्कि कर्तव्य है कि इस कविता की ताजी पश्चिमी गंभीर व रहस्यमयी नायिका विदेशिनी है। स्वदेशी परम्परा के सामने व स्वीकारने में रवीन्द्रनाथ निरन्तर मुखर थे, किन्तु कहें कि 'निरुद्देश्ययात्मक में प्रतीची के सामने अपने व बांग्ला कविता के दशा की एक अवगुण्ठित स्वीकृति वे रख गये हैं, तो क्या बहुत अधिक कहना होगा।

संग : निःसंगता-रवीन्द्रनाथ-बुद्धदेव बोस, एम. सी. सरकार सन्स प्रा. लि. बंकिम चटर्जी स्ट्रीट कल-12 से अनुदित
मो. - 8004040576

स्मृति-शेष

सुप्रसिद्ध कवि विष्णु खरे, सुरेश सेन निशांत, फहमिदा
रियाज, श्याम कश्यप एवं कथाकार हिमांशु जोशी
के दुखद निधन पर मर्माहत है 'मुक्तांचल' परिवार!

विनम्र श्रद्धांजलि!!

समकालीन कविता में पसीना नहीं है

खगेन्द्र ठाकुर से सुनीता गुप्ता की एक भेंटवार्ता

डॉ. खगेन्द्र ठाकुर-पटना के साहित्यिक परिदृश्य का एक ऐसा जाना पहचाना चेहरा है जिनकी सक्रियता पर अस्सी वर्ष की अवस्था और शारीरिक अस्वस्थता भी ग्रहण लगा पाने में असमर्थ रही हैं। दो वर्ष पहले जब खगेन्द्र ठाकुर को बिहार राजभाषा का शिखर सम्मान प्रदान करने की घोषणा हुई तो यही लगा कि इस सम्मान ने अपनी मुकम्मल जगह पा ली है।

डॉ. खगेन्द्र ठाकुर का व्यक्तित्व बहुआयामी है। उनके व्यक्तित्व के तीन आयाम हैं—कवि, आलोचक और संगठनकर्ता। साहित्य में इनका प्रवेश विद्यार्थी जीवन में निबंध लेखन से हुआ। छात्र-जीवन से ही उनकी कविताएं भी प्रकाशित होने लगी थीं। आगे चलकर इनकी पहचान आलोचक के रूप में स्थापित हुई, पर वे समानान्तर रूप से कविताएं भी लिखते रहें। ‘धार एक व्याकुल’, ‘आजादी का परचम’ तथा ‘रक्तकमल परती पर’ उनके कविता संग्रह हैं। उनका शोध प्रबंध ‘छायावादी काव्य भाषा का विवेचनात्मक अनुशीलन’ भी एक आलोचकीय प्रतिमान रहा। ‘आलोचना के बहाने’, ‘कविता का वर्तमान’, ‘दिव्या का सौन्दर्य’, ‘आज का वैचारिक संघर्ष और मार्क्सवाद’ आदि उनकी आलोचना की पुस्तकें हैं। नागार्जुन और दिनकर पर भी उनकी पुस्तकें हैं। ‘समय, समाज और मनुष्य’ उनके वैचारिक निबंधों का संग्रह है तथा ‘देहधरे को दंड’ और ‘ईश्वर से भेंटवार्ता’ उनके व्यंग्य-संकलन हैं। एक संपादक के रूप में उन्होंने उत्तरशती, जनशक्ति दैनिक, कम्युनिस्ट संदेश, समाजवाद आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया।

डॉ. खगेन्द्र ठाकुर ने इस वर्ष अस्सी वर्ष पूरे किये हैं। प्रलेस, पटना द्वारा इस अवसर पर आयोजित समारोह में उनसे एक अनौपचारिक बातचीत हुई। उनके पास अनुभवों का विशाल पिटारा है। वे जब उसे खोलते हैं तो एक कालखंड के वैचारिक संघर्ष किसी फिल्म के रील की तरह गुजरते हुए वृत्तचित्र बन जाते हैं। अद्भुत है उनकी स्मृति! उनका एक-एक संस्मरण इतिहास के दस्तावेज की तरह है। नयी पीढ़ी के साहित्यिकों के लिए इन संस्मरणों से जानने समझने के लिए बहुत कुछ है। प्रस्तुत है उनसे हुई लम्बी बातचीत का एक अंश, हालांकि यूँ लगता है कि यह बातचीत अभी अधूरी ही है और उनसे जानने को अभी भी बहुत कुछ शेष रह गया है।

प्रश्न :- आज जीवन के इस मुकाम पर खड़े होकर अपने बचपन को किस रूप में देखते हैं?

खगेन्द्र ठाकुर :- मेरा जन्म गोड्डा, झारखण्ड के मलिनी नाम गांव में हुआ था। बचपन के बारे में इतना याद है कि तब पढ़ने में मन नहीं लगता था। मेरे ही घर के लोग चकित हैं कि मैंने कैसे इतना सब किया। अभी जब मुझे राजभाषा का शिखर सम्मान मिला तो मेरे बड़े भाई साहब ने फोन पर मुझे शुभकामनाएँ दी।

जैसे-जैसे बड़ा होता गया तो धीरे-धीरे पढ़ाई की ओर उन्मुख होने लगा। ऊँची कक्षा में जाने पर मेरे पास दो विकल्प थे। एक तो गणित और दूसरा संस्कृत। गणित में मैं कमजोर था। इसलिए मैंने संस्कृत ली। हिन्दी भाषा का हाल यह था कि जब मैं दसवीं में था तो शिक्षक महोदय ने एक टास्क दिया था। टास्क जब मैंने दिखाया तो उन्होंने एक जगह काट दिया था। मैं इनके पास गया और मैंने पूछा कि यहाँ आपने क्यों काट दिया? उन्होंने नोटबुक ले ली और अगले दिन स्वीकार किया कि मैं सही था। तात्पर्य यह है कि अपने स्कूल दिनों से ही मेरा हिन्दी पर अधिकार होने लगा था। कक्षा में सौ अंकों का व्याकरण और रचना था। हर हफ्ता एक निबंध लिखने के लिए दिया जाता था और मैं स्वयं लिखकर ले जाता था। शिक्षक टिप्पणी करते थे कि तुम लेखक बनने वाले हो।

1953 में मैंने मैट्रिक किया। आगे की पढ़ाई के लिए मैं भागलपुर के टी.एन.बी. कॉलेज में आया। तब गोड्डा में कॉलेज नहीं था-1954 में वहाँ कॉलेज खुल गया। उसके बाद 1959 में एम.ए करने के लिए मैं पटना विश्वविद्यालय आ गया।

1981 में मास्को हायर स्टडीज के लिए गया।

इंटर फर्स्ट ईयर में था, तब एक दिन हॉस्टल के सुपरिटेण्डेंट ने मुझे बुलाकर बैठाया और कहा कि तुम्हारे हिन्दी के प्रोफेसर से पता चला है कि तुम्हारी भाषा अच्छी है। फिर वे एक पोथा उठा लाये। वे अर्थशास्त्र की एक किताब लिख रहे थे। उन्होंने पोथा मुझे

पकड़ाया और कहा कि इनकी भाषा देख लो और ठीक कर दो। मैं सकपकाया पर उनके आग्रह को न टाल सका। वे बराबर मुझे बहुत मानते रहें।

प्रश्न :- साहित्य में आपका प्रवेश किस प्रकार हुआ?

उत्तर :- मुझे लिखने की प्रेरणा बुद्धिनाथ झा 'कैरव' से मिली। वे स्वतंत्रता सेनानी और साहित्यकार थे। उन्होंने तीन खंड काव्य तथा कुछ नाटक भी लिखे थे। वे पिताजी के यहाँ आया करते थे।

मैं स्कूल के दिनों से कविताएँ लिखा करता था। तब 'प्रकाश' नामक एक पत्रिका निकलती थी जिसमें मेरी कई रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। हम कई मित्रों ने मिलकर 'नवजागरण' नामक पत्रिका निकाली। 'नव जागरण' के तीन अंक निकले थे। नागार्जुन को भी एक प्रति भेजी थी। उन्होंने एक चिट्ठी भी लिखी थी जिसमें उन्होंने लिखा था कि आठ-दस तरुणों का सचेत गिरोह क्या नहीं कर सकता हैं-लगे रहो। पत्र हमारे लिए बहुत उत्सावर्द्धक था। हमने अगले अंक में इसे छाप दिया। इसका असर यह हुआ कि गोड्डा के छुटभैये कांग्रेसियों ने हल्ला मचा दिया और फाइनैसर पीछे हट गया, पत्रिका बंद हो गयी।

पटना से हमने 'सीमांत' निकाला था जिसका एक ही अंक निकला था।

प्रश्न :- आप जब साहित्य जगत में आये तो पटना का साहित्यिक माहौल क्या था?

उत्तर :- कविता में दिनकर थे-उग्र राष्ट्रवादी, नागार्जुन थे-प्रगतिवादी। केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' आदि भी थे। रेणु तब के (1955 में) चमकते हुए सितारे थे। 1957 में 'परती परिकथा' छपी। अद्भुत चर्चा होती थी उनकी। 1957 के दिसम्बर में इलाहाबाद में साहित्यकारों का एक बड़ा सम्मेलन हुआ। इसके संयोजक अमृत राय थे। नागार्जुन के साथ मैं भी गया था। संयोग से हिन्दी के सभी प्रतिनिधि साहित्यकार वहाँ पहुँचे हुए थे। प्रगतिवादियों में रामविलास शर्मा और

प्रयोगवादियों में अज्ञेय को छोड़कर सब थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, नामवर जी, मार्कण्डेय, रेणु सब थे। उसी समय मेरी रेणुजी से मुलाकात हुई। वे थोड़ी देर से आते थे और पीछे से कमरे में प्रवेश करते थे। वे जब आते थे तो हॉल के उपस्थित सारे लोग पीछे पलटकर एकबार जरूर देख लेते थे और 'आ गये' की खुसफुसाहट होने लगती थी। अद्भुत स्मृति थी उनकी। एक दिन राजकमल में उनसे भेंट हो गयी। पूछा-पहचानते हैं? 'अरे खगेन्द्र, परीक्षा ले रहे हो' कहते हुए गर्मजोशी से मिले। हमने 'नयी प्रतिभाएं' नाम से एक संकलन निकाला था जिसकी तब बड़ी चर्चा हुई थी और वे उनके द्वारा मेरे बारे में जानते थे। उस समय मैं एम. ए. में था। वे मंगल तालाब, पटना सिटी के पास एक क्वार्टर में रहते थे। मैं रविवार को उनसे मिलने जाया करता था।

नलिन विलोचन शर्मा तब पटना विश्वविद्यालय में थे। वे प्रयोगवादी थे। उन्होंने 'नकेनवाद' का प्रारम्भ किया और द्वादश सूत्री पशपशा लिखा। उसमें एक सूत्र था कि कविता में सम्प्रेषण नहीं होता। जब मैं शोध कर रहा था तो मुझे टी.ई. ह्यूम की पुस्तक 'स्पेकुलेशन'-जो कि 1914 में छपी थी, में इसी तरह की पंक्तियां मिली थीं। नलिन जी संस्कृत के विद्वान रामावतार शर्मा के पुत्र थे और स्वयं संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे। पहले मैंने उन्हीं के अधीन रिसर्च के लिए अप्लाई किया था, पर उनका निधन हो गया।

एक रोचक घटना मुझे याद है। लखनऊ से कम्युनिस्ट पार्टी की एक पत्रिका निकलती थी- 'नया पथ'। उसके प्रधान संपादक थे यशपाल और राजीव सक्सेना कार्यकारी संपादक थे। 58 के जनवरी महीने के अंक में यशपाल का एक आलेख निकला-'साहित्य में आलोचना का स्थान'। इसमें उन्होंने बड़े भद्दे ढंग से आलोचकों को लताड़ा था। एक जगह उन्होंने लिखा-"गाड़ी के साथ-साथ एक कुत्ता चलता रहता है। कभी-कभी वह दौड़कर आगे हो जाता है तो समझता

है कि गाड़ी मैं ही चला रहा हूँ। यही हाल आलोचकों का है जो ये सोचते हैं कि साहित्य का विकास उन्हीं के चलते होता है।" मैं तब एम. ए. का विद्यार्थी था। मैंने उसकी प्रतिक्रिया में उसी शीर्षक से एक आलेख लिखा जिसमें मैंने कुत्ते के उपमान पर कड़ी प्रतिक्रिया जाहिर की और कहा कि आलोचना का साहित्य में रचनात्मक स्थान होता है। यशपाल ने अपने आलेख में यह भी लिखा था कि मैंने 'बलचनमा' नहीं पढ़ा है। मैंने उसकी भी आलोचना की कि हिन्दी उपन्यास की धारा बदल देने वाले उपन्यास को जिसने नहीं पढ़ा वह क्या आलोचक हो सकता है। यशपाल ने मेरा वह आलेख यह लिखते हुए छपा कि हिन्दी के उदीयमान आलोचक ने मेरे आलेख पर टिप्पणी की है। साथ ही बहस के लिए भी पाठकों को आमंत्रित किया। चंद्रबली सिंह का भी आलेख इस सिलसिले में छपा जिन्होंने मेरे स्वर में स्वर मिलाया था।

प्रश्न :- आपने अपने कर्मजीवन की शुरुआत कैसे की?

उत्तर :- एम.ए. पास करके निकला और नौकरी जैसे प्रतीक्षा कर रही थी। कई जगह मेरा चयन हुआ, दुमका तथा भागलपुर के ही टी.एन.बी. कॉलेज में। मैंने सुल्तानगंज का प्रतिष्ठित कॉलेज मुरारका कॉलेज ज्वाइन किया। कॉलेज में मन लगाकर पढ़ाता था। दूसरी व्यवस्थाएं भी थीं। मैं भागलपुर शिक्षक संघ का संस्थापक और जनरल सेक्रेटरी था। गर्मी की दो महीने और दशहरे के एक महीने की छुट्टी में पटना या बनारस चला जाता था और लाइब्रेरी में पढ़ता रहता था।

कामेश्वर प्रसाद बिहार विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। मैं अंगिका पर काम करना चाहता था। उन्होंने बताया कि इस पर वे काम करके सबमिट कर चुके हैं। एक बात मुझे आज तक याद है जो उन्होंने मुझे पत्र में लिखा था। उन्होंने लिखा था कि आप भाषा विज्ञान पर काम करना चाहते हैं, यह अच्छी बात है क्योंकि मिट्टी गूंथने से अच्छा है पथर फोड़ना।

सन् 1968 के दिसम्बर में शोध पत्र जमा किया। 22 जुलाई 1969 को वाइवा हुआ और मई में रिपोर्ट आ गयी। डॉ. रामकुमार वर्मा और दिल्ली विश्वविद्यालय की डॉ. सावित्री सिन्हा एक्सटर्नल बनकर आये। गाइड थे भागलपुर विश्वविद्यालय के डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव। बहुत घूमा-फिराकर सवाल पूछे गये। कहा गया कि बिहार के कवियों को यहां ज्यादा उद्धृत किया गया है। मैंने कहा कि मेरे पास उनका कविताएँ थीं, वैसे उत्तर प्रदेश के कवियों को भी मैंने उद्धृत किया है। बाद में पता चला कि गाइड और डॉ. वर्मा घनघोर जनसंघी थे। सुनने में आया कि गेस्ट हाऊस में उनलोगों ने कमेंट भी किया कि कम्युनिस्ट मालूम पड़ता है।

शोध के प्रसंग में ही एक बात और। सन् 63-64 में दिनकर एक साल के लिए भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति बनकर आये। मैं उनसे मिलने गया। पूछा, कैसे आये हो? मैंने कहा, शोध प्रबंध के सिलसिले में। सुनकर उन्होंने कहा-हिन्दी के शोध प्रबंध से भगवान बचायें। क्या घिसा-पिटा टॉपिक होता है-तुलसी की अलंकार योजना, सूर का वात्सल्य वगैरह। जब मैंने अपना विषय सुनाया- 'छायावादी कविता की भाषा का अनुशीलन' तो तन कर बैठ गये। कहा, यह विषय कैसे चुना? मैंने कहा, भाषा विज्ञान पर सोचा था। हिन्दी में इसपर पर्याप्त काम नहीं है। मेरा मानना है कि हिन्दी की भाषा को समृद्ध करने में छायावाद की महती भूमिका है। वे बहुत आश्वस्त हुए। अपने शोध के सिलसिले में मैं डॉ. कामेश्वर शर्मा से भी मिला था। उन्होंने कहा कि कोई और विषय क्यों नहीं चुनते? मैंने कहा कि आप चाहते हैं कि दस थीसिस पढ़कर मैं ग्यारहवीं लिख दूँ?

छायावाद पर दो ही किताबें तब आयी थीं। शंभुनाथ सिंह का छायावाद युग और नामवर सिंह का छायावाद। तब की परिपाटी थी कि लोग किसी भी विषय को ऋग्वेद से प्रारंभ करते थे। मैं सीधे विषय पर आ गया। अपने शोध के लिए मैंने भाषा विज्ञान तथा काव्य

शास्त्र का गहन अध्ययन किया। भाषा विज्ञान में भी अर्थ विज्ञान, शैली विज्ञान को विशेष रूप से पढ़ा। हिन्दी में तब इस पर पुस्तकें कम थीं। इसके लिए मुझे हिन्दी में ज्यादा अंग्रेजी की पुस्तकें पढ़नी पड़ीं। मेरी शोध पुस्तक शोध प्रबंध की तरह बोझिल नहीं थी। इसमें मेरी मुख्य स्थापना यह थी कि छायावाद की प्रवृत्ति हिन्दी की मूल प्रकृति के अनुरूप नहीं है। हिन्दी अपने स्वरूप में विश्लेषणात्मक है, किन्तु छायावाद की भाषा संश्लेषणात्मक है। पुस्तक छपी और चर्चित हुई। इस तरह मैं आलोचना की ओर मुड़ गया। 1972 में नागार्जुन पर मेरी पुस्तक प्रकाशित हुई जो कि उनपर दूसरी या तीसरी पुस्तक थी।

प्रश्न :- तो कविता छूटती गयी?

खगेन्द्र ठाकुर :- नहीं कविता कभी नहीं छूटी। मैं समानान्तर रूप से कविताएं भी लगातार लिखता रहा। अभी भी लिखता हूँ।

प्रश्न :- मार्क्सवाद से आपका जुड़ाव कैसे हुआ?

उत्तर :- सन् 1939 में बिहार में विजयदशमी के दिन कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ। इसमें राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन आदि थे। 1953 में नागार्जुन भागलपुर आये थे तभी उनसे परिचय हुआ। वे कम्युनिस्ट पार्टी के मेम्बर थे। भागलपुर में विष्णु किशोर बेचन थे। वे भी वामपंथी विचारधारा के थे। 1955 में भागलपुर में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। वहाँ पर शनिवार को लेखकों की गोष्ठी हुआ करती थी। इसी गोष्ठी के सिलसिले में पत्राचार के दौरान रामविलास शर्मा से भी परिचय हुआ। मैंने देखा कि हिन्दी के अधिकतर लेखक मार्क्सवाद से जुड़े हुए हैं। इसी क्रम में मैंने महसूस किया कि यथार्थवाद पर आधारित साहित्य ही श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार इस दिशा में धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया।

प्रश्न :- इमरजेन्सी के दौर के अनुभव?

उत्तर :- 24 जून की रात अर्थात् 25 जून की सुबह इमरजेन्सी लगा दी गयी। बहुत लोग जानते हैं कि

नागार्जुन इमरजेन्सी के दौरान जेल गये थे। पर हकीकत यह है कि जनता सरकार के उद्घाटन के दौरान सिवान में मार्च महीने में ही वे गिरफ्तार हो गये थे। मैंने मना किया था कि वे लोग जनसंघी हैं। उनकी जमानत भी नहीं हो पायी, अठारह महीने जेल में बंद रहें। मैं उनसे मिलने भी गया था। उनके बेटे शोभाकांत ने बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका कोर्ट में दायर की तो कोर्ट द्वारा रिहाई का आदेश मिला। 76 की जून में वे जेल से रिहा हुए। पटना में डेरा था-वहाँ से सीधे मेरे पास आये और कविताएं सुनायीं-देखो जी, जेल में लिखी हैं सम्पूर्ण क्रांति के खिलाफ, तुम तो सुनो, औरों को भी सुनाओ। फिर मैंने काव्य गोष्ठी आयोजित की। वे ही कविताएं 'खिचड़ी विप्लव देखा मैंने' नाम से प्रकाशित हुई। 'जनशक्ति' में एक इंटरव्यू भी छपा, नंदकिशोर नवल ने वह इंटरव्यू लिया था। उसमें उन्होंने कहा कि मैं तो वहाँ से निकल आया हूँ। ऐसा लगता है कि वेश्याओं और भडुओं की गली से निकल आया हूँ। वह अंक किसी ने जयप्रकाश नारायण को भी जाकर दिखा दिया। उन्होंने बस इतना ही कहा-उनसे यही उम्मीद थी।

मैं आज भी कहता हूँ कि जयप्रकाश नारायण प्रगतिशील नहीं थे, वे प्रतिगामी थे। उनका झुकाव आर.एस.एस एवं जनसंघ की तरफ था। उनका जो अंतिम भाषण था, वह अब भी है मेरे पास। उसमें उन्होंने फौज के लोगों से कहा था कि यदि जरूरत पड़े तो तुमलोग भी सत्ता के गलत आदेश को नकार देना। यह बात उन्होंने 24 को कही थी और 25 की रात को इमरजेन्सी लगा दी गयी।

प्रश्न :- इसके बाद आता है नब्बे का दौर, समाजवाद का पतन। आप इसे कैसे देखते हैं?

खगेन्द्र ठाकुर :- यह समाजवाद का पतन नहीं था, यह सोवियत संघ की सत्ता का पतन था। पतन था भी नहीं, बल्कि कराया गया था।

सोवियत रूस में सबकुछ सरकार द्वारा दिया जाता

था-नौकरी, शिक्षा, सरकारी लैट वगैरह सारी जरूरतें सरकार द्वारा पूरी की जाती थीं। तो कुछ लोगों के पास बहुत पूंजी जमा हो गयी। बैंक में ढाई प्रतिशत ही ब्याज मिलता था। यह जो पूंजी जिन लोगों के पास सरप्लस हो गयी थी उनका एक नया वर्ग बना, गोर्बाचोव उन्हीं के नेता बने। फिर पार्टी के महासचिव भी बने और राष्ट्रपति भी बने। गोर्बाचोव ने जितने अधिकार हासिल किये थे उतने तो स्तालिन के पास भी नहीं थे। तो यह जो आइडल कैपिटल था इसने सोवियत संघ को तोड़ डाला। आज सोवियत संघ में कोई गोर्बाचोव को पूछने वाला नहीं है। बेरोजगारी, अपराध बढ़ गये हैं। अब लोग फिर कम्युनिस्ट पार्टी की ओर देख रहे हैं। पिछले चुनाव में वे 92 में से 51 सीट ले गये और वोट प्रतिशत 10 से बढ़कर 21 प्रतिशत हो गया है।

यह बांझ पूंजीवाद का दौर है। इसका सूत्र वाक्य है 'हायर एंड फायर', 'प्रॉफिट विदाउट जॉब' और 'ग्रोथ विदाउट इन्वेसमेंट'। इसमें मुनाफा तो होता है पर रोजगार पैदा नहीं हो रहे हैं। बिना निवेश के पूंजी बढ़ती जा रही है, रोजगार नहीं पैदा हो रहा है। ये सट्टा बाजार की पूंजी है। अभी जो पूंजी है, वह वित्तीय पूंजी है अर्थात् पूंजी से ही पूंजी पैदा होती है। इस प्रकार यह वित्तीय पूंजीवाद का दौर है। अब का दौर कंस्ट्रक्शन का नहीं इन्वेस्टमेंट का है।

एक समय था जब सोवियत संघ की मदद से हमारे दुर्गापुर, भिलाई, बोकारो आदि के जो प्लांट चलते थे, वे क्रमशः आत्मनिर्भरता की ओर उन्मुख थे। आज जो विश्व राजनीति है वह देशों को युद्ध में ढकेल रही है। यह बाजार और मुनाफा का प्रभाव है। हथियारों में पैतालिस गुणा मुनाफा होता है।

प्रश्न :- आज के समय पर आपकी टिप्पणी?

खगेन्द्र ठाकुर :- पूरा माहौल देश का गैर-जनतांत्रिक है, दलित विरोधी है। विकास के नाम पर आंकड़ों का झूठ फैलाया जा रहा है। 77 प्रतिशत आबादी आज भी 20 रुपये रोज खर्च नहीं कर पाती। इस 77 प्रतिशत

की ओर ध्यान देना होगा। नरेन्द्र मोदी जी चौबीस पच्चीस देशों में घूम आये। पूंजीपतियों, को कारोबारियों को न्यौता दे रहे हैं। यहां के संसाधनों के उपयोग की ओर ध्यान नहीं हैं। नेहरू की पॉलिसी आत्मीयता की थी जिसे नरसिंह राव ने तोड़ा। आज एन. डी. ए. और यू.पी.ए सरकार में कोई फर्क नहीं है।

प्रश्न :- साहित्य और राजनीतिक में आज जो इतनी दूरी आ गयी है, इसे आप किस रूप में देखते हैं?

खगेन्द्र ठाकुर :- राजनीति कई तरह की होती है। एक सत्ता की राजनीति होती है और एक निष्ठा थी। राजनीति मात्र का विरोध नहीं होना चाहिये। उचित हो कि हम गलत राजनीति का विरोध करें। सवाल यह है कि कौन सी राजनीति हो। यथास्थितिवाद का विरोध होना चाहिए।

प्रश्न :- क्या समाजवाद एक यूटोपिया है?

खगेन्द्र ठाकुर :- यहां यह समझने की जरूरत है कि वर्ग संघर्ष तब भी था जब मार्क्सवाद नहीं था, मार्क्स ने पर्दा उठाकर दिखा दिया। यह हमेशा किसी न किसी रूप में विद्यमान रहेगा। इसीसे समाज में गति आती है और समाज का विकास होता है। वर्ग संघर्ष समाप्त हो जाने के बाद भी अंतर्विरोध तो रहेंगे ही। एक समय था जब विश्व पूंजीवाद और विश्व समाजवाद

आमने सामने थे। सोवियत रूस, पूर्वी यूरोप के देश, चीन, वियतनाम, क्यूबा ये एक तरफ थे। फिर दुनिया एक ध्रुवीय हुई। आज सोवियत रूस में एक बार फिर पुतिन ने अमरीका को देखकर अपना रुख बदला है। साम्यवाद या कम्युनिस्ट आंदोलन भारत में कमजोर हुआ है, यह सच है। उसकी वजह क्या है, यह एक प्रश्न है। पर इससे उसका महत्व कम नहीं हो जाता। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा था कि वसंत आता नहीं, उसे लाना पड़ता है।

प्रश्न :- आप अपने आपको किस रूप में देखते हैं-संगठनकर्ता, कवि या आलोचक?

खगेन्द्र ठाकुर :- किसी एक रूप में नहीं। कविता लिखता हूँ, आलोचना को मान्यता मिली, लोग आलोचक मानते हैं। मैंने व्यंग्य भी लिखा। संगठनों में भी महत्वपूर्ण योगदान किया। सब साथ-साथ चलता रहा।

प्रश्न :- इक्कीसवीं सदी की कविता के लिए क्या उम्मीद देखते हैं आप?

खगेन्द्र ठाकुर :- आज जो कविता लिखी जा रही है वह उस दौर से भिन्न है जब नागार्जुन, धूमिल, अरूण कमल या राजेश जोशी लिख रहे थे, हालांकि इन सब की भी पहचान अलग अलग है। मैंने एक जगह लिखा था- समकालीन कविता में पसीना नहीं है।

समय के इन्टर ऐक्शन का बोध

विमल वर्मा

रामनिहाल गुंजन की 'समयान्तर' कविता की इन पंक्तियों में—ऋतुएं आती और चली जाती हैं/समय के वृक्षों पर/खिलते हैं किसिम-किसिम के/फल-फूल/ जो बदले हुए समय में बदलते रहते हैं अपना रंग रूप भी।'

शब्द की सत्ता संयोग और अनिवार्य के स्थिति बोध को ध्वनित करती हुई कृतिकार द्वारा सम्प्रेषित गतिमयता का विशिष्ट मानसिक संदर्भ भी उद्धृत करती है।

कविताओं में जीवन की संरचनात्मक व्यवस्था को प्रकृति के माध्यम से विश्व-ऐतिहासिक रूपों के क्रम में निर्धारित करते हुए वैज्ञानिक विमर्श की मीमांसा अन्तर्ग्रथित की गई है। इसे 'भाषा' कविता में—“कविता में दिखाई पड़ती है/ पूरी दुनिया अपनी धुरी पर नाचती हुई/जिसे देखने के लिए/ गैलीलियो के दूरबीन की नहीं/कवि दृष्टि की होती है/जरूरत/क्यों कि वह देखता है/ इसे निरन्तरता में।” अनुभूत किया जा सकता है। इन स्वराधातों और अवधारणाओं के गर्भ में ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रिया के साथ परिवर्तनों के सिलसिले का यह संकेत है कि इसमें द्वन्द्ववादी संबंध होता है। क्या इसे चेतना पर दिक् का विस्तार नहीं कहा जा सकता?

इन दिनों रामचन्द्र शुक्ल पर योजनाबद्ध रूप में रिडक्शनिस्ट अभियान चलाया जा रहा है। मुझे आश्चर्य नहीं है। इतिहास साक्षी है कि रूस के प्रोलेटकुल्ट द्वारा कुत्सित प्रचार के जवाब में लेनिन ने टालस्टाय की रचनाओं को 'रूसी क्रान्ति का दर्पण' नामक लेख लिखा था। ऐसे समय में 'रामचन्द्र शुक्ल' आप की कविता पढ़कर सुकून मिलता है। इस कविता में इतिहास का आन्तरिक तर्क प्रतिबिम्बित होता है। यहाँ परम्परा का मूल्यांकन है। साथ ही साथ तथ्यों की धारणा, यथार्थ कालबद्ध इतिहास चेतना की अन्तःक्रिया, सौन्दर्यबोध और विचारधारा में अन्तःसंबंध, सहसंबंध ऐतिहासिक सीमा में कविता की भावधारा के भीतर परिवर्तन को उनके सभी निर्णायक कारकों के साथ प्रगट किया गया है।

'निराला' कविता पाठ से यही लगता है कि सचमुच विचार-प्रक्रिया संवेदनात्मक ग्रहण में खुलती है। निराला की चेतना में वस्तुजगत आत्मजगत में प्रतिबिम्बित होता है। विश्वदृष्टि संबंधी, जीवनधारा संबंधी, आस्था और ज्ञान संबंधी, रागात्मक तात्त्विकता छन कर कविता में संक्रमित हुई है।

शमशेर, परसाई, मुक्तिबोध का मनस्तत्त्व, उनकी आवेगात्मक प्रक्रिया, रचनाशीलता में नाटकीय भंगिमा, परिवर्तन की छटपटाहट में प्राणवत्ता केवल गहन

संवेदनात्मक प्रक्रिया ही नहीं बल्कि इनमें सक्रिय इतिहास है। रचना में अन्तर्निहित मनस्तत्व में अतीत की ध्वनियां वैचारिकता का उन्मेष, परम्परा-इतिहास बोध का पर्यालोकन, संक्रमण, विपर्यय की गहरी चेतना, संघातों की सक्रियता, जुझारू संघर्ष प्रतिध्वनित होता है।

‘भोजपुर’ कविता मानो विचार का संवेगीय रूपक है। पाठ-अनुभूति में सृजनात्मक व्यक्तियों के समय के इन्टरएक्शन गूँजने लगता है। यहाँ कथानक शैली वाली संवेगात्मकता सन्निहित है।

पाठ में समय, परिस्थिति और समाज ग्रथित होता है। इस ‘समयान्तर’ कविता संकलन में देश विशेष कर भोजपुर का असमान विकास, पुरा संकेत, कलात्मक ऊर्जा, स्वाधीनता संग्राम, समकालीन संघर्ष की सांकेतिक संश्लिष्ट चेतना- दृष्टि द्वारा मानो कवि ने ऊपर सतह तोड़ कर, भीतर छिपे अतीत और प्रगट वर्तमान अवशेषों को सतह पर ला दिया है। इस तरह सभ्यता के आवरणों को चीर कर आदिम से आधुनिकतम मनोभावों से भौतिक संबंध स्थापित हो जाता है।

यहाँ कविता के शब्द सामाजिक विकास, परिवर्तनों, मोड़ों के प्रतिबिम्बन हो गए हैं। जहाँ इसमें काल के आयाम में तथ्य की लम्बी छाया है, वहीं निरन्तरता में कलान्तर और कालान्तरा में नैरन्तर्य भी है।

गोरख पाण्डे और नवारुण भट्टाचार्य की याद में लिखी कविताएं पढ़ कर मुझे टेरीइगल्टन के विचार कौंध उठते हैं। उन्होंने लिखा है कि “...जब हम देखेंगे कि वर्तमान राजनीतिक युग में वामपंथ की सफलता की संभावनाएं स्पष्ट रूप से कम दिखायी पड़ रही हैं। मनुष्य को साधन-स्वरूप समझने और गैर-प्रयोजन मूलक ढंग से सोचने का मतलब यह नहीं है कि इससे हम अपनी असफलताओं को तर्क संगत ठहरायें। यह तो आत्मघाती होगा। बेंजामिन के विचार से यह गैर

प्रयोजन मूलकता ‘स्तवहीनों के संघर्ष की किसी घटना का विस्फोट इतिहास की निरन्तरता के बाहर भी हो सकती है।’ ...“अन्ततः राजनीतिक उपलब्धि में सहायक होती है, क्योंकि इससे हम अपनी क्रान्तिकारी कल्पना में इन बिखरे हुए क्षणों को पुनः प्राप्त कर लेते हैं और उन्हें एक ऐसे पैटर्न में एकत्र कर देते हैं, जो शासक द्वारा बनाए गए इतिहास के बिम्ब का विकल्प बन जाता है। और वर्तमान की राजनीतिक कार्रवाई में अपनी भूमिका निभाता है।...दक्षिण पंथ की शक्ति के विरुद्ध वामपंथ जो चीज खड़ी करता है, वह असफलता नहीं, बल्कि सत्ता की एक बदली हुई अवधारणा है।

बामियान की बुद्धमूर्ति के तोड़े जाने पर लिखी गई कविता में निरंकुश सत्ता के दमनात्मक स्वरूप का दृश्यगत बोध होता है। ‘बुद्ध जिस ऐतिहासिक रूप में अपरिपक्व परिस्थितियों, समय, समाज, सामाजिक संक्रमण के दौर के उत्पाद थे, उसमें बुद्ध का दर्शन निःसंदेह क्रान्तिकारिता लिए हुए था। किन्तु उस युग, ज्ञान और समय की प्रगतिशीलता की अपनी सीमाएं थीं, जिसका अतिक्रमण बुद्ध भी नहीं कर सकते थे। परन्तु बुद्ध प्रयोग धर्मी थे और उनका उद्देश्य एक ऐसी मानवतावादी दुनिया की पुनर्रचना करना था जहां करुणा, प्रेम स्वतंत्रता व्यक्ति के जीवन का हिस्सा हो।

उनकी प्रतिमा का विध्वंस करने वाली शक्ति तालिवान थे। वह शक्ति अमरीकी साम्राज्यवाद का उत्पाद है। फासिस्ट शक्तियों के ऐसे कारनामों से इतिहास भरा पड़ा है। शान्ति प्रिय मानवतावाद के लिए यह चेतावनी भरी परिघटना है। जैसा कि इस कविता में—“शान्ति पर अशान्ति के कहर/ढाये जाने की बात/पहले लोग पढ़ते थे किताबों में/आज वह सच साबित हुआ/बामियान में बुद्ध मूर्तियां तोड़े जाने पर।”

समीक्ष्य पुस्तक समयान्तर तथा अन्य कविताएं, कवि-रामनिहाल गुंजन

प्रकाशक : आरोही, ए-2/128, से-11 रोहणी, नई दिल्ली 110085, मूल्य : 100 रुपये

मो. - 06291598148

व्यंग्य वैयक्तिक भावनाओं का अभिव्यक्तिकरण होता है

अनिरुद्ध सिन्हा

अपने सुख-दुख को अभिव्यक्त करने के लिए अन्य विधाओं की तरह हास्य-व्यंग्य भी एक सटीक माध्यम है। इसकी विशाल सीमाओं में देखिए तो कुछ भी जीवन, युग और तत्कालीन स्थितियों से अलग दिखाई नहीं देगा। एक छोटा अंश भी व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त होगा तो उसमें जीवन होगा। अतः जब एक सिद्ध व्यंग्यकार जीवन को रूपायित करता है तो वह युग, जीवन और इतिहास की कठोर आलोचना हो जाती है।

‘कट्टा निकाल के’ अशोक अंजुम का नवीनतम गलजों/गीतों का हास्य-व्यंग्य संग्रह है जो हाल ही में संवेदना प्रकाशन से प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष आया है। संग्रह में 13 गजलें और 33 गीत हैं जो अलग-अलग भावभूमि पर केन्द्रित हैं। जिनके केंद्र में मनुष्य है। लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के भाव गजलों और गीतों में सन्निहित हैं। लेकिन इन सबके बावजूद इस युग का उन्मेषकारी वातावरण ही सर्वोपरि है जिसमें राष्ट्रीय जागृति, नए आदर्श तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव भरने का प्रयास मिलता है। ऐतिहासिकता, सांस्कृतिकता, दार्शनिकता तथा काव्यमयी शैली संग्रह की गजलों और गीतों की विशेषता है। यह संग्रह इस बात का सूचक है कि खासकर हिन्दी गजल में एक नए युग आरंभ हो चुका है, जो हिन्दी कविता में एक गुणात्मक परिवर्तन ला देगा। जाहिर है अशोक अंजुम बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। गीत और गजल के अतिरिक्त भी कई अन्य विधाओं में भी इन्होंने काम किया है जिन्हें अनावृत करने की जरूरत है। इस जीवनारेण्य में अकेला, अलग-थलग अपना निरर्थक जीवन जी रहा है। मनुष्य के जीने की इन स्थितियों को वाणी देता यह शेर—

मेरी उडी हुई है हवाई में क्या करूँ

और खिलखिला रहा है वो कट्टा निकाल के

उपरोक्त शेर की वाणी संश्लिष्ट, बहुआयामी और गतिमान है। एक साथ कई अर्थ व्यंजित हो रहे हैं। समकालीन यथार्थ के विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से अपने अभिप्रेत अर्थ को उसकी सम्पूर्ण संश्लिष्टता के साथ व्यक्त करने का सार्थक प्रयास किया है। एक शाश्वत संदेश देने का कोई रास्ता नहीं। भाग्य-चक्र से पिसे मनुष्य

की करुण मूर्ति और उसकी व्यथा है जो आज के जीवन का एक हिस्सा है।

यह किसी को कुछ भी आश्चर्य नहीं लगता। आधुनिक समाज प्रेम के प्रति घोर असहिष्णु समाज है। अपने फलक की दृष्टि से संग्रह की गजलों का रंग अलग-अलग है जिसमें अपनी निजता का विस्तार है और वह सामाजिक यथार्थ अपने साथ लेकर आगे बढ़ता है। कुछ और गजलों की निष्कर्षात्मक परिणति के भीतर छुपे आवेग और विवेक की पड़ताल इन शेरों के माध्यम से की जा सकती :—

बीमा करा लो, कह रही हूँ कब से आप से
बीवी ने कहा रात ये मुझसे दहाड़ के

किन बंदरों के हाथ में है संविधान उफ
डर है यही कि ये इसे रख दें फाड़ के

किस तरह का चाहिए वर आपको
बोलिए भी दास सारे फिक्स हैं

जाल बिछाओ पंछी निश्चित आएंगे
रिश्वत की है टेरे, है दाना रिश्वत का

उपरोक्त सारे शेर करुणात्मक होते हुए भी व्यंग्यात्मक हैं, विवेक से पूरी तरह संयमित। व्यंग्य रचना के समय, व्यंग्यकार की विचारधारा एवं उसकी अपनी कल्पनाशक्ति वस्तुगत यथार्थ को किस प्रकार प्रभावित करती है। अशोक अंजुम जिन कल्पनाओं का उपयोग करते हैं वे वस्तुतः वस्तुगत-यथार्थ उसकी संपूर्णता में देखने के लिए प्रयुक्त होती हैं, वे वास्तविकताओं को एक तरफ गहराई से देखने की दृष्टि प्रदान करती हैं। विसंगतियों के उल्लेख करने के बाद भी सारे शेर मर्यादित, स्पष्ट और संतुलित हैं।

जैसा कि देखा जा रहा है हास्य-व्यंग्य के नाम पर समसामयिक वास्तविकताओं को किसी राजनैतिक अथवा आर्थिक विचारधारा के चौखटे में 'चूरगांठ' मिलाने के बाद, किसी तरह ठोंकपीट कर फिट कर देना आज के अधिकांश व्यंग्यकार सबसे बड़ी असफलता है। लेकिन अशोक अंजुम की व्यंग्य रचनाओं में चित्रित यथार्थ का एक स्वस्थ पक्ष है कि उनमें सहजता और ग्राह्यता है। इनके गीतों में भी यह सहजता वैविध्य के साथ विकसित दिखाई पड़ती है। विषय वैविध्य तो है ही। यथार्थ चित्रण के बहाने जीवन भी साथ-साथ चलता है। मतलब व्यंग्य जीवन सत्तों की खोज का साधन बन जाता है जिसमें विपन्न, जड़, निराशा और निष्ठुर जीवन के लिए सांत्वना, उत्साह, आशा-उल्लास तथा विरोध की आकुलता आदि सब कुछ प्राप्त है। देखें गीत की इन पंक्तियों में की तरह समष्टि चित्र कैसे उद्घाटित होते हैं—

ऐ भारत की बेटी, ये क्या बेचती है?
ये मदमस्त यौवन, ये अंगों की थिरकन
दिमागों में रंगीं सुरंगों की थिरकन
ये चन्दन से लिपटी भुजंगों की थिरकन
ये शम्मा पे अनगिन पतंगों की थिरकन
ये कैसा भयानक नशा बेचती है।

यह उत्तर आधुनिकता के बाजार में एक व्यंग्यकार के ईमानदार आत्मान्वेषण का एक गीत है। इसमें अर्थ की एकाधिक ध्वनियाँ समाहित हैं। विरोध, कटाक्ष और यथार्थ का मिला-जुला मिश्रण है। नारी दुर्दशा के दर्द की हल्की दृसी धमक है। संग्रह की सारी गजलें और गीत पठनीय हैं। स्वस्थ हास्य-व्यंग्य की गतिशील संवेदना भी।

संपर्क : अनिरुद्ध सिन्हा, गुलजार पोखर, मुंगेर(बिहार) 811201, मो. 9430450098

'कट्टा निकाल के' (हास्य-व्यंग्य गज़लें/ गीत), कवि : अशोक 'अंजुम'

प्रकाशक : संवेदना प्रकाशन, चंद्र विहार कॉलोनी, अलीगढ़(उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण : 2017, मूल्य : 150 रुपये

भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य : रंजीत कुमार सिन्हा

पिंकी कुमारी बागमार

मेरी एक पंक्ति है—“कलम जब चलती है...हकीकत के हर रूप से खबरू करा देती है।” इस पंक्ति को सार्थक करती है डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा की आलोचनात्मक पुस्तक “भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य” (2016)। सिन्हा जी की अन्य पुस्तकें आधुनिक हिंदी साहित्य के शताब्दी पुरुष (2013), ‘जहाँ अभी रहता हूँ मैं’ (काव्य संग्रह-2018) प्रकाशित हो चुकी हैं। सिन्हा जी एक सक्रिय लेखक हैं! अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख, पुस्तक समीक्षा प्रकाशित होती रहती हैं। यह पुस्तक रणजीत कुमार सिन्हा ने साहित्य प्रेमियों को समर्पित किया है।

‘भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य’ रणजीत कुमार सिन्हा की एक आलोचनात्मक कृति है इसमें कुल 16 लेख हैं—‘भूमंडलीकरण और हिंदी कहानी’, ‘भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास’, ‘भूमंडलीकरण और हिंदी कहानी’ भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य की दशा’, ‘विज्ञापन और मीडिया में नारी’, ‘ग्लोबलाइजेशन और सांस्कृतिक संकट’, ‘हाशिए पर आदिवासी समाज और संस्कृति’ आदि। भूमंडलीकरण ने आज व्यक्ति और समाज को पूरी तरह बदल कर रख दिया है, आज व्यक्ति बाजारवाद के हाथों की कठपुतली बन कर रह गया है। समाज में हो रहे बदलाव और भूमंडलीकरण के प्रभाव को समकालीन साहित्यकार किस प्रकार देख रहे हैं और किस प्रकार अपने लेखनी में दिखा पा रहे हैं, इस पुस्तक में सम्मिलित लेखों में इस पर ही विचार किया गया है।

बाजारवाद के फलस्वरूप भारतीय समाज में रहन-सहन, खान-पान, चाल-ढाल बिलकुल बदल गया है। अपने लेख ‘भूमंडलीकरण और हिंदी कहानी’ में सिन्हा जी हिंदी कहानियों में दिखाए गए बाजारवाद के प्रभाव को बताते हैं। लेखक हरपाल सिंह अरुण की कहानी ‘कैम्पस’ का उदाहरण देते हुए सिन्हा जी ने बताया है कि किस तरह आज बाजारवाद ने व्यक्ति की काबिलियत को हॉसिए में कर, रंग-रूप को मुख्य पृष्ठ पर रख दिया है—‘परीक्षा में टॉप करने पर भी बरतिका का सलेक्शन नहीं होता है। साक्षात्कार में उससे जो प्रश्न पूछे जाते हैं वे बेकार एवं मानसिक शोषण करने के लिए हैं—‘यदि आपका बॉस फेयर कम्प्लेक्शन का एडमायर हुआ, तो आप उसे कैसे सैटिसफाई करेंगी? इन एट्रेक्टिव एवं ग्रेसफुल स्माइल कहाँ से लाओगी?’ इस बाजारवाद के दौर में सफलता मेहनत, ज्ञान से नहीं मिलती है। सफलता मिलती है रंग, रूप मुस्कान, पर्सनालिटी से।

‘हाशिए पर आदिवासी समाज और संस्कृति’ लेख में रणजीत सिन्हा भारतीय समाज में आदिवासियों की जो स्थिति है, जो दशा है उसे कुछ उपन्यासों में दर्शाये गए आदिवासियों के हालातों का उदाहरण देते हुए बताते हैं। संजीव के उपन्यास ‘पाँव तले की दूब’ में बढ़ते औद्योगिकीकरण के चलते विस्थापित आदिवासी समाज के यथार्थ का चित्रण दर्शाते हैं—‘फिलीप की यह धरती हमारी सोना उगलती है और इस सोने की धरती की हम कंगाल संतान है।’ आदिवासियों की दशाओं को विभिन्न उपन्यासों के माध्यम से चित्रित करते हुए रणजीत सिन्हा सभी से एक सवाल करते नजर आते हैं—“पर भारत के इन सपूतों की गरीबी के कारण भुखमरी तथा कुपोषण से जूझते जीवन का आखिर कौन

जिम्मेदार है?...आदिवासी प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के रक्षक है पर आज आजाद भारत में वे क्यों हाशिए पर ला कर खड़े कर दिए गए?

भारत में आज हमारे अन्न दाता किसानों की क्या स्थिति है, किस तरह उनका शोषण हो रहा है, अपने लेख 'भूमंडलीकृत समय में किसान आन्दोलन' में रणजीत सिन्हा बखूबी दिखाते हैं-'1991 के बाद से विश्व बैंक और अंतराष्ट्रीय मुद्राकोष ने खुले आयत नीति ने भारतीय किसानों की कमर तोड़ दी है। बढ़ती हुई कृषि जगत पर लागत और घटते हुए कृषि उपज में भारतीय किसान फँसकर दम तोड़ रहे हैं। कर्ज में डूब किसान आज आत्महत्या करते नजर आ रहे हैं। पिछले 15 वर्षों में किसानों की आत्महत्या में लगातार इजाफा हुआ है। भूमंडलीकृत की सुधार नीति ने भारत के छोटे और मध्यम किसानों को आत्महत्या करने पर मजबूर कर रही है। किसानों के खेती को विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में कॉन्ट्रैक्ट पर देकर किसान को मजदूर, फिर मजदूर से आत्महत्या की राह पर लाकर खड़ा कर दिया है।'

आज बाजारवाद ने हमारी संस्कृति और परम्परा को पूरी तरह बदल दिया है। आज व्यक्ति बाजार की वस्तु मात्र बनकर रह गया है। अपने लेख 'ग्लोबलाइजेशन और सांस्कृतिक संकट' में रणजीत सिन्हा इसकी व्याख्या करते हैं-'भूमंडलीकरण और उपभोक्ता संस्कृति आत्म-केंद्रित है। अमानवीय है। एक ओर गरीबी बढ़ रही है, दूसरी ओर रिसोर्ट कम्पनियाँ में हालीडे पैकेज है। मौजमस्ती के विविध साधन है। आज नवजवान अपने ही घर को लुटते हैं...बूढ़े लोगो की समस्याएँ बढ़ रही है।'

आज संस्कृति का जो औद्योगिकरण हो गया है, उसने साहित्य को भी एक व्यापार के क्षेत्र में ला खड़ा किया है। बाजारवाद से साहित्य भी अछूता नहीं रहा।

इसका भी उल्लेख रणजीत जी इस लेख में करते हैं-'संस्कृति के औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के चलते साहित्य में भी एक बेचैनी पैदा हुई है। आज साहित्य को उत्पाद मानकर उसकी मार्केटिंग हो रही है, मीडिया में चर्चित और विख्यात होने के कारण सलमान रश्दी, विक्रम सेठ, चेतन भगत, तसलीमा नसरीन, अरुंधती राय की किताबें काफी तेजी से लोकप्रिय हुई है-'... जिस तरह हिंदी सिनेमा से आजकल एक आइटम सांग का होना अनिवार्य माना जा रहा है, ठीक उसी प्रकार हिंदी साहित्य में भी आजकल सेक्स को जबरन ठूँसा जा रहा है।'

बाजार के प्रभाव से साहित्य भी बुरी तरह प्रभावित हो चुका है। बाजार ने मीडिया साहित्य के द्वारा पूरे समाज में अपना कब्जा जमा लिया है। साहित्यकार मीडिया का उपभोक्ता बनता जा रहा है, इसे रणजीत सिन्हा अपने लेखों के माध्यम से बखूबी दिखाते हैं।

रणजीत सिन्हा ने अपने हर लेखों के माध्यम से बाजारवाद के प्रभाव से समाज, संस्कृति, परम्परा, रिश्तों और हिंदी साहित्य में हो रहे बदलाव को बहुत ही अच्छी तरह से वर्णन किया है। आज किस तरह मानवीय संवेदनाएं खत्म होती जा रही और उसकी जगह मास कल्चर चारों ओर नजर आने लगा है, इसका भी बखूबी वर्णन मिलता है। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठक आज बाजारवाद के प्रभावस्वरूप समाज में अपनी स्थिति के विषय में सोचने के लिए मजबूर हो जाएँगे।

प्रस्तुत आलोचनात्मककृति में समकालीन हिंदी साहित्य पर बाजारवाद का प्रभाव किस कदर पढ़ रहा है। समाज, संस्कृति, भाषा के साथ-साथ जीवन का हर पहलु आज बाजारवाद के गिरफ्त में है, जिसका कहानी एवं उपन्यासों के जरिए इसमें सार्थक विवेचन किया गया है।

(भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य-डॉ.रणजीत कुमार सिन्हा, मानव प्रकाशन, 131, चितरंजन एवेन्यू, कोलकाता -700073, प्रथम संस्करण-2016, मूल्य-250) फोन-9475004249

मुक्तांचल सृजन श्रृंखला-1 : शुभ्रा उपाध्याय की कहानी 'नेपथ्य' का पाठ

मुक्तांचल पत्रिका और विद्यार्थी मंच द्वारा आयोजित सृजन श्रृंखला की प्रथम कड़ी कहानी पाठ से शुरू हुई। 28 अक्टूबर 2018 को इस सृजन श्रृंखला-1 के अंतर्गत कहानीकार शुभ्रा उपाध्याय ने अपनी कहानी 'नेपथ्य' का पाठ किया। इस आयोजन में कई रचनाकार, आलोचक, शिक्षक, शोधार्थी और विद्यार्थी उपस्थित थे। कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए संस्था की अध्यक्ष डॉ. मीरा सिन्हा ने सृजन श्रृंखला योजना से जुड़ी अपनी मंशा को स्पष्ट करते हुए कहा कि इस सृजन श्रृंखला के माध्यम से स्थापित साहित्यकारों से लेकर नवीन साहित्यकारों को एक मंच तो मिलेगा साथ ही साहित्य जगत में कहानी-पाठ, कविता-पाठ की परंपरा को पुनःस्थापित किया जाएगा। विभिन्न वर्गों के पाठकों के समक्ष पाठ के उपरांत उनकी त्वरित प्रतिक्रिया तो ली ही जाएगी साथ ही इस प्रयास को गंभीर समीक्षा तक भी पहुँचाया जाएगा।

कहानीकार शुभ्रा उपाध्याय ने बहुत ही संवेदनशीलता के साथ अपनी कहानी का पाठ किया और श्रोताओं ने उतने ही अवधान के साथ उसे सुना। यह कहानी मधु नामक एक स्त्री की है जो अपने और पति के संबंधों को लेकर निरंतर आत्मंथन से गुजरती है। कहानी में ज्यादातर मोनोलॉग (स्वगत कथन) का प्रयोग है। इसमें संवेदनशील स्त्री की संवेदना को पाठक के समक्ष बड़ी ही बारीकी से उकेरा गया है। कहानी पाठ की प्रक्रिया के समाप्त होने के पश्चात श्रोताओं से तत्कालीन प्रतिक्रिया ली गई। कहानी पर संवाद की शुरुआत कहानीकार सेराज खान बातिश ने की। उन्होंने लेखिका की कहानीकला की प्रशंसा करते हुए कहा कि कहानी में दाम्पत्य जीवन की सच्ची छवि आँकी गई है। कहानी सुनकर हम सभी को अपने व्यक्तिगत दाम्पत्य जीवन का स्मरण हो आता है। कहानी की नायिका का अपने पति से अवधान की उम्मीद जितना स्वाभाविक है उसके पति का समय के साथ बदलते जाना भी उतना ही स्वाभाविक है। उनको ऐसा लगा कि कहानी की नायिका को भी समय के साथ अपने पति के समान ही व्यवहारिक होते जाना चाहिए। कला और शिल्प की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि इस कहानी की भाषा बेहद काव्यात्मक और कलात्मक है।

बातिश जी के उपरांत प्राध्यापक और कहानीकार पंकज साहा ने कहानी और कहानीपन की चर्चा करते हुए इस कहानी पर अपना मत व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि कहानी पर कुछ बोलने से पूर्व उसके कई पाठ की आवश्यकता होती है फिर भी प्रथम पाठ में कहानी अपनी छाप छोड़ ही जाती है। कहानी के कथ्य और शिल्प दोनों पर बात करते हुए इन्होंने कहा कि यह कहानी अपनी प्रभाव्यता में अद्भुत है। कहानी के खुले अंत में भी एक खास आकर्षण है। इसके उपरांत श्री आशुतोष कुमार सिंह ने कहानी पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि कहानी की रचना शैली में आ रहे परिवर्तन के संदर्भ में इस कहानी की समीक्षा की जानी चाहिए। उन्होंने कहानी की सक्षमता और अक्षमता दोनों की चर्चा की और कहानीकार से कहानी पर पुनर्विचार करने तक का आग्रह किया। भाषा और प्रतीक आदि को लेकर उन्होंने कई प्रश्न खड़े किए। संवाद के क्रम में अगली प्रतिक्रिया डॉ. इतु सिंह की रही। कहानी को यथार्थ के बहुत करीब पाते हुए उन्होंने दावा किया कि यह कहानी हर दाम्पत्य जीवन की सच्चाई का बयान करती है। पूरी कहानी में संवेदना का आवेग प्रवाहित है। इस कहानी में स्त्री मन का यथार्थ

रूपायित है। कहानी में कथ्य की दृष्टि से ज्यादा विस्तार नहीं है बल्कि स्थिति विश्लेषण और मनःस्थिति का आवेगपूर्ण चित्रण है। कहानी में प्रवाह है और पाठक की जिज्ञासा लगातार बनी रहती है। अंततः नायिका हर भारतीय स्त्री की तरह मान लेती है कि 'जीने की शर्तें कितनी कम होती हैं।'

युवा आलोचक डॉ. मृत्यंजय पांडेय ने कहानी का विश्लेषण करने की प्रक्रिया में जैनंद्र की कहानी 'पत्नी' और अज्ञेय की कहानी 'रोज' की चर्चा करते हुए इस कहानी को उसके आगे की कड़ी के रूप में देखा। आज की स्त्री किस तरह अपने अस्तित्व के प्रति सजग भी है परंतु साथ ही अपने मोह से मजबूर भी इसकी कथा लेखिका ने कही है। उन्होंने माना कि इस कहानी की समीक्षा सही तरह से करने के लिए इस कहानी के कई पाठ आवश्यक हैं। श्री पियूषकांत राय ने कहानी के कथ्य को समकालीन जीवन यथार्थ से जोड़ते हुए उसके भीतर गुंजित स्त्री चेतना को रेखांकित किया। इस कहानी को समझने समझाने के क्रम में उन्होंने काशीनाथ सिंह की कहानी सुख, गुलेरी जी की कहानी उसने कहा था की चर्चा की। असंवेदनशील समय में संवेदना की ऐसी महीन कथा कहना कितना महत्वपूर्ण है इसे समझने की आवश्यकता है। कहानी की भाषा को खास तरह से देखने की कोशिश करते हुए उन्होंने कई उदाहरण देकर शुभ्रा उपाध्याय की भाषाई सक्षमता की दाद दी।

इन वक्ताओं के पश्चात विद्यार्थी और शोधार्थियों ने कहानी पर अपना मत व्यक्त किया। कुछ ने इसे जीवन की सच्ची गाथा कहा तो कुछ ने इस कहानी को स्त्री विमर्श की दृष्टि से भी व्याख्यायित किया। पार्वती साव, अमित कौर और विद्या रजक ने कहानी पाठ के प्रभाव का विश्लेषण किया। डॉ. मीरा सिन्हा ने कहानी की सफलता को पाठकों पर पड़े प्रभाव से जोड़कर देखने की कोशिश की। कहानी के कथ्य और भाषा दोनों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया। अंतिम वक्ता के रूप में कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज की प्रधानाचार्या डॉ. सत्या उपाध्याय ने बहुत ही सारगर्भित वक्तव्य रखा। कहानी को लेकर उठाए गए विभिन्न मुद्दों को समेटते हुए उन्होंने कहानी के मर्म को प्रकाशित किया। उन्होंने कहा कि वह सर्वदा ही शुभ्रा की कहानियों की प्रथम पाठक रहीं हैं और उसकी निर्माण प्रक्रिया से भी परिचित रही हैं। कहानी के शीर्षक को लेकर भी उनका आग्रह ही मान्य रहा है। नेपथ्य शीर्षक पुरुष के जीवन में सर्वदा नेपथ्य में रहने वाली स्त्री की व्यथा की ही कथा है। कहानीकार के कथ्य से भी कहीं ज्यादा उसकी भाषाई क्षमता और कल्पना शक्ति ने उनको प्रभावित किया है।

प्रस्तुति :— इतु सिंह

बंगाल के तीन साहित्यकारों को जन संस्कृति सम्मान

'साहित्य गाँव की ओर' का संकल्प लेकर 'भारतीय जन लेखक संघ', मधेपुरा ने दिनांक: 8.10.18 को प्रेमचंद की पुण्य-तिथि के अवसर पर ग्राम-भतनी, जिला-मधेपुरा(बिहार) में अंतरराष्ट्रीय परिसंवाद एवं कवि-सम्मेलन का सफल आयोजन किया। परिसंवाद का विषय था-'किसानों की समस्या और प्रेमचंद' तथा 'आरक्षण और भारतीय संविधान व अंबेडकर की विचारधारा'। उक्त आयोजन में नेपाल, भूटान व भारत के मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल एवं बिहार के अनेक विद्वत् जनों एवं साहित्यकारों ने सहभागिता दी। हिंदी के वरिष्ठ कथाकार श्री चंद्रकिशोर जायसवाल(पूर्णिया) सहित आस-पास के अन्य अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों व सैकड़ों की संख्या में सुधीजन कार्यक्रम में उपस्थिति हुए। उक्त अवसर पर आगत कुछ विशिष्ट अतिथियों को 'जन संस्कृति सम्मान' से सम्मानित किया गया, जिसमें पश्चिम बंगाल से पहुँचे साहित्यकारों में कोलकाता के कवि-कथाकार श्री कुशेश्वर, खड़गपुर के डा. पंकज साहा, मेदिनीपुर के डॉ. रणजीत सिन्हा शामिल हैं। उक्त अवसर पर डॉ.

पंकज साहा ने 'किसान-समस्या और प्रेमचंद' विषय पर सारगर्भित वक्तव्य प्रस्तुत किया। इस दौरान कुशेश्वर जी की पुस्तक 'अहसास', डॉ. पंकज साहा की पुस्तक 'हिंदी उपन्यास में किसान', डॉ. रणजीत सिन्हा की पुस्तक 'जहाँ अभी रहता हूँ मैं' समेत कुछ अन्य लेखकों की पुस्तकों का लोकार्पण भी हुआ।

प्रस्तुति :- कनुप्रिया(खड़गपुर, प.बं)

बादल की कविता जीवन की कविता है : रविभूषण

हजारीबाग के डीवीसी, प्रशिक्षण सभागार में 14 अक्टूबर 2018 को वरिष्ठ कवि शंभु बादल के कविकर्म पर जन संस्कृति मंच की ओर से एक आयोजन संपन्न हुआ, जिसका संचालन कवि बलभद्र ने किया। अध्यक्षता वरिष्ठ आलोचक रविभूषण ने की। उन्होंने शंभु बादल को हिंदी की क्रांतिकारी धारा का कवि बताते हुए कहा कि वे संघर्षशील मुक्तिकामी कवियों की उज्ज्वल कतार में शामिल हैं।

समकालीन जनमत के प्रधान संपादक रामजी राय ने कहा कि शंभु बादल की कविताएं अलंकाररहित हैं, यह कोई बुरी बात नहीं है, क्योंकि जीवन से बड़ा कोई अलंकार नहीं होता। दरअसल सहजता ही उनकी कविता का अलंकार है और सरलता उसका लय या संगीत है। बादल का कवित्व गतिमान यथार्थ से जुड़ा हुआ है। वे भाषा को अतिरिक्त आवेशित नहीं करते।

जनवादी लेखक संघ के राज्य अध्यक्ष प्रो. अली इमाम ने कहा कि बादल की कविताएं संघर्ष और सामूहिक चेतना की कविताएं हैं।

प्रलेस के राज्य सचिव मिथिलेश सिंह ने कहा कि जुमलेबाजी वाले राजनैतिक दौर में भी कविता का अपना अस्तित्व है। शंभु बादल की कविताएं इसी जरूरी काम को अंजाम दे रही हैं।

जसम के महासचिव चर्चित पत्रकार मनोज कुमार सिंह ने कहा कि शंभु बादल जन संस्कृति मंच के संस्थापक साथी हैं और हमारे पथ-प्रदर्शक हैं। 50 साल से वे सृजनरत हैं और हर दौर में जनता के दमन-शोषण के खिलाफ संघर्षों पर उन्होंने कविताएं लिखी हैं, यह महत्वपूर्ण बात है।

युवा कवि निशांत का कहना था कि शंभु बादल जी सिर्फ कवि नहीं, अपने आप में एक संस्थान हैं। वे एक प्रतिबद्ध कवि हैं और उनके सरोकार आम आदमियों से जुड़े हुए हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से आम आदमी को लगातार जनविरोधी स्थितियों के प्रति आगाह करते हैं।

शायर अनवर शमीम ने बादल जी को लोक मन का पारखी कवि बताते हुए कहा कि उनकी कविता कठिन समय से टकराने वाली कविता है।

'लोकचेतना वार्ता' के संपादक और आलोचक रविरंजन के अनुसार शंभु बादल की कविताओं में स्मृतियों का आलोक और परंपराओं का विकास नजर आता है।

सुधीर सुमन ने कहा कि शंभु बादल परिवर्तन की उम्मीद और संघर्ष के प्रति सक्रियता का भाव जगाने वाले कवि हैं।

इस मौके पर शिल्पा कुमारी झा ने बादल जी की कविता 'सांवली लड़की' और प्रियंका कुमारी ने 'सपनों से बनते हैं सपने' का पाठ किया। स्वयं शंभु बादल ने 'आ बाघ' और अपनी नई कविता 'हंसी फैलेगी' सुनाई।

प्रस्तुति :- सुधीर सुमन

‘मुक्तांचल’ का अप्रैल अंक-जून 2018 का अंक प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। प्रेमचंद के बरास्ते आपने संपादकीय में वर्तमान समाज की विकृतियों पर निर्मम एवं तार्किक कुठाराघात किया है, जिससे पूरी पत्रिका का स्वरूप प्रतिबिंबित हो जाता है। श्री नारायण पाण्डेय जी आ आलेख ‘रवीन्द्रनाथ, प्रेमचंद और मार्क्सवाद’ तत्कालीन लेखकीय वातावरण एवं मार्क्सवाद के प्रभाव का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। लेखक ने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि रवीन्द्रनाथ एवं प्रेमचन्द कट्टर मार्क्सवादी न होते हुए भी मार्क्सवाद से प्रभावित अवश्य थे। ‘आज के नए समय’ में विद्यापति की कविता आलेख में नित्यानंद तिवारी ने परंपरा से मुक्त होकर विद्यापति को नये सिरे से प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। साहित्य के हाशिए पर ठकेल दिये गये महेन्द्र भटनागर को यथार्थ संवेदना के धरातल पर मूल्यांकन करते हुए डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी ने शोधपरक आलेख प्रस्तुत किया है। ‘हिन्दी उपन्यासों में किसान : तुलनात्मक अध्ययन’ शीर्षक से लिखा गया आलेख इस अंक का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस आलेख में डॉ. रणजीत सिन्हा ने भारतीय किसानों की दयनीय दशा और हिन्दी उपन्यासों में उनकी उपस्थिति का तात्विक अनुशीलन किया है। रविभूषण जी ने ‘दो जीवन मूल्यों के बीच ‘वापसी’ शीर्षक आलेख में यह बताने का प्रयास किया है कि ‘वापसी’ केवल एक व्यक्ति, रिटायर्ड व्यक्ति गजाधर बाबू की ही कहानी नहीं, जीवन से संवेदना की रिटायरमेंट की भी कहानी है। इस अंक की कविताएं समकालीन समय से साक्षात्कार करती हुई लगीं। लगभग सभी कविताएं उत्कृष्ट एवं अपने समय को भावमय रूप देती हुई रोती-धोती, हंसी-बतियाती लगीं। डॉ. पंकज साहा की कहानी ‘फरीदचाचा’ अत्यन्त मार्मिक है। फरीद चा अपनी जान गंवा कर एक बच्चे को डूबने से बचा लेते हैं। फरीद चा का धर्म इंसानियत का धर्म है, वहाँ वे मुसलमान नहीं है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर इस कहानी के माध्यम से कहानीकार हमें सोचने के लिए बाध्य करता है। ‘गुमशुदा दिनों की तलाश’ नीरजा हेमेन्द्र की एक ऐसी कहानी है जहाँ प्रेम के अभाव में एक स्त्री अघेड़ उग्र की होकर भी किसी अन्य की ओर आकर्षित होने लगती है। कहानी के कथ्य में सच्चाई है, पर भावात्मक प्रवाह भी है। सत्य-असत्य, भाव-अभाव से टकराती यह कहानी अर्द्धसत्य का एक मानक अवश्य गढ़ती है। इस अंक में एक साक्षात्कार है जिसका शीर्षक है ‘हमारे अनपढ़ आलाचक फतवे देने के लिए प्रख्यात हैं; कुछ अजीब-सा लगा। अनपढ़ केवल आलोचक ही नहीं, लेखक भी हैं। कहीं-कहीं ऐसी तथ्यहीन एवं विचारहीन बातें लेख में लिख दिया करते हैं कि आलोचक को उसे सिरे से खारिज करना पड़ता है। फिर भी बहुत मायनों में यह अंक काफी उत्कृष्ट बन पड़ा है। इस उत्कृष्ट अंक के लिए संपादक एवं संपादक मंडल का हार्दिक बधाई।

संपर्क : डॉ. हरeram पाठक, हिन्दी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई-786171 (असम) मो.

9435137624

मुक्तांचल का जुलाई-सितंबर 2018 का अंक मिला। अपने स्थायी स्तंभों के साथ इस अंक में मेरे उपयोग तथा सरोकार का पिटारा भरा हुआ है। आलेख तथा विमर्श स्तंभों के अंतर्गत छपे निबंधों को पढ़ने और बारबार पढ़ने के बाद यह कह सकता हूँ कि इस अंक ने अनेक नए प्रश्नों को हमारे सामने खड़ा किया है और अनेक प्रासंगिकताओं को रेखांकित किया है।

डॉ. गंगा प्रसाद विमल के आलेख में लोकभाषाओं को लेकर की गई बात से हम शत-प्रतिशत सहमत हैं। खास कर समग्र उत्तर भारत में लोकभाषाओं की अंतर्धारा हिंदी के उत्तुंग उर्मियों को आधार दे रही है। इसे समझने के लिए हमें किसी बड़े अनुसंधान की मुखापेक्षा नहीं रखनी है। अपने भाषिक प्रयोग के प्रति थोड़ी सी

सावधानी रखने मात्र से हम जान जाएंगे कि हमारी राष्ट्रीय समझ को बढ़ाने में हमारी लोकभाषाओं की कितनी बड़ी भूमिका है। डॉ. गंगा प्रसाद विमल ने अपने आलेख 'भारतीय और एशियाई भाषिक संसार और हिन्दी' में डिग्री लक्षित शोध की जगह स्वतंत्र शोध को बढ़ावा देने का जो आग्रह किया है उसपर गंभीरता से अमल करने की आवश्यकता है।

डॉ. अमरनाथ का आलेख 'हिंदी आंदोलन के भटकाव' भी इस अंक का एक विचारोत्तेजक आलेख है। परंतु डॉ. अमरनाथ के इस विचार से सहमत होना कठिन है कि सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने पर प्रतिवर्ष हजारों करोड़ रुपए बरबाद हो रहे हैं। सरकारी कार्यालयों में हिंदी का काम भारत की संसद द्वारा बनाए गए अधिनियम और नियमों में हिंदी का काम भारत की संसद द्वारा बनाए गए अधिनियम और नियमों के अनुसार हो रहा है। एक स्वतंत्र दृष्टि की प्रगति या प्रतिगति के विषय में समझा जा सकता है। सरकारी हिंदी अथवा प्रयोजनमूलक हिंदी को बोलचाल की हिंदी से स्थानापन्न करने की बात किस आधार पर की जा रही है यह भी समझ से बाहर है। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि देवनागरी लिपि में लिखी गई हिंदी ही संघ सरकार की राजभाषा है। इस समय फिर से हिंदी और हिंदुस्तानी का राग अलापना किसी काम का नहीं। आवश्यकता है हिंदी में काम शुरू करने की। डॉ. ऋषिकेश राय ने सभ्यताओं के द्वंद्व के सामने भारतीय मनीषा की प्रखरता के संबंध में अपने विचार 'सभ्यताओं का द्वंद्व व भारतीय मनीषा' शीर्षक आलेख में एक तार्किक की तरह रखा है- एक रसवादी की शब्दावली में महाभारत के संबंध में जो विचार व्यक्त तथा रामायण दोनों मिलकर भारत की मनीषा की अभिव्यक्ति करते हैं। महाभारत का व्यक्ति-बनाम व्यक्ति संघर्ष और रामायण का व्यक्ति-व्यक्ति रामादर्श में विगलन दोनों ही भारतीय संस्कृति के सत्य के दो चित्र हैं तथा परस्पर पूरक। हम आशा करते हैं कि डॉ. ऋषिकेश राय के इस आलेख से हमारे मन में भारतीय संस्कृति को लेकर जो हीन भावना है उसकी धुंध कुछ छुटेगी।

डॉ. हरेराम पाठक ने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और असम का भक्ति आंदोलन' आलेख में भक्ति आंदोलन के एक लगभग अज्ञात से पड़े विषय पर प्रकाश डाला है। श्रीमंत शंकरदेव के प्रयासों से असम में जिस भक्ति आंदोलन का आविर्भाव हुआ उसके केंद्र में भारत विमर्श ही रहा। भारत को एक राष्ट्र के रूप शंकरदेव ने पूर्वोत्तर भारत में देखा। डॉ. हरेराम पाठक ने इस विषय की उपस्थापना में इतिहास और साहित्य सम्मत प्रमाणों को रखते हुए विषय का सारगर्भ प्रतिपादन किया है।

यूं तो इस अंक में सामान्य पाठकों की रुचि की सामग्री की भरमार है। तथापि जिस आलेख की मैं खासतौर पर चर्चा करना चाहूंगा वह है पांडेय शशिभूषण शीतांशु का 'आलेख चाम्स्की और भट्टहरि का व्याकरण तुलनात्मक संदर्भ।' भारत को वैचारिक दृष्टि से पिछड़ा समझने वालों और हर समस्या का समाधान यूरोप/अमरीका में खोजनेवालों के लिए यह आलेख एक बौद्धिक प्रकाशपुंज है। भाषा विज्ञान संबंधी सारे ज्ञान की निर्झरिणी ब्लूमफील्ड तथा चोम्स्की आदि के विचारों को मानने तथा भारतीय मनीषा को कमतर समझने की नादानी करनेवालों को इस तुलनात्मक विचारविमर्श से बहुत कुछ सीखने को मिलेगा। यह आलेख बताता है कि विद्वानों को मनीषा भेदों में अभेद के तत्वों की न सिर्फ पहचान करनी है वरन उसे व्यक्त भी करनी है।

मुक्तांचल का यह अंक अपनी विविधता तथा विषयगत गहराई दोनों की दृष्टि से पठनीय तथा संग्रहणीय है। किसी एक विषय पर एकाग्र न रहते हुए यह अंक उपयोगिता की दृष्टि से अत्यंत समर्थ व समृद्ध है।

संपर्क : अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी, राजभाषा अधिकारी, यूको बैंक, फोन : 9874459767

केंद्रीय हिंदी संस्थान
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005, फोन : 0562-2530684, बेबसाइट : www.hindisansthan.org, www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई. में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र : दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य-

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन, विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्य संस्थान के उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति(फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य-

शिक्षणपरक कार्यक्रम : (i) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण, (ii) हिंदीतराज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (iii) नवीकरण एवं संवर्धनात्मक कार्यक्रम (iv) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम(स्ववित्तपोषित), (v) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम(स्ववित्तपोषित)

अनुसंधानपरक कार्यक्रम : (i) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (ii) हिंदी भाषा और अन्य भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन, (iii) हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान, (iv) हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान, (v) हिंदी का समाज भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (vi) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण।

शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास : (i) हिंदीतराज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी शिक्षण सामग्री निर्माण, (ii) हिंदीतराज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण, (iii) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (iv) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (v) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (vi) हिंदी तथा हिंदीतराज्यों भारतीय भाषाओं में द्विभाषी/त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन : हिंदी भाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी, अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रैमासिक पत्रिका-‘गवेषणा’, ‘मीडिया’ और ‘समन्वय पूर्वोत्तर’ का प्रकाशन।

पुस्तकालय : भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकें। लगभग 75 पत्र-पत्रिकाएँ(शोधपरक एवं अन्य)।

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय : हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी(असम), आइजोल (मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है।

योजनाएँ : भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत अफगानिस्तान के नान्यारहर विश्वविद्यालय(जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी. ए. का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवानिया, यू.एस.ए. यू. के., मॉरिशस, बेल्जियम, रूस आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोक साहित्य परियोजना तथा लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य।

-डॉ. कमल किशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, के. हि. शि. म.
ई-मेल : kkgoyanka@gmail.com

-प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
निदेशक
ई-मेल : nkpandey65@gmail.com
directorofkhs@yahoo.co.in

इस पार तक ...

सुरेश सेन निशांत

(12 अगस्त 1959 - 22 अक्टूबर 2018)



तुम्हारे बारे में सोचना
धरती के भीते
स्रोतों के बारे में सोचना है
सोचना अपनी ही नहीं
दूरों की प्यास के बारे में भी
एक बूँद
एक बादल
एक नदी
एक समंदर
इन सब को
अपनी छोटी सी हथेली में
बंद कर लेना है
तुम्हारे बारे में सोचना

पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी
सबसे ऊँची चट्टान
सबसे ऊँचे पेड़ की
सबसे ऊँची फूलगी पर बैठ
एक लोक गीत गाने जैसा है
तुम्हारे बारे में सोचना।

-कुछ थे जो कवि थे (2015)

RNI No. WBHIN/2014/70173

POSTAL REG. NO. WB/HWH-90/2018-2020

स्मृति-शेष



हिमांशु जोशी

4 मई 1935 - 23 नवम्बर 2018

हावड़ा विद्यार्थी नव्य के लिए प्रकाशक आनन्द कुमार सिन्हा और मुद्रक गोपी कृष्ण पालुई, शिखण, 50 सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता से मुद्रित एवं 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन, सालकिया, हावड़ा-711108 से प्रकाशित।

संपादक : डॉ. मीरा सिन्हा